जांभोजी की वाणी

(जीवनी, दर्शन, और हिन्दी अर्थ सहित मूलवाणी–पाठ)

सूर्यशंकर पारीक

विकास प्रकाशन

4 चौधरी क्वाटर्स, स्टेडियम रोड, बीकानेर

प्रकाशक ·
विकास प्रकाशन
4 चौधरी क्वार्टर्स, स्टेडियम रोड,
बीकानेर – 334001

सस्करण · प्रथम 2001

मूल्य . तीन सौ रु.

शब्द-सज्जा . राजश्री कम्प्यूटर्स, बीकानेर
हेलो : 543425

मुद्रक : कल्याणी प्रिण्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर

Jambhoji ki vani

संपादकीय

श्री जाभोजी महाराज हमारे देश की महानतम् विभूतियों की श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं और वे हमारे देश में महान् धर्माचार्य, पंथ–प्रवर्तक तथा परमोपम सिद्ध–संत के रूप में सादर संपूजित हैं। महान समाज–सुधारकों तथा निर्गुण धारा की संत परम्परा में भी उनका विशिष्ट स्थान है। वे अपने अनुयायी समुदाय मे ईश्वर–कोटि पुरुषों के समान पूज्य एवं वंदनीय हैं। उन्होने सदाचारमूलक विश्नोई पंथ की स्थापना कर अपना विशिष्ट अनुशासन स्थापित किया तथा साथ ही अपने विचारों और सिद्धातों के प्रचार–प्रसार हेतु जीवनदायी साहित्य का निर्माण किया। उनका यह साहित्य "जांभोजी की वाणी" अथवा "सबद" नाम से अभिहित किया जाता है।

उनकी इस अमोघ तथा विस्फोटमयी वाणी का प्रभावक्षेत्र काफी विस्तृत है। उनकी उदात्त विचारधारा से अनुप्राणित होकर न केवल गृहस्थजनों ने ही अपने मार्ग को प्रशस्त किया, बरंच अनेक साधु–सन्यासियों ने भी उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का सहर्ष अनुसरण कर अपने जीवन को आलोकित किया। आज भी विश्नोई नाम से लाखों जन जाभोजी द्वारा प्रतिपादित धर्म का आचरण करते है।

जांभोजी की वाणी पुष्कलता में चाहे उतनी नहीं रही हो, परन्तु राजस्थानी संत साहित्य की वह अमर थाती है। जहां उनकी गुरु–गंभीर वाणी में ज्ञानकांड, उपासनाकांड तथा कर्मकांडमय अमृत मंथन है, वहीं उनकी वाणी में अद्‌भुत ओज और शक्ति है। उनकी विचारशैली में जहां पाखंड–खंडन की प्रवृत्ति है, वहा विचार–सम्पन्नता की धरोहर सुरक्षित है। जहां उनकी वाणी में सहज सरलता है, वहां उसमें विचित्र व्यग्रता भी है। वाणी में यदि सहज समन्वय है तो वह राजस्थानी रंगत से भी पूर्ण और समृद्ध है।

राजस्थानी सत–साहित्य की आदि शृंखला का यदि हम काल निश्चित करने बैठेंगे तो वह पहली कडी जाभोजी की वाणी ही होगी।

वैसे तो वाणी के प्रस्तुत संपादन से पूर्व वाणी के भिन्न–भिन्न स्थानों से कई छोटे–मोटे संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु वे वैज्ञानिक संपादन के समुचित

अभाव मे काफी त्रुटित रहे हैं। प्रथमत. निम्नलिखित तालिका से उन संस्करणों के सपादन, प्रकाशन–स्थान, प्रकाशन–संवत् तथा पृष्ठ संख्या का परिचय प्राप्त कर लेना अवाछित नही होगा.–

१. श्री जंभसागर : स्वामी ईश्वरानदजी, हिन्दू प्रेस, दिल्ली, पृ.सं. ४४० वि सं. १६४६
२ जंभसंहिता . स्वामी ईश्वरानदजी, धार्मिक यन्त्रालय प्रयाग, पृ.सं.–४१४ वि सं., १६५५
३ शब्दवाणी : साधु गंगादास शंकरदास, सरस्वती प्रिंटिग प्रेस, मेरठ, पृ.सं. १२८ वि स., १६६६
४. *शब्दवाणी (गुटका) : श्री रामदासजी, विद्याप्रकाश प्रेस, लाहौर, पृ.सं २६४ वि.सं. १६६३*
५. जंभगीता स्वामी सच्चिदानंदजी, विद्या प्रेस, लाहौर, पृ.सं. ४२५ वि सं. १६६२
६ जंभसागर : स्वामी रामानंदजी गिरि, विश्नोई सभा, हिसार, पृ सं. ६०० वि सं. २०११

इनके अतिरिक्त कुछ "शब्द" 'जंभसार' नाम के ग्रंथ में भी प्रकाशित हुए हैं। "जभसार", जैसा कि प्रसिद्ध है, "जांभाणी साहित्य" का वृहद् संकलन ग्रंथ है।

अव यहा थोडा सा उक्त प्रकाशनों व संस्करणों के गुण–दोषों के संबंध में विचार कर लेना अनुचित नहीं होगा।

(१) स्वामी ईश्वरानंदजी द्वारा प्रकाशित "श्री जंभसागर" लीथो से छपा है। इसमें प्रेस–भूलों की भरमार है। स्वामीजी ने इस ग्रंथ के शब्दो पर विस्तृत टीका लिखी है लेकिन राजस्थानी भाषा से उनकी अनभिज्ञता होने के कारण मूल शब्दो के अर्थ से उनकी टीका बहुत दूर रह गई है। यद्यपि उनकी विद्वत्ता टीका की भाषा से स्पष्ट प्रकट होती है किन्तु "शब्दो" के सही अर्थ करने मे वे असमर्थ ही रहे है। इसमे जांभोजी के ११७ शब्द ही छपे हैं। इस ग्रंथ में प्रकाशित शब्दो के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि इनके प्रकाशन का क्या आधार है, क्योकि मौखिक या किसी हस्तलिखित प्रति के आधार से छपने का इसमे कोई संकेत नहीं है। किंतु इस प्रकाशन के छै वर्ष पश्चात् इन्हीं स्वामीजी ने जांभोजी के शब्दो को "जंभसंहिता" के नाम से छपवाया। इसके छपाने मे आधार स्वरूप आपने अपने पास नगीना से प्राप्त, ११६ शब्दो की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति का होना बताया है। संभवत स्वामीजी ने "जभसागर" के प्रकाशन मे भी उक्त प्रति का उपयोग किया हो, क्योंकि जभसागर मे शब्दो की छपाई उसी ढग से हुई है जिस क्रम व ढग से हस्तलिखित प्रतियों में शब्द लिखे होते है। इसी पद्धति से बाद के प्रकाशनों मे शब्द छपे है। परवर्ती प्रकाशनो की अपेक्षा, जिन पर आगे विचार किया जायेगा, जंभसागर में शब्दावली का अधिकांशत प्राचीन रूप ही दृष्टिगोचर होता है। इन्हीं कुछ कारणों के आधार पर इस ग्रथ के शब्दों का पाठ किसी हस्तलिखित प्रति के अनुसार होने

का अनुमान किया जा सकता है। परंतु स्वामीजी की जभसागर टीका का स्वागत मतानुयायियों में नहीं हुआ।

(२) "जंभसागर" के छै वर्ष पश्चात् वि.सं. १९५५ में इन्हीं स्वामीजी ने "शब्दों" को "जंभसहिता" के नाम से प्रकाशित करवाया। इसमें मूल शब्द ही प्रकाशित हुए। स्वामीजी ने इन शब्दों का एक वि.सं. १७१७ का लिखा हुआ हस्तलिखित गुटका (प्रति) धार्मिक यंत्रालय (प्रयाग) के स्वामी पं. जगन्नाथ तिवारी से प्राप्त किया था जो जोधपुर की ओर के किसी चन्द्रनाथ नाम के जसनाथी साधु का, उनके पास रखा हुआ था। इस गुटके में १५२ शब्द थे। उसी के आधार पर स्वामीजी ने अपने इस संग्रह में १५२ शब्द प्रकाशित किये। "जंभसंहिता" के मूल के पूर्व पृष्ठ पर इस बात का उल्लेख है। पर इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि ये सारे के सारे शब्द उसी गुटके से लिये हैं। अधिक संभव यह है कि स्वामीजी ने अपनी नगीना वाली प्रति और इस गुटके के शब्दो को मिलाया अवश्य होगा। इन १५२ शब्दो में विश्नोई पंथ के कुछ तो मंत्र "शब्द" संज्ञा से शामिल किये गये हैं तथा कुछ शब्दों की एक से बढा कर दो या अधिक संख्या कर दी गई है तथा कुछ शब्द प्रामाणिक १२० शब्दो से भिन्न प्रकाशित हुए हैं। मंत्र तथा मूल शब्दों की एक से दो या अधिक बढाई गई सख्या के अतिरिक्त जो रचनायें इस संग्रह में प्रकाशित हुई हैं, अनुमानतः ये रचनायें राजस्थान के बाहर जांभोजी के नाम से प्रचलित रही हो और स्वामीजी के द्वारा इस सग्रह मे स्थान पा गई हों।

(३) शब्दों का तीसरा प्रकाशन "शब्दवाणी" नाम से मध्यम साइज मे साधु गंगादास के शिष्य शंकरदास (फलावदा–मेरठ) द्वारा हुआ। इसमें "शब्द" नाम से १२६ पद्य प्रकाशित हुए हैं, जिनमें विश्नोई पंथ का गुरु मंत्र "आद शब्द" "विष्णु वृहन्निवण" और "२९ धर्म की आखडी" नाम की रचनायें "शब्द" शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं। इसमें भी मूल शब्द ही प्रकाशित हुए हैं।

(४) शब्दों का चौथा प्रकाशन स्वामी सच्चिदानंदजी ने "जंभगीता" के नाम से वि.सं. १९६२ मे विद्या प्रेस लाहौर से प्रकाशित करवाया। इसमें कुल शब्द १२० प्रकाशित हुए हैं। शब्दों की यह संख्या यथार्थ में सही भी है। "जंभगीता" के शब्दो पर टीका लिखी गई है परंतु यह टीका यथार्थ से काफी भिन्न जान पडती है। टीकाकार शब्दो के वास्तविक तात्पर्य को बहुत कम समझ पाया है तथा टीका को अनावश्यक विस्तार दिया गया है, जिससे पाठक शब्दों के सही अर्थ से और अधिक दूर जा पडता है।

(५) शब्दों का पांचवां प्रकाशन साधु श्री रामदासजी द्वारा शब्दवाणी (गुटका) नाम से हुआ। जिसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। श्री रामदासजी मूलत. राजस्थान निवासी थे। उन्होंने "जांभाणी–साहित्य" के कई छोटे–बडे ग्रंथो को प्रकाशित कर बहुत ही स्तुत्य कार्य किया। साधु श्री रामदासजी ने अपने शब्दवाणी ग्रंथ मे १२० शब्द ही प्रमाण रूप से प्रकाशित करवाये।

(६) इसके पश्चात् विक्रम संवत् २०११ में विश्नोई सभा, हिसार द्वारा "जंभसागर" नाम के वृहद् ग्रथ का प्रकाशन हुआ। इसमें भी जांभोजी के १२० शब्द ही प्रकाशित हुए। इस वृहद् ग्रंथ में शब्दों पर विस्तृत टीका लिखी गई है। शास्त्रो के नाना उदाहरणों तथा प्रमाणो से टीका का अत्यधिक विस्तार हो गया है, जिसके कारण शब्दो का उद्दिष्ट अर्थ टीका के कलेवर में छिप सा गया है। यह ध्यान देने की बात है कि उक्त ग्रथों के सभी टीकाकार राजस्थान से बाहर के थे तथा इतर भाषा–भाषी थे। यही कारण है कि उन सबकी शब्दों पर की गई टीकायें अधिकांशतः त्रुटित है तथा न ही इन ग्रंथो का प्रकाशन एवं सपादन वैज्ञानिक पद्धति से ही हुआ है। जिसका फल यह हुआ कि वाणी की अर्थगभीरता और बाह्य सौंदर्य बहुत कुछ सिमट कर रह गया। जैसा कि हम कह चुके हैं, उक्त सभी ग्रथों में "शब्दों" की छपाई वैज्ञानिक पद्धति से पंक्तिक्रम से न होकर हस्तलिखत प्रतियों मे लिखे ढंग पर अक्षर–क्रम से हुई है। जहां भी पक्ति समाप्त हुई, वहीं से आगे कम्पोज हो गया है। इसी क्रम के कारण शब्दों की पंक्तियो का क्रम अस्तव्यस्त हो गया है जिससे वाणी की सुदरता व पंक्तियों का अन्त्यानुप्रास घपले मे पड गया है। परतु प्रस्तुत ग्रथ का संपादन इन सब बातो को ध्यान में रखकर वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है।

वाणी का यह, प्रस्तुत सपादन साधु श्री रामदासजी द्वारा प्रकाशित "शब्दवाणी" गुटका तथा उन द्वारा अनुमोदित "जंभगीता" एवं इन दोनो के अनुकरण पर प्रकाशित "जभसागर" (हिसार) को आधार मानकर किया है। "जंभगीता", "जभसागर" और श्री रामदासजी द्वारा प्रकाशित "शब्दवाणी" गुटके के पाठ मे प्राय समानता है। यदि कहीं कोई अंश इन तीनों मे परस्पर किंचित् पाठान्तरित है भी तो हमने वही अंश या शब्द स्वीकृत किया है जो हमें इन तीनों में अधिक उचित जान पडा है परतु ऐसा हुआ बहुत कम है।

वैसे तो अब तक शब्दों के जितने भी पृथक्–पृथक् प्रकाशन हुए है, उनमें थोडा–बहुत पाठभेद दृष्टिगोचर होता ही है पर ऐसा अधिकांशत प्रेस–भूलों के कारण ही हुआ है। कुछ अन्तर ह्रस्व–दीर्घ जैसे है। कुछ शब्दो मे तद्भव और तत्सम शब्दो का अन्तर है, परन्तु यह अंतर अर्थान्तर जैसा न होकर नगण्य ही समझने लायक है। सबसे अधिक पाठान्तर वाली पुस्तक "श्री जभसागर" है, जिसके समस्त पाठान्तर हमने अपने इस ग्रंथ की पाद टिप्पणी मे दिये हैं। हमारी यह निश्चित धारणा है कि वाणी के पूर्व प्रकाशनों मे एक–आध को छोडकर शेष ग्रथों मे वाणी के पाठ का आधार कोई न कोई हस्तलिखित प्रति अवश्य रही होगी। परन्तु प्रस्तुत वाणी के सपादनावसान तक हमारे विविध प्रयत्नो के बावजूद भी हमे ऐसी कोई हस्तलिखित प्रति हस्तगत नहीं हुई, जिसका हम अपने इस सपादन मे उपयोग कर पाते। अत हमने प्रस्तुत संपादन के लिये प्रकाशित "शब्द–वाणी", "जंभगीता" और "जंभसागर" के पाठ को सब प्रकार से उपयोगी मान कर स्वीकृत किया है।

वाणी की हस्तलिखित प्रतियों के अस्तित्त्व के सबंध मे जांभाणी– साहित्य की प्रकाशित पुस्तकों में यत्र–तत्र विज्ञप्ति के रूप में सूचनाये मिलती है। "रावण गोयद

का जीवन चरित्र" पृष्ठ ८० पर लिखा है कि वि.सं. १७६६ में लिखी एक हस्तलिखित प्रति लालासर (बीकानेर) की साथरी में रखी है। इसी प्रकार "जंभसार साखी" पृ २७ और "शब्दवाणी" गुटका पृ. ४६३ पर वि.सं. १६१८ की लिखी प्रति ग्राम दुतरावाली में साधु लक्ष्मीनारायणजी के पास होने का उल्लेख मिलता है किन्तु उक्त स्थानो में खोज करने पर भी हम शब्दो के किसी हस्तलिखित ग्रंथ को प्राप्त नहीं कर सके। इस संबंध में विश्नोई पंथ के गायणा व साधुओ का सपर्क भी हमारी सहायता नहीं कर सका। इस बीच श्री महीरामजी धारणिया के पास वि सं. १६३४ का लिखा हुआ शब्दों का एक हस्तलिखित गुटका हमने अवश्य देखा, लेकिन वह किसी अन्य व्यक्ति का होने के कारण श्री धारणिया ने उसे दिखाने के अतिरिक्त प्रतिलिपि करने व कुछ काल के लिये देने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। श्री धारणिया को वह गुटका उसी दिन वापस लौटाना था।

हमने एक दृष्टि में श्री धारणिया के पास वाले गुटके की पुष्पिका तथा कुछ शब्दों के पाठ को परस्पर मिलाकर अवलोकन किया तो पाया कि प्रस्तुत संपादन व गुटके में प्रायः समानता है।

कुछ समयोपरान्त हमें यह सूचना मिली कि चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर में जाभोजी के शब्दों की एक हस्तलिखित प्रति है, परंतु उस समय सस्थान के पुस्तकालय की अस्तव्यस्तता के कारण उक्त प्रति भी हम उपलब्ध नहीं कर सके। अत ऊपर बताये अनुसार प्रस्तुत सपादन में हमने केवल मुद्रित पुस्तकों से ही मूल को ग्रहण किया है।

इसका एक हेतु यह भी है कि यही (मुद्रित पुस्तकों का) पाठ विश्नोई पंथ के लोगों में आदरित है। आज तो इस पाठ के लिये पंथ मे यहां तक धारणा बन गई है कि गुरु (श्री जांभोजी) के श्रीमुख से नि सृत पाठ का वास्तविक स्वरूप यही है।

जैसा कि पहले बताया चुका है, प्रस्तुत ग्रंथ से पूर्व जांभोजी के शब्द कई एक संस्करणों में प्रकाशित हुए हैं, परन्तु पूर्ण वैज्ञानिक संपादन के अभाव मे उनकी उपादेयता उतनी सार्थक नहीं मानी गई। अतः वाणी के वैज्ञानिक संपादन का अभाव आज तक खटकता ही रहा।

भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान के अधिकारियों एवं मनीषियों ने इस अभाव का अनुभव किया और उसी के परिणास्वरूप वाणी का यह सुसंपादित रूप प्रथमबार हिन्दी जगत के सामने आ रहा है। इससे राजस्थानी संत साहित्य की गरिमा और राष्ट्रभाषा हिन्दी की श्रीवृद्धि होगी। विशेषतया संतसाहित्य के अनुसंधान की दिशा में यह एक अपूर्व कार्य माना जायेगा। आज तक हिन्दी में जांभोजी की वाणी का अध्ययन न किया जाना एक खटकने वाली बात थी।

यहां वाणी का संपादन तीन खंडों में विभाजित करके किया गया है। जीवनी को संक्षिप्तिकरण के साथ रखने का प्रयास किया गया है। जीवनी के आलेखन में

मुख्यत. विश्नोई पथ के साहित्य से ही सामग्री का चयन किया गया है। परंतु यहां यह अवश्य ध्यान मे रखा गया है कि सूत्र वे ही ग्रहीत किये जायें, जो युक्तियुक्त एवं तथ्यात्मक हो। इसके अतिरिक्त जीवनीखंड के लिये गजेटियर, रिपोर्ट तथा इतिहास ग्रथो की सामग्री को भी उपयोग में लाया गया है।

यह तो सर्वविदित बात है कि संतों की जीवनियां अलौकिकता लिये होती हैं। उनमे श्रद्धा, चमत्कारिकता तथा आदर्शोन्मुखता रहती ही है। हो सकता है, कुछ पाठको को इस प्रकार के कार्य में पौराणिकता की झलक नजर आये, परंतु ऐसे वातावरण से लेखक के लिये सर्वथा संपृक्त रहना काफी कठिन होता है।

द्वितीय खंड : समीक्षा–इस खंड को समीक्षा खंड अथवा दर्शन खड से भी अभिहित किया जा सकता है। इसमें जांभोजी की वाणी का मूल्याकन करते हुए जीव, ब्रह्म, सृष्टि अथवा सदाचार, पाखंड–खंडन अथवा इसी प्रकार अन्य तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

तृतीय खड : मूलवाणी–इस खंड मे जांभोजी की संपूर्ण वाणी को हिन्दी अर्थ के साथ रखा गया है। वाणी के माध्यम से जो भावना अथवा उपदेश अभिव्यंजित हुए हैं, उनके यथार्थ की रक्षा करते हुए वाणी का हिन्दी अर्थ किया गया है। जहां तक सभव हो सका है, अर्थ करने मे सतत सावधानी बरती गई है, किंतु जहां मूल वाणी का पाठ ही अस्पष्ट हो तो वहां अर्थ करने में कठिनाई उपस्थित हो जाती है। प्रस्तुत ग्रंथ में इस प्रकार के कईएक स्थल मेरे समक्ष आये हैं और अंत तक वे मेरे सामने समस्या बने रहे हैं। ऐसे स्थलों का वहां अर्थ न करके केवल भावार्थ से काम लिया है। मैं वहां संतुष्ट नहीं हूं। यदि कुछ ऐसे स्थलों का पाठ परिवर्तन कर दिया जाता तो अर्थसगति ठीक बैठ जाती, पर "गुरुवाणी" मे ऐसा करने का किसको अधिकार है ?

मुझे विश्वास है कि जहां–जहा मैं चूका हूं, विद्वज्जन मेरा वहां पथ–प्रदर्शन करेंगे।

मूलवाणी के प्रत्येक शब्द के साथ पाद–टिप्पणी मे "श्री जम्भसागर" के पाठान्तर दिये हैं। जिससे यह जाना जा सके कि शब्दो मे रूप परिवर्तन भी हुआ है तथा कौन मूल रूप के अधिक निकट है।

वाणी मे शब्दों का क्रम वही रखा गया है, जो मुद्रित पुस्तको मे है तथा जिस क्रम से मौखिक पाठ किया जाता है। वाणी के पृष्ठ भाग में निम्नलिखित परिशिष्ट भी जोडे गये हैं।

१ प्रसग (राजस्थानी गद्य)

२ शब्दों की अनुक्रमिक प्रथम पक्ति सूची

३. वे शब्द तथा वे व्यक्ति जिनके प्रति शब्दो के कथन करने की कथा प्रचलित है।

प्रारंभ में प्रस्तुत वाणी का संपादन तथा शब्दों पर हिन्दी अर्थ करने का काम शोध प्रतिष्ठान के तत्कालीन सचालक प अक्षयचन्द्रजी शर्मा ने सन १९५६ ई मे मुझे दिया था। उन्हे विश्वास था कि मैं इस कार्य को कर पाऊगा।

पं. शर्माजी तो थोड़े ही समय बाद कलकत्ता चले गये तथा सौम्यमूर्ति तथा शिक्षाविद् श्री चन्द्रदानजी चारण पधारे। उन्होंने वाणी के सपादन में समय–समय पर उपयोगी सुझाव देकर कार्य को आगे बढाया। इनके रात्रि विद्यालय के प्रिंसिपल पद पर चले जाने के पश्चात प्रतिष्ठान के संचालक पद पर श्री सत्यनारायणजी पारीक पधारे। श्री पारीकजी के अभिजात्य गुणों, शालीन व्यवहार तथा आत्मीय भाव के कारण विभागो के शोध अधिकारी अथवा शोध सहायकों में एक नूतन उत्साह का सचार हुआ। श्री पारीकजी की सदैव यह प्रेरणा रही कि जो कार्य हाथ में हैं, उन्हे अंतिम रूप दिया जाना चाहिए। श्री पारीकजी की अध्ययनशीलता उनका आदर्श रहा है। श्री पारीकजी ने मेरे विनम्र निवेदन पर वाणी के प्रस्तुत संपादन को आरंभ से इति तक पढा तथा इसके संपादन की गुणवत्ता पर संतोष प्रकट किया। उन्होंने आगे के लिए मुझे निर्देश दिये वे अक्षरश. इसके साथ सलग्न कर दिये हैं, जो परिशिष्ट रूप में द्रष्टव्य हैं। श्री मूलचन्द 'प्राणेश'– जो शब्द, अन्वय तथा डिंगल के अधिकारी विद्वान माने जाते रहे हैं, श्री माणक तिवाडी 'बन्धु' – जो प्रतिभासम्पन्न गुणों से युक्त हैं, राजस्थानी के प्रतिष्ठित लेखक रामनिवासजी शर्मा, बहन श्रीमती सुशीला गुप्ता आदि ने वाणी के संपादन में सहयोग किया है; मैं उनका हृदय से आभारी हूं। सुवाच्य और शुद्ध टंकण के लिए श्री माणक तिवाडी 'बन्धु' साधुवाद के अधिकारी हैं।

मैं विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहूंगा कि अत्यन्त सावधानी बरतने पर भी इसमें अनेक त्रुटियां रही होंगी, उनके लिए विश्नोई समाज व विद्वान पाठकगण क्षमा करेंगे। मैं सगर्व कह सकता हूं कि मैं श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान के प्रति उतना ही श्रद्धालु हूं, जितना अपनी परंपरा के आदि गुरु श्रीदेव ज़सनाथजी के प्रति हूं।

श्री जांभोजी की वाणी के शब्दों का संपादन तथा टकण होने के पश्चात विद्वद्वर्य पं. अक्षयचंद्रजी ने इसे देख-पढकर, विशेष रूप से सार्थ वाणी और दर्शन खंड को पढकर, उन्होंने अपनी सहज मुस्कान के साथ मुझे कहा कि यह आप कैसे कर पाये? मैं तो इसे पढकर गद्‌गद् हो गया हू।

चूकि यह कार्य साठ के दशक मे किया गया था। इसके बाद श्री जाम्भोजी एवं विश्नोई सम्प्रदाय, साहित्य एवं इतिहास पर काफी शोध पूर्ण कार्य हा चुका है। इसलिए इस कार्य की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्रश्न उठना स्वाभाविक है। इसके लिए मुझे डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई व श्री मनीराम बिश्नोई का समुचित सहयोग मिला। डॉ. बिश्नोई ने गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ के इतिहास के सम्बन्ध में पी.एच.डी. किया है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के सम्बन्ध में आपका शोध कार्य सराहनीय है। आपने अपने व्यस्त समय मे से इस कार्य के सम्पादन मे समुचित सहयोग दिया एवं इस ग्रन्थ को एक नई दृष्टि दी है, इसके लिए आपकी जितनी भी प्रशंसा की जावे, कम है।

भवदीय कृपाकांक्षी

सूर्यशंकर पारीक

प्रस्तुति

भारतीय इतिहास के मध्ययुग का पूर्वार्द्ध अर्थात् चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक का कालखंड राजनीतिक दृष्टि से देशी शक्तियो के अपकर्ष और विदेशी शक्तियो के उत्कर्ष का समय है, परतु अपने–आप मे यह रोचक और विस्मयकारी है कि राजनीतिक संरक्षण और प्रभावोत्पादकता से सम्पन्न इस्लाम के भारी दबाव के बावजूद यह कालखंड देशीय धार्मिक–आध्यात्मिक तथा उत्कृष्ट काव्यपरक चेतना के व्यापक उत्कर्ष का समय भी था। भारतीय धार्मिक इतिहास की दृष्टि से यह युग वैष्णवता के उत्थान का था जिसका आधार वैदिक देवता विष्णु थे जो कि दोनों रूपो में थे, किसी के लिए निराकार निर्गुण परमात्मा तो किसी के लिए साकार–सगुण व समय आने पर पृथ्वी पर अवतरित होने वाले भगवान। इस समय वैष्णव धर्म लोक–धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कितने ही वैष्णव संत–भक्त इस युग में हुए जिन्होने अपने वैष्णव व्यक्तित्व की गहरी छाप लोक–मानस पर अंकित की और लोगो को विष्णु–उपासना व वैष्णवता अपनाने के लिए प्रेरित किया। इनमे से कई सत–भक्तों के अनुयायियो के समूहो ने सम्प्रदाय का रूप ले लिया तो ऐसे सम्प्रदायो में से कुछ ने सामाजिक दृष्टि से जातिगत रूप भी धारण कर लिया। जाम्भोजी भी एक ऐसे ही महान् संत कवि थे जिनके उच्च आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न वैष्णव व्यक्तित्व का प्रभाव प्रारम्भ मे पश्चिमी–उत्तरी राजस्थान और फिर हरियाणा और उत्तर प्रदेश तक व्याप्त हो गया।

महात्मा जाम्भोजी ने अपनी 'वाणी' में, अपने गहन आध्यात्मिक अनुभवों को बडे ही सटीक तथा सरल ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनकी वाणी का अध्ययन करते समय बार–बार लगता है कि जैसे वे गहन समाधिस्थ अवस्था से कथन कर रहे हैं, जीवन के रहस्यों को उद्घाटित कर रहे हैं। 'जम्भ–वाणी' में विशेष बात यही है कि उसमें अनुभवों को कहा गया है, सरलता से, बिना किसी आग्रह के। जाम्भोजी ने जहाँ अपनी वाणी में सृष्टि, जीवन इत्यादि को लेकर अपनी दार्शनिक मान्यताओं का निरूपण कर उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त करने को मनुष्य जीवन का उद्देश्य बताया तो साथ ही उस उपासना–विधि और उन आचरणों का निरूपण भी किया

जिनके द्वारा इस महत् उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह महात्मा जाम्भोजी ने एक सम्यक् जीवन पद्धति का प्रवर्तन किया।

जाम्भोजी के विचार, धार्मिक आचरण व दार्शनिक मान्यताएं वैष्णव धर्म अथवा वैष्णव भक्ति आन्दोलन की परम्परा में हैं। वैष्णव भक्ति आन्दोलन, मूलत. वैदिक व यज्ञीय कर्मकाण्ड और वैदान्तिक औपनिषदीय ज्ञानकाण्ड की प्रतिक्रिया में उत्पन्न आगमिक भक्तिकाण्ड से सम्बन्धित है, परंतु जाम्भोजी ने अपनी वैचारिकता व आचरणीयता में अनन्य भक्ति के साथ यज्ञपरकता और औपनिषदीय ज्ञान परकता का अद्‌भुत रचकता से समन्वय स्थापित किया कर सत्य, अहिंसा, करुणा इत्यादि शाश्वत जीवन मूल्यों के साथ ही आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया। इसके लिए उन्होंने उनतीस नियमो में जीवन चर्या को आचरण बद्ध किया। कुछ विद्वानों का मत है कि इन बीस और नौ (उनतीस) नियमो को मानने के कारण ही उनके अनुयायी 'बिस्नोई' या 'विश्नोई' कहे जाते हैं जो कि अब एक धर्म–सम्प्रदाय व जाति के रूप में भी संगठित हैं। मुझे लगता है कि 'विस्नोई' या 'विश्नोई' शब्द का उनतीस (बीस + नो) से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इस तरह के आधार पर किसी सम्प्रदाय के नामकरण का अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता है और यह तर्क सम्मत भी नहीं है। अपितु 'विष्णोई' शब्द है जो मूलत. महात्मा जाम्भोजी और उनके अनुयायियों के उपास्य 'विष्णु' से संबंधित होकर मूलतः 'विष्णुई' (वैष्णवी) है, जो बोल–चाल में विष्णोई तथा विरणोई हुआ, जिसे पढे–लिखों ने उत्तरप्रदेशीय प्रभाव में बिस्नोई या विश्नोई लिखना प्रारम्भ कर दिया और जिसकी संगति 'बीस' (विंश) और 'नो' नियमों से वैठा दी गई। वैसे भी धर्म–सम्प्रदायों का नामकरण उनके उपास्य या दर्शन अथवा प्रवर्तक के नाम से ही होना देखा जाता है, धर्म–नियमो की संख्या के आधार पर नामकरण एक अटपटी उद्‌भावना ही है।

प्रस्तुत ग्रंथ ''जांभोजी की वाणी'' के सम्पादक और विवेचक सम्मान्य सूर्यशंकरजी पारीक राजस्थानी भाषा–साहित्य तथा धर्म दर्शन के सुधि अध्येता व मर्मज्ञ होने के साथ–साथ एक संस्कारशील व्यक्ति हैं, जिन्होंने बडी लगन व मेहनत से और विशेष रूप से बडी श्रद्धा से, इस ग्रंथ को तैयार किया है। संतवर जाम्भोजी के प्रति उनकी इस श्रद्धा के संस्पर्श इस ग्रंथ मे स्थान–स्थान पर अनुभव में आते हैं। ग्रंथ के 'प्रथम खण्ड' में जाम्भोजी के जीवन से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण लोक–आस्था के भावमय संदर्भों में है तो द्वितीय खण्ड में उनकी दार्शनिक मान्यताओ की गहनता व तार्किकता का विवेचन भारतीय चिंतन–दर्शन की परम्परा में उनकी जनमंगलपरक उदात्त चेतना के व्यापक और प्रेरक संदर्भों मे है। विद्वान सम्पादक ने जाम्भोजी की 'वाणी' की समीक्षा करते समय उसके महत्त्व एवं प्रतिपाद्य, प्रभाव, पाठ की प्रामाणिकता व उद्‌गान की परम्परा तथा उसकी काव्यमयता के अन्तर्गत भाव पक्ष, रूपक, प्रकृति–चित्रण, प्रतीक योजना, रचना विधान व मुहावरो–लोकोक्ति–दृष्टांत–उदाहरण का संयोजन एवं भाषा–स्वरूप को लेकर

विशद् और सुगमता से ग्राह्य विवेचन प्रस्तुत किया है। ग्रंथ के तीसरे खण्ड में महात्मा जाम्भोजी की 'मूलवाणी' सार्थ (स–अर्थ) अर्थात् अर्थ सहित प्रस्तुत की गई है, जिसे मैं कहना चाहूंगा कि 'सम्यक् अर्थ सहित' प्रस्तुत की गई है। 'सम्यक्' इसलिये कह रहा हू कि श्री पारीक ने, पहले तो वाणी के पाठ–निर्धारण में, पाठान्तरों का परीक्षण करते हुए अपने गहन भाषा–ज्ञान का समुचित उपयोग कर शब्द–रूपों का निर्णय, जाम्भोजी की जीवनी, उनके क्षेत्र विशेष से सम्बन्ध और प्रभाव के आधार पर किया है। तत्पश्चात् उन्होने प्रत्येक 'वाणी–सबद' का केवल अभिधार्थ न कर, उसकी सम्पूर्ण भाव–भूमिका के साथ, उसका विशद् व्याख्यान प्रकाशित किया है।

संस्था–प्रबंधन के समक्ष इस ग्रंथ के प्रकाशन की संस्तुति प्रस्तुत करने से पूर्व इसकी पांडुलिपि का अध्ययन करते समय मुझे बराबर लगता रहा कि यदि यह ग्रथ समय पर (लगभग 40 वर्ष पूर्व) प्रकाशित होता तो आज की बजाय कितना ही गुना अधिक महत्व होता, तथापि जाम्भोजी की जीवनी और वाणी को लेकर हुए इस शोधकार्य का ऐतिहासिक महत्त्व है और यह ग्रंथ अब भी इस विषय में अपना मौलिक अवदान सिद्ध करेगा। ग्रंथ के प्रकाशन का निर्णय होने के पश्चात् मैंने ग्रथ की पांडुलिपि को इसके सम्पादक श्री सूर्यशंकर पारीक के पास अवलोकनार्थ भेजकर इस पर उनका विचार–विमर्श प्राप्त किया। तत्पश्चात् इसे श्री मनीराम बिश्नोई एडवोकेट (हिसार–हरियाणा) को भेजकर उनसे ग्रंथ के सम्बन्ध मे अपने सुझाव भेजने का अनुरोध किया। उन्होंने पांडुलिपि का गहन अध्ययन कर बहुत ही विस्तृत रूप से अपने सुझाव भेजे। इन सुझावो को और पांडुलिपि का अध्ययन कर उसमे अपने सुझावो को समायोजित करने के लिए, मैंने डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई (वरिष्ठ शोध अधिकारी, राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर) को अनुरोध किया। डॉ बिश्नोई ने मेरा अनुरोध स्वीकार कर परिश्रमपूर्वक यह कार्य सम्पन्न किया और तत्सम्बन्धी मेरी जिज्ञासाओ को भी शांत किया। ग्रथ की मुद्रण–प्रति तैयार करने में श्री पारीक, श्री मनीराम बिश्नोई तथा डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई ने अहैतुक सहयोग किया, उसके लिए मैं आभारी हूं। ग्रथ के मुद्रण का दायित्व भाई ब्रजमोहनजी पारीक (विकास प्रकाशन, बीकानेर) को सौंपा गया जिसे उन्होने बखूबी निभाया, हार्दिक साधुवाद।

डॉ. बाबूलाल शर्मा
निदेशक
भारतीय विद्या मदिर शोध प्रतिष्ठान
बीकानेर

प्रकाशकीय

राजस्थान के सुप्रसिद्ध संत जाम्भोजी की जीवनी और उनकी 'वाणी' को समुचित रूप से प्रकाश में लाने की दृष्टि से, सन् 1959 ई. में भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान के संचालक पं. अक्षयचन्द्रजी शर्मा ने जाम्भोजी की 'वाणी' के सम्पादन का कार्य संस्था में शोध सहायक श्री सूर्यशंकरजी पारीक को सौंपा था। श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा के कलकत्ता चले जाने पर संस्था के संचालक श्री चन्द्रदानजी चारण हुए और उनके भी भारतीय विद्या मंदिर रात्रि विद्यालय, बीकानेर के प्रिंसिपल पद पर स्थानांतरित हो जाने से 'शोध प्रतिष्ठान' के सचालन का भार श्री सत्यनारायणजी पारीक को सौंपा गया। यह अपने आप में सुयोग ही था कि इस ग्रंथ के निर्माण में, इन तीनों विद्वानों के उपयोगी सुझाओं और मार्गदर्शन का संयोग हुआ। श्री सूर्यशंकरजी पारीक ने बडी लगन और मेहनत से इस ग्रंथ को तैयार किया, परंतु परिस्थितियों वश उस समय यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हो सका, तथापि जाम्भोजी पर शोधकार्य करने वाले कितने ही शोधार्थियों ने संस्था में आकर इस शोधकार्य से लाभ उठाया और अपने ग्रंथों मे इसका उपयोग किया।

मेरे लिए यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि संस्था के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ यह शोधकार्य डॉ. बाबूलाल शर्मा के प्रयासों से आज ग्रंथ-रूप में प्रकाशित होकर आपके हाथों में है। आशा है, सदैव की भाँति सुधि पाठको का स्नेह इस ग्रंथ और संस्था को मिलता रहेगा।

आखातीज वि.सं. २०५८
२६ अप्रैल २००१ ई.

मूलचन्द पारीक
मंत्री
भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान
रतन बिहारी पार्क, बीकानेर (राज.)

ग्रंथ परिचय व सम्मति

भारत मे तप, जप एवं त्याग की हमेशा प्रधानता रही है। तप एवं त्याग के प्रतीक यहां के साधु–संत रहे हैं, जिन्हें यहां के लोगों ने देवता मानकर उनकी पूजा की है। ऐसे देवता स्वरूप महात्माओं से प्रभावित होकर शासक वर्ग के लोग भी उनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सके। ऐसे ही एक देव पुरुष 15वीं शताब्दी में राजस्थान में अवतरित हुए जिनका नाम था – गुरु जाम्भोजी।

राजस्थान विश्व में शक्ति एवं भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के वीरों ने अपनी शक्ति के बल पर अपने जौहर दिखाए, वहीं यहाँ के भक्तों ने अपनी अनन्य भक्ति से परतात्मा का साक्षात्कार किया और लोककल्याण के कार्य किये। गुरु जाम्भोजी ऐसे ही महात्मा थे जिन्होंने अपनी लोक कल्याणकारी वाणी से लोगों को सद्मार्ग दिखाया। बहुत से लोगों ने इस सद्मार्ग को अपनाया जो बिश्नोई कहलाए।

भारत की समन्वयवादी सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षक थे – गुरु जाम्भोजी। गुरु जाम्भोजी को बिश्नोई पंथ के लोग अपना भगवान मानते हैं एवं उनकी पूजा करते हैं। उनकी 'वाणी' को वे पाचवां वेद मानते हैं और अपने सभी सस्कारों में उसका सस्वर पाठ करते हैं। इसी पांचवें वेद जाम्भोजी की वाणी का सम्पादन श्री सूर्यशंकर पारीक ने किया है, जिसे भारतीय विद्या मदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर ने प्रकाशित किया है। श्री पारीक ने इस ग्रथ में गुरु जाम्भोजी के जीवन वृत्त को प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत करने का तो प्रयत्न किया ही है, उनकी वाणी के दार्शनिक पक्ष को भी गहनता से उजागर किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन से गुरु जाम्भोजी के जीवनवृत्त से सम्बन्धित अनेक छुपी हुई, नवीन बातें प्रकाश मे आयेगी।

"जाम्भोजी की वाणी" नामक इस ग्रंथ के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में जाम्भोजी का जीवन चरित्र है जिसमें जाम्भोजी के आविर्भाव के समय की परिस्थितियों, उनका वंश परिचय, उनका अवतार, बाल्यकाल, योगावस्था, उनका गृह त्याग, अकाल पीडितो की सहायता, बिश्नोई पंथ की स्थापना, उनके विभिन्न शिष्यों, ऐतिहासिक एवं सामान्य व्यक्तियो का उनकी शरण में आना आदि पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। गुरु जाम्भोजी की देश–विदेश की यात्राओं, विभिन्न व्यक्तियों को उपदेश देने जैसे उनके औपचारिक कार्यों पर भी समुचित विवरण प्रस्तुत किया गया है। बिश्नोई पथ के उनतीस धार्मिक नियमों, पथ की प्रमुख साथरियों एवं धर्मस्थलों आदि का उल्लेख कर अन्त में भारतीय धर्म साधना मे गुरु

जाम्भोजी का स्थान निर्धारित किया गया है।

गुरु "जाम्भोजी की वाणी" ग्रथ के द्वितीय खण्ड मे उनकी वाणी का महत्त्व, प्रभाव, प्रामाणिकता, परम्परा, काव्य पक्ष आदि के विषय मे बताया गया है। वाणी के दार्शनिक पक्ष में ईश्वर, ब्रह्म, ब्रह्म निरुपण, ब्रह्म पद, माया, मोक्ष, जीव, योग, योगमाया, सृष्टि विज्ञान, गुरु–कुगुरु एवं शैतान आदि का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया गया है। इसी खण्ड में मूर्तिपूजा, तीर्थ, जात–पात, वेदशास्त्र, ज्योतिष, वेश एवं योग, सिद्धि–चमत्कार, भूत–प्रेत, बाग एवं नमाज पर भी प्रकाश डाला गया है, जिनके विषय मे गुरु जाम्भोजी ने मनुष्य को जीने की विधि बताई है और इसके लिए उसे सदाचार की ओर प्रेरित किया है। गुरुजी ने अपनी वाणी में– हिंसा का विरोध, वनस्पति रक्षा, वाद–विवाद निषेध, मिथ्या भाषण, स्नान, शील, नम्रता, उपकार, दान, सुकृत्य, अमावस होम, स्वर्ग–नरक, वेदशास्त्र आदि के विषय मे विस्तृत चर्चा की है जिस पर श्री पारीक ने इस खण्ड में समुचित प्रकाश डाला है।

गुरु "जाम्भोजी की वाणी" के तृतीय खण्ड मे भगवान जम्भेश्वर द्वारा उच्चरित १२० 'सबदों' का अर्थ श्री पारीक ने किया है ताकि एक साधारण पढा लिखा मनुष्य भी उसे समझ सके। किसी भी देव पुरुष की वाणी की तह तक पहुंचना बडा ही दुष्कर कार्य है, जिसे श्री पारीक ने सहज ही कर दिखाया है। इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं। उनकी जितनी भी प्रशंसा की जावे, वह कम है।

भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर ने "जाम्भोजी की वाणी" विषय पर शोध पूर्ण कार्य करने का दायित्व सन् 1960 में श्री सूर्यशकर पारीक को सौंपा था, जिसे उन्होंने अथक प्रयत्न से शीघ्र ही पूरा कर डाला। यह बात बडी महत्त्वपूर्ण है कि "गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पथ" पर किये गये अब तक के शोध कार्यों में यह सर्वप्रथम है और बाद में इस विषय पर शोध करने वाले शोधार्थियों ने इसे अवश्य ही देखा। इस ग्रंथ का महत्त्व मात्र बिश्नोई समाज के लिए ही नहीं बल्कि यह ग्रंथ मानव मात्र के लिए है, कल्याणकारी एवं वंदनीय है। मुझे आशा है इस ग्रथ का अपार स्वागत होगा। अंत में, मैं श्री सूर्यशंकरजी पारीक को नमन करता हू, जिन्होंने इस अछूते विषय पर शोध करने की पहल की थी और मैं धन्यवाद करता हू, भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर के वर्तमान निदेशक, डॉ. बाबूलाल शर्मा का जिन्होंने इस ग्रंथ को "प्रतिष्ठान" से प्रकाशित करने की योजना बनाई और ग्रंथ को वर्तमान रूप में तैयार करने के लिए स्वय तो परिश्रम किया ही साथ ही इस कार्य मे श्री मनीराम बिश्नोई एडवोकेट तथा मेरा भी सहयोग लिया।

डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई
वरिष्ठ शोध अधिकारी,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
गंगा बाल विद्यालय के पास
बीकानेर (राज.) 334001

विषयानुक्रम

जांभोजी की वाणी
(प्रथम खंड)

जांभोजी का जीवन-चरित्र

जांभोजी का आविर्भाव

महामानव की आत्मा विश्व में सदा मानवता का दिव्य–सदेश लेकर अवतरित होती है। वह विश्व के सभी प्राणियों को "सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया:" देखना चाहती है।

भगवान शकराचार्य कहते हैं कि "यावदधिकारमवस्थितिरधिकारणाम्"[1] अर्थात निर्वाण पद के प्राप्ताधिकारी जन ससार के उपकारार्थ स्वेच्छया संसार में प्रकट होकर तथा अपने उत्कृष्ट पद पर अवस्थित रहते हुए संसार का महोपकार करते हैं।

चिन्तनशील विद्वानों की मान्यता के अनुसार "विश्व का यह शाश्वत नियम है कि जब मानव समाज मे धर्म का ह्रास और अनृत की जीत होती है तब विश्वात्मा की प्रेरणा से कोई महापुरुष जन्म लेकर मनुष्य जाति को पाप और दु:खों से छुडाता है"।[2] भगवान श्री कृष्ण ने गीता मे[3] कहा है–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

जाभोजी के आविर्भाव के संबंध में इसी प्रकार की धारणा विश्नोई पथ में परम्परा से प्रचलित है कि "जब नारायण ने नृसिंहावतार लेकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी, उस समय प्रह्लाद ने भगवान से एक वर मागा था कि वे युग–युग मे जीवों के उद्धार के लिये अवतार लें। भगवान ने भक्त को वचन दिगा और मत्स्यादि अवतार धारण करने वाले वही भगवान त्रेता में श्री रामचन्द्र, द्वापर मे श्री कृष्ण और इसी अनुक्रम से कलियुग में जांभोजी अवतरित हुए।[4] विश्नोई पथ के साहित्य में किंचित हेरफेर से अनेक स्थलों में यह कथा वर्णित हुई है।[5]

सर्वप्रथम हम यहां जांभोजी के शब्दों के आधार पर ही उनके आविर्भाव संबंधी तथ्यो को जानने का प्रयत्न करेंगे। जिनमें हमे अधिकांशत: उनके आत्मतत्व के शाश्वत स्वरूप का ही परिचय मिलता है। यथा–

"वे बिना छाया–माया के है। हाड–मांस, रक्त और धातु से रहित हैं।[6] उनके न मां है न बाप। वे तो स्वयंभू है।" वे कहते है कि "लोग मेरी उत्पत्ति को नहीं जानते। जो इस संबंध में कुछ कहते है, वह सब व्यर्थ है।"[7]

---

१. वेदान्तदर्शन, अ ३, पा. ३, सूत्र ३२।
२. विश्नोई धर्म वेदोक्त, पृ २–३।
३ गीता, अ. ४, श्लोक ८।
४. इन भावों के मूल स्रोत जांभोजी के स्वयं के "शब्द" ही है।
५ जभगीता, जंभसागर तथा श्री जम्भदेव चरित्र भानु आदि।
६ जांभोजी की वाणी, शब्द २। ७ वही, शब्द २।

हम अवधूत है। निरपेक्ष योगी हैं। सहज नगर के राजा हैं।' मेरे संबंध में
ात्मक रूप से कोई कुछ नहीं जान सकता।"[१]

आगे कहते है, "मै भगवीं टोपी ओढकर कल्याणेच्छु जीवों के उद्धार के लिये
भर । पर आया हू और वह भी खासकर किसानों के लिये। यद्यपि श्री कृष्ण की
कृप किसानों का आवास तो धरती पर सर्वत्र ही है, किन्तु मुझे जंबू द्वीप में ही
आना क्योकि मुझे सिकदर को चेताना था। जो परमात्मा हज और काबे में भी
जाग्रत वही मै मरुस्थल मे जाग्रत हुआ हू। मुझे बारह कोटि जीवों की याद आई,
इसलि ुझे यहा आना पडा।"[२]

" गहरे नीर वाली नागौर की भूमि में अवतार लिया है, जहां भेड, बकरी,
ऊट अ पशुओं के बालो के वस्त्र (खरड) ओढे जाते हैं; इन्द्रायण-फल के बीजों
की रोट ाई जाती है, जहा गाये बहुत होती हैं; जहां खेतों की सीमा नहीं है तथा
जहा पीने ा पानी बहुत गहरा है।"[३]

जाभोजी अपना अवतारत्व प्रकट करते हुए कहते हे-मैंने प्रह्लाद को वचन
दिया था सलिये मैं अपने वचनानुसार जीवों को सन्मार्ग पर लाने, उन्हे तेतीस
कोटि देवो सम्मिलित करवाने (जीवों को स्वर्गाधिकारी बनाने से आशय) और अपने
स्थान से भ के हुअे जीवों को यथास्थान पहुंचाने आया।"[४]

जामो के शब्दों मे कुछ संस्मरण इस प्रकार स्पष्ट हुए हैं-"हाली (हलवाहा)
मुझे साधार ातें पूछते हैं, धोरों (टीबों अथवा जंगल) में विचरण करता हुआ खिलेरी
(जाति विशे थवा जाटो का एक गोत्र) पूछता है-महाराज, मेरी बकरी खो गई
है, उसे बत ये। अनेक व्यक्ति इसी प्रकार की साधारण बातें पूछते हैं। महल में
बैठा हुआ रा पूछता है-हे स्वामी, हमारी आयु कितनी है ? यही बात ठाकुर और
चाकर हाथ ुपारी लेकर पूछते है। किन्तु लोग मेरी वास्तविकता को न जानने
के कारण ही ा पूछते हैं।"[५] इस सदर्भ मे जांभोजी ने अपना परिचय इस प्रकार
भी दिया है- केवल ज्ञानी हूं। मरुस्थल पर अवतरित होकर मैंने अपने खेल
(रचना) का प्र र किया है। मैं लोगों को तेतीस कोटि देवो के आदर्श अथवा उन्हें
सप्राप्त करने । अनुगामी बनाने आया हू। मेरी आदि-उत्पत्ति के रहस्य को कोई
विरला ही जानता है। मैं आदि मुरारी से ही उत्पन्न हुआ हूं। मैंने अपनी काया का
स्वयं निर्माण किया है।"[७]

---

१ इलोलसागर, शब्द २६/४६, ५८, ६७ (शुक्लहंस)
२ जाभोजी की वाणी, शब्द २६।
३. शब्द इलोलसागर २६।
४. जाभोजी की वाणी, १०६।
५ वही २६।
६ वही ८५।
७ शब्द ७२।

वे किसी राजपुरुष (संभवत. बीदा) को संबोधित करके कहते हैं[1]—"हे राव, "विष्णु" से वाद न करो। मुझे समझने वाली ऊपर की समझ में और मेरी वास्तविकता में बहुत अंतर है। सत्पुरुषो का कुल तो उनके लक्षण ही हैं। मेरे न मां है और न बाप है, न भाई है और न बहिन है। मेरा किसी के साथ लौकिक संबंध नहीं है—मेरा संबंध तो उन्हीं से है, जिनका वैकुण्ठ पर विश्वास है और मैं उन्हीं को ढूंढता हूं।"[2]

जाभोजी के शब्दों के अंत.साक्ष्य से तथा उनके आविर्भाव संबंधी निर्देशनों से उनके माता—पिता, वंश एवं जन्मस्थान, जन्मतिथि आदि का विशेष उल्लेख नहीं मिलता है पर तब भी इतना तो उनसे स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है कि जांभोजी का अवतरण जंबू द्वीप—भरत खंड के मरु प्रदेश स्थित नागौर परगने में हुआ। उस समय दिल्ली पर सिकंदर (लोदी) राज्य करता था। उनके शब्दों से यह भी ज्ञात हो जाता है कि उस समय यह प्रदेश घोर जंगल में परिणत था। यद्यपि उस समय भी इस प्रदेश में जनपद थे[3], किन्तु आज जैसी जन संकुलता उस समय नहीं थी। जांभोजी ने इसी प्रदेश के "थली भाग" को अति उत्तम जान कर अपना आवास स्थान बनाया, यह उनके अंत साक्ष्यों से स्पष्ट हो जाता है।

जाभोजी के इन अंत.साक्ष्यों के पश्चात उनका ऐतिह्य "जंभसार"[4] "अवतार चरित्र"[5] आदि ग्रंथों से प्राप्त किया जा सकता है। "जंभसार" तो अनेक महात्माओं—रेडोजी, ऊधोजी, बील्होजी, सुरजनदासजी, अल्लूजी चारण आदि की रचनाओ के आधार पर साहबरामजी ने तैयार किया था। इनमें से कतिपय संत "हजूरीसत" और उनकी रचनायें "हजूरीकथायें" कहलाती हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं में अधिकाशत. जाभोजी का स्तुतिपरक परिचय ही मिलता है। संतों ने जाभोजी के प्रति अत्यंत श्रद्धाभिभूत होकर उनके चरित्रो में अतिमानवीय उपाख्यानो के साथ अलौकिक उपमाओ का मंडन किया है तदपि उनकी महानता, महान कार्यों, लोकोपकारक योजनाओ तथा जीवो के प्रति दयालुता के मानवीय भावों का भी विशद् परिचय मिलता है।

अंतर्साक्ष्य से जहां जिन—जिन बातों का बोध नहीं होता है, वहां परवर्ती सतों की रचनाओं तथा अन्य लेखकों की रचनाओं से जांभोजी के माता, पिता, जाति, जन्म,

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द ६७। २. वही, ६७।

३ राव जोधाजी ने बीका को कहा था कि "पृथ्वी पर कठिनता से वश मे आने वाला "जागल" नाम का देश है, तू साहसी है, इसलिये मैंने तुझे इस काम मे नियुक्त किया है।" (बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ ८५) उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रदेश भौगोलिक तथा अन्य दृष्टियों से भी विकट रहा होगा।

४ साहबरामजी राहड द्वारा विरचित एवं श्री रामदासजी द्वारा प्रकाशित।

५ साधु सुरजनदासजी विरचित।

जन्मस्थान एव बाल्यकाल से अंतिमकाल पर्यन्त की जीवन–घटनाओं का यथातथ्य परिचय प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ–स्वामी बील्होजी का निम्न छप्पय ही लिया जा सकता है, जिसमें उन्होंने जांभोजी के जीवन और उनके कार्यों का वर्षानुक्रम से विभाजन किया है–

वर्ष सात संसार, बाल-लीला निरहारी।
वर्ष पांच बाईरा पाले, बहुता धेनु चारी।
ग्यारह ऊपर चालीरा, शब्द कथिया अविनाशी।
बाल-गुवाल गुरु ज्ञान, सकल पूगा सया पच्चारी।
पंदरासौ तिरानवें, वदि मंगसर नौ आगले।
पालटियो रूप रहिया ध्रुव, अडिग ज्योति समरायले।।

इन्हीं से मिलते–जुलते विचार साहबरामजी के हैं–

महाजोत गुरु जंभ, भक्त हित लीला धारी।
सप्तवर्ष रहे मौन, सप्तविसूं गऊ चारी।
इक्यावन कथ ज्ञान, शब्द अणभै अधिकारी।
पच्चासी त्रियमास, तेज तप लाई तारी।
आठम सोम अठोतरै पंदरासौ अवतार।
त्राणवे मिंगसर वद नवमी, साहब पहुंचे पार।।

इस प्रकार के उदाहरणों तथा ग्रंथों से आगे हम जांभोजी के जीवन–वृत्त को जानने का प्रयत्न करेंगे।

❖❖❖❖

तात्कालिक परिस्थितियां

राजनीतिक स्थिति

राजस्थान की मरुधरा पर जिस समय जांभोजी का प्रादुर्भाव हुआ था उस समय दिल्ली के सिंहासन पर लोदी वंश का अधिकार था। सिकंदर लोदी उस समय दिल्ली का बादशाह था।[1] वह बड़ा ही धर्मान्ध एवं क्रूर शासक था। उसने एक दिन में १५,०० हिन्दुओं की हत्या करवा डाली तथा उन पर मनमाने अत्याचार किये। कबीर पर उसने हाथी छुड़वाया तथा गंगा में उन्हें डुबाने का प्रयास किया। उसकी निरंकुशता के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जांभोजी की वाणी से भी उसके इन कृत्यों का संकेत मिलता है।

लोदीवंश के अंतिम बादशाह इब्राहीम लोदी से राज्यसत्ता मुगलवंश के हाथों में आई। बाबर दिल्ली का बादशाह बना। बाबर भी हिन्दुओं के प्रति अच्छा व्यवहार न करता था। इतिहासकारों की दृष्टि में वह मदान्ध एवं स्वार्थी था।[2]

राजस्थान के इस मरुप्रदेश की राजनीतिक स्थिति उस समय कुछ इस प्रकार थी–

"ग्रासियाराज"[3] के रूप में अधिकांश उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र पर जाटों का स्वामित्व था। जिसमे मोहिल, खीची एवं साखलों राजपूतों के छोटे–छोटे राज्य थे पीपासर एवं संभराथल इस ग्रसियाराज में नहीं थे। जोधपुर के राव जोधाजी को अपना राज्य स्थापित किये अधिक समय न हुआ था। राव जोधाजी की ओर से इस क्षेत्र का एक हिस्सा मोहिलवाटी बीदोजी को मिला हुआ था।

नागौर परगने पर मुहम्मद खान नागौरी का शासन था। जांभोजी के साथ उसकी कई बार भेंट होने के उल्लेख मिलते हैं। एक ओर राव बीका बीकानेर राज्य की स्थापना करने के प्रयत्न में था। बीका ने समय पाकर जाटों की परस्पर की कलह से लाभ उठाकर अपने राज्य का विस्तार किया।

उस समय यह क्षेत्र अधिकांश जंगल एवं मरुस्थल प्रधान होने के कारण राजनीतिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखता था, तभी बीकाजी को अपना राज्य स्थापित करने में विशेष संघर्ष करना न पड़ा।

सामाजिक स्थिति

जांभोजी के आविर्भाव के समय देश की सामाजिक स्थिति भयंकर रूप से

---

१ वि. सं. १५४६–१५७४ तक जीवनकाल।

२ डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ. ११।

३. अपने जीवनयापन के लिये छोटी छोटी शासन इकाइयां।

डावा–डोल थी। मुसलमानों की धर्मान्धता अपनी चरमसीमा पर थी, जिससे हिन्दू बडे त्रसित थे। मूर्ति एव देव मदिरों का विध्वस, हिन्दू समाज पर अत्याचार, बलात् धर्म–परिवर्तन आदि बातें उस समय साधारण मानी जाती थीं। सामाजिक दृष्टि से हिन्दुओं के लिये यह समय संकटकाल था। हिन्दुओं को "जजिया" नाम का कर भी देना पडता था।

ऐसे वातावरण में मरुप्रदेश के जनमानस में आशा और शिक्षा–दीक्षा तथा नैतिकता के स्थान पर नैराश्य, जडता, सस्कारहीनता और अनैतिकता ने स्थान पा लिया था। आचार, विचार, पवित्रता, शील आदि गुण जनमानस से समाप्त हो चुके थे। जाभोजी की वाणी मे सदाचार पर अत्यधिक बल देने का यह भी एक तात्पर्य है।

अकाल–दुष्काल तथा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप जब–तब यहा के मानव समाज को सकट में डाल देते थे। बाबर के समय भयंकर अकाल पडने का उल्लेख मिलता है।[1]

सारे प्रदेश में फूट फैली हुई थी। अधिकांश लोग आपस में असत्य, छल और कपट का व्यवहार करते थे। एक–दूसरे को हानि पहुंचाने पर तत्पर रहते थे। बुद्धि से काम लेना छोडकर लोग अंधविश्वासों और रूढियों के दास हो गये थे। लोगों के दिलो में मानसिक दुर्बलताओं ने अपना स्थान बना लिया था, जिससे वे वहमी और संशयात्मा बन चुके थे।

आध्यात्मिक सबलता के अभाव में लोगो में स्वावलम्बन का भाव बहुत कम रह गया था। विभिन्न देवी देवताओं, भूत–प्रेतादि, अदृष्ट कल्पित शक्तियों अथवा अपने से भिन्न लोगो का आश्रय लेकर लोग अधिकतर परावलम्बी, निरुद्यमी, उत्साहहीन एव आलसी बन गये थे।

समाज सुधारक के रूप मे जांभोजी ने इसका समाधान ढूंढा और समाज को अपने उपदेशो से जाग्रत कर उसे सही मार्ग पर अग्रसर किया। बिश्नोई पंथ के साखीकारो ने जांभोजी के इस प्रकार के कार्यों का मार्मिक वर्णन किया है।

धार्मिक स्थिति

उस समय प्रदेश की धार्मिक स्थिति भी बडी जटिल थी। धर्म के वास्तविक स्वरूप को लोग भूल चुके थे। वैदिक धर्म के यज्ञ–यागादि के प्रति कोई रुचि नहीं रही थी। लोग आचार–विचार अेव धर्म–आस्था से शून्य हो चुके थे।

भैरव, भोमिया आदि नाना कल्पित देवताओं की मद्य, मांस एव जीव–बलि देकर, पूजा–अर्चना करना उस समय धर्म मान लिया गया था। तान्त्रिक, वाममार्गी तथा जमातधारी पाखंडी साधुओं के संसर्ग दोष से मरुधरावासी सर्वथा ही धर्महीन हो चुके थे। जाभोजी की वाणी तथा उस काल के अन्य संतो की रचनाओ से यह सहज ही

---

१ हिन्दी सन्त साहित्य, पृ २२।

जाना जा सकता है कि उस समय किस प्रकार धर्म के नाम पर अधर्म का ताण्डव होता था।

उस समय ऐसे अनेकों धर्मध्वजी बने पाखंडी साधुओं का संतो की वाणी मे उल्लेख हुआ है जो नंगे रहते थे, भांग, मद्य आदि मादक वस्तुओं का नशा करते थे और देवी तथा भैरव आदि के "मडों" पर जीवों की हत्या कर उन्हें खाते थे। वे अपनी "नाटक–चेटक" भूत–विद्या, श्मशान–उपासना आदि साधना के भय से भोली–भाली जनता को प्रभावित करते थे।

जनता को पाखंड-जाल मे फांसने के लिये अनेक जमाती साधु शरीर पर भस्म, शिर पर लम्बी जटायें, कमर में लोहकच्छ आदि बाह्याचारों को, धर्म मानकर प्रदर्शित करते थे। उस समय के जोगी, जगम, नाथ, दिगम्बर, पंडित, काजी–मुल्ला आदि पाखडियों का नामोल्लेख जाभोजी की वाणी मे हुआ है, जो पाखंड रूप कूए में औंधे मुंह गिरते जा रहे थे। धर्म और ज्ञान से शून्य वे मनहठ से अपनी मनमानी करते थे।

जाभोजी ने इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये पाखंडियों को ललकारा तथा आवश्यकतानुसार अपने आध्यात्मिक चमत्कारों को प्रकट कर उन्हें परास्त किया।[1] यही नहीं, जांभोजी ने अनेक स्थानभ्रष्ट योगियों को युंक्तिसम्मत वाणी में उपदेश देकर सही अर्थों मे उन्हें कर्मयोगी बनाया तथा जनता को पाखडियों के जाल से निकाल कर धर्म के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराया।

"विश्नोई धर्म वेदोक्त"[2] में लिखा है कि जांभोजी ने कुरानी (मुसलमान), पुरानी *(रूढिवादी हिन्दू) और जैनी लोगो को शास्त्रार्थ में हराकर अपना अनुयायी बनाया।* "रामचन्द्र का सच्चा दर्शन" में लिखा है कि एक महात्मा श्री जभदेव दिल्ली के पास हुए हैं जिन्होंने मुसलमान मौलवियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया और सैंकडों लोगो को अपना अनुयायी बनाया।"[3] निश्चय ही ये महात्मा जांभोजी से भिन्न नहीं थे। दिल्ली तथा उसके आसपास का क्षेत्र भी उनके धर्म प्रचार का केन्द्र रहा है, इसलिये जांभोजी को भी किसी लेखक द्वारा दिल्ली के पास का होना मान लिया गया होगा।

❖❖❖❖

---

१ जाभोजी के जीवन से अनेक चमत्कारो का सबध माना जाता है।

२ मुशी रामलाल, विश्नोई धर्म वेदोक्त।

३ प लेखराम, रामचन्द्र का सच्चा दर्शन, पृ ६।

वंश परिचय

जांभोजी का प्रादुर्भाव प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल पंवार (परमार) वंश में हुआ था। पंवार मूलत. अग्निवंशी हैं। इस वश की उत्पत्ति आबू में वशिष्ठ के अग्निकुंड से मानी जाती है।[1] पृथ्वीराज रासो तथा नैणसी के मतानुसार भी चार क्षत्रिय कुल–चालुक्य, चौहान, प्रतिहार एवं परमार अग्निकुंड से उत्पन्न हुए।[2] परमारों के वशिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पन्न होने की कथा परमारों के प्राचीन से प्राचीन शिलालेखों और काव्यों में पाई जाती है।[3] विद्वानों ने परमारों को अग्निवंशी माना है।[4]

इस वंश में बडे–बडे यशस्वी राजा–महाराजा हुए। विक्रम संवत को चलाने वाले महाराज विक्रमादित्य, भोज (?), भर्तृहरि तथा जगदेव पंवार जैसे पुण्य श्लोक महात्माओं की अमरकीर्ति को कौन भारतीय भुला सकता है ? इसी वंश के आबू के राजा धरणीवराह ने ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग अपने बाहुबल से राजस्थान के विशाल भूखंड को जीतकर "नवकोटी मारवाड" अपने नौ भाइयों में बांट दी थी।[5]

---

१. उदयपुर (ग्वालियर) से प्राप्त एक प्रशस्ति। विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजा भोज, पृ ३।

२. डॉ दशरथ शर्मा, पवार वंश दर्पण, प्रस्तावना, पृ. २। नवसासांक चरित, सर्ग ११, श्लोक ४६–७१।

इस संबंध में यह छप्पय द्रष्टव्य है–

असुर संहारन खिल अवनि, मुनिवर उपजी मन्न।
किय वशिष्ठ तहां क्षत्रिय कुल, पुरुष चार उत्पन्न।
चालुक और चौहान वर, परमारहु परिहार।
किय वशिष्ठ तहां क्षत्रिय कुल, सबलापनरत सार।

–सिढायच दयालदास, पंवार वंश दर्पण, पृ २।

३ डॉ. दशरथ शर्मा, पंवार वश दर्पण, प्रस्तावना, पृ. २।

४. कुछ ग्रंथो मे परमारो का गोत्र "वत्स" लिखा मिलता है, किंतु "वत्स" गोत्र चौहानों का है। नैणसी के मतानुसार परमारो का गोत्र "वशिष्ठ" है, जो डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार अधिक ठीक है। द्रष्टव्य है–पंवार वश दर्पण, प्रस्ता, पृ २।

५ डॉ दशरथ शर्मा, पंवार वंश दर्पण, प्रस्ता, पृ २। प विश्वेश्वरनाथ रेऊ, राजा भोज, पृ. ६।

मंडोवर सांवत हुवो, अजमेर अजैसू।
गढ पूगल पजवंत हुवो, लुद्रवा भाणभू।
भोजराज घर धाट हुवो हांसू पारक्कर।
अल्ल पल्ल अखुद, भोजराजा जालंधर।
नवकोट किराडू संजुगत, थिर पवार हर थप्पिया।
धरणी विराह धर भाइयां, कोट बांट जू–जू किया। –पवार वश दर्पण, पृ ४।

मारवाड के "रोल" नाम के स्थान से पंवारों के विक्रम संवत् ११५२ से १२४५ तक के शिलालेख मिलते हैं।[1] अत. इस विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जांगल प्रदेश की मरुभूमि पर पंवारों का आवास बारहवीं शताब्दी से ही हो चुका था।

कहा जाता है कि जांभोजी के पूर्वज "हरसोल" (मारवाड) से आकर इस क्षेत्र में आबाद हुए थे। इनकी एक वंशावली साधु श्री रामदासजी ने "जंभसार" में "प्राचीन महात्माओं की वशावली"[2] नाम से प्रकाशित की है जो यहां उद्धृत की जाती है–

१. उदियाचंद	२. गन्द्रफसेन	३. विक्रमाजीत	४. चिलत
५. अजीत	६. महीपाल	७. सेंदलसैन	८. भोज
६. सहदेव	१०. माहयचंद	११. महीचंद	१२. कुलचंद
१३. कालू	१४. बरड	१५. तांतल	१६ हरीसेन शांतल
१७. शांवल	१८. थेलप	१६. जालप	२०. सेतराम
२१. रोलोजी	२२. लोहटजी		

इसी प्रकार की एक दूसरी वशावली हमें एक हस्तलेख से प्राप्त हुई है जिसमें भी उदियाचंद से आरंभ होने वाले लोहटजी तक के नामों में कोई अंतर नहीं है।

"जाभाणी साहित्य" में वंश संबंधी परिचय बहुत कम दिया गया है, जिसका मुख्य कारण यह है कि संतमत में गृहस्थ जीवन के वंश परिचय का कोई महत्व नहीं है। किंतु उक्त वंशावली में प्रयुक्त नाम जांभोजी के पूर्वजों एवं पिता, पितामह एव प्रपितामह के हैं।

जिस प्रकार उस समय मरुधरा पर छोटे–छोटे ठिकानों के रूप में जाटों, जोहियों, साखलों आदि[3] जातियों का अधिकार था, उसी प्रकार जांभोजी के पूर्वजों का "पीपासर" पर स्वामित्व था।

पीपासर, नागौर (राजस्थान) जिले में है। यह ग्राम नागौर शहर से सोलह कोस उत्तर में ऊंचे–ऊंचे धोरों के बीच में बसा हुआ है।[4] पीपासर कब बसा और किसने बसाया, नहीं कहा जा सकता, परंतु रोलोजी के नाम से पवार क्षत्रिय अनुमानतः चौदहवीं शताब्दी के अंत अथवा पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पीपासर मे निवास करते थे।

---

१. भारत के प्राचीन राजवंश, भाग १ पृ ८७ तथा राजा भोज, पृ. १६।

२. साहबरामजी राहड, जंभसार, प्रारम के पाचवें पृष्ठ पर।

३ डॉ. गौरीशंकर औझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ ७०। ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य, करनी चरित्र, पृ १३०। सिद्ध चरित्र पृ ६।

४. पीपासर के समीपवर्ती ग्राम श्यामसर, ब्रह्मसर उत्तर में खिचियासर और उत्तर पूर्व में धूपालिया है। पीपासर से जांभोजी का प्रसिद्ध तप–स्थान "समराथल" धोरा चार कोस उत्तर मे है।

रोलोजी के उनकी धर्मपत्नी राजाधिदेवी मोहलाणी के गर्भ से तीन सतानें हुई:-

१. लोहटजी (ज्येष्ठ) २. पूलोजी और ३. तांतू नाम की एक पुत्री हुई।[१] रोलोजी के इन्हीं ज्येष्ठ पुत्र लोहटजी को जांभोजी के पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अपने पिता रोलोजी के पश्चात लोहटजी पीपासर के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए। लोहटजी का पाणिग्रहण सस्कार "छापर" निवासी मोहकमसिंहजी की कन्या हासाजी (केशरबाई) के साथ हुआ था।[३] जैसे लोहटजी सुंदर और गुणों की खान थे वैसी ही हांसाजी रूप तथा शील जैसे गुणों की आगार थी। लोहटजी और हांसाजी का दाम्पत्य जीवन नंद और यशोदा के समान था। हांसाजी लोहटजी के घर में तारा तथा कुती के समान शीलवती थी।[४]

लोहटजी धन-धान्य से सपन्न तथा उच्च व्यक्तित्व के धनी थे। स्वभाव से सरल, सत्यवादी तथा ईश्वर में पूर्ण निष्ठावान थे। उनका अतिथि-सत्कार तथा दानशीलता दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। उनका घर-द्वार स्वच्छ और भव्य था।[५] उनके घर में "ठाकुरद्वारा" था जिसमें बैठकर वे भजन-पूजन किया करते थे। लोहटजी का अधिकांश समय अेकान्त मे बैठकर भजन करने में ही व्यतीत होता था।[६]

दैवदुर्विपाक से लोहटजी को अपनी आयु के तीन भाग (प्रौढावस्था पर्यन्त) व्यतीत होने पर भी संतानलाभ नहीं हुआ। पुत्राभाव उनके चेहरे पर उदासी के रूप में छाया रहता था।

एक बार पीपासर के पास अकाल होने पर लोहटजी अपना गो-धन छापर की ओर ले गये। वहा किसी ने निपुत्रा होने के कारण उनके दर्शनों को किसी शुभ कार्य

---

१ स्वामी ब्रह्मानदजी, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ १।
रोलोजी का लोहटजी कहिये लोहट का जंभेश्वर रहिये। -जंभसार, प्र २३, पृ ३२।

२ इसकी ससुराल नेणाऊ ग्राम में थी। आगे जाकर यह जांभोजी की बडी भक्त हुई।

३ अवतार चरित्र एवं श्रीरामदासजी द्वारा प्रकाशित जांभोजी का जीवन चरित्र।

४. भाटी कुलवश निवासा, हासा नाम धरे सुख वासा।
सोई लोहट घर हुई वरनार, सुख लीनो शोभा संसार।
-सुरजनदास, जाभोजी का जीवनचरित्र, पृ १
(कहीं-कहीं भाटी के स्थान पर "खिलेरी" नाम भी आता है।)
सत अरू शांत छिमा की मूरत, रती नाम सब सदा विसुरत। जभसार, चतुर्थ प्र., पृ ६४।
नद सनातन लोहट हसा, पीपासर क्षत्रिय वंशा।
अैसे हि हसा घर में घरनी, तारा अरु कुता सम करनी। जंभसार, चतुर्थ प्र., पृ ६४।

५ ता घर सदा धर्म को वासा, गढ गौशाल पोलि प्रकाशा। जभसार, चतुर्थ प्र., पृ ६४।

६ बन्यो वृक्ष मे सुंदर मदिर, लोहट धयान करे ता अंदर।
-जंभसार, चतुर्थ प्र., पृ ७१
इकतरो सुदर स्थाना, साझियामान करहिं नित धयाना।
-जंभसार, चतुर्थ प्र., पृ ६४।

में "अपशकुन" समझा। जब उन्हें इस बात का पता चला तो वे बड़े ही व्यथित हुए। कहते हैं उसी दिन से गो-धन का भार अपने नौकरों पर छोडकर लोहटजी पुत्र-प्राप्ति के लिये वन में जाकर तपस्या में लीन हो गये। जब उन्हें काफी समय तप करते हो गया तब एक वृद्ध योगेश्वर ने वहां उपस्थित होकर उन्हें पुत्रवान होने का वरदान दिया।[1] विश्नोई पंथ की धारणा के अनुसार उसी वृद्ध योगी ने उसी दिन पीपासर में माता हांसाजी को पुत्रवती होने का वर दिया।

स्वामी ब्रह्मानंदजी जांभोजी के जन्म के समय लोहटजी की अवस्था पचास वर्ष की मानते हैं[2] किन्तु पचास वर्ष की अवस्था में पुत्रोत्पन्न होने की आशा नहीं छोडी जा सकती, अतः जांभोजी के जन्म के समय लोहटजी काफी आयु प्राप्त कर चुके थे।[3] लोहटजी को जब महापुरुष ने पुत्रवान होने का वरदान दिया था तब लोहटजी ने उस महात्मा के वचनों को यद्यपि सत्य माना, किन्तु उस समय उनका दिल संशय से डोल उठा, जब उन्होंन अपनी वृद्धावस्था पर विचार किया।[4] जांभोजी के जन्म के समय लोहटजी निश्चय ही प्रौढावस्था पार कर चुके होंगे।[5]

लोहटजी को उस योगीश्वर महापुरुष ने यह भी कहा था कि उस बालक की लोकवृत्ति नहीं होगी। वह अद्‌भुत चरित्र वाला होगा। सुरजनदासजी ने अपने "अवतार चरित्र" में योगीश्वर के वचनों को इस प्रकार उद्धृत किया है-

लोहट तेरे बालक होय, लोकवृत्ति ताकी ना होय।
अद्‌भुत रूप होयसी अवतार, दर्शन देख मोहित संसार।।[6]

सुरजनदासजी ने लिखा है कि लोहटजी व हांसाजी को महापुरुष द्वारा पुत्रवान होने का वर मिलने के कई दिन बाद हांसाजी[7] को गर्भाधान हुआ। दस मास के

---

१. अधिक विस्तार के लिये द्रष्टव्य है-श्रीरामदासजी द्वारा प्रकाशित "जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र"।

२. श्री जम्भदेव चरित्र भानु।

३. तीन अवस्था बहुसुख पावा, अब कुछ मन में सोच उपावा। अर्थात लोहटजी की तीनों अवस्था-बाल, युवा और प्रौढावस्था तीनों ही सुख से व्यतीत हुई, किंतु अब वृद्धावस्था आ जाने के कारण मन में सोच (चिता) उत्पन्न हुआ कि मैं अब तक निःसंतान हूं।
—जंभसार, चतुर्थ प्र., पृ ६५।

४. वचन सुने अवधूत के लगी पुतर की आस। सत्यजान मन हरख है, वृध करि होय उदास। —जंभसार, चतुर्थ प्र., पृ. ६६।

५. पन तीनों सुख गये बदीती। —जंभसार, चतुर्थ प्र., पृ ६५।

६. अवतार चरित्र। ७. जांभोजी की माता हांसाजी के कई नाम रूप मिलते है। यथा-हांसा, हंसा, हांसल, हांसदेव आदि। स्वामी ब्रह्मानंदजी श्री जम्भदेव चरित्र भानु प्र मे तथा मुंशी रामलालजी ने "विश्नोई धर्म वेदोक्त" पृ १८० पर हासाजी के केशर नाम को मुख्य मान कर प्रयोग किया है। किंतु यह नाम केवल पुस्तकों में ही पाया जाता है; वैसे हांसा तथा इस नाम से बने नामरूपों की प्रसिद्धि है।

पश्चात स्वय श्री कृष्ण ही जाभोजी के रूप में माता हांसाजी के शुद्धोदर से जन्मे, मानो सूर्य ही उदय हुआ हो–

केतेक दिन हुआ प्रमाण, आशा गर्भ ऊपजी जाण।[1]

\+ + + +

दश मास जद पूरा होय, माता सुख घर सूती सोय।
अगम बात कौ न पावे ज्ञान, कृष्णचंद्र सही ऊगे भान।।[2]

❖❖❖❖

---

१. अवतार चरित्र, –पृ २। २. वही।

जांभोजी का जन्म

जांभोजी का जन्म वि.सं. १५०८ भाद्र कृष्णा अष्टमी सोमवार की अर्द्धरात्रि में हुआ था। साहबरामजी ने लिखा है–

भादव मास कृष्ण पख रूधा,
अष्टम तिथि वार ससि सूधा।
सिद्धि जोग शुभ लग्न सुनायेऊ,
मृत-मंडल प्रभु आगमन भयेऊ।[१]

सुरजनदासजी तथा अन्य "साखी"कारो ने जांभोजी की उक्त जन्मतिथि का सर्वत्र समर्थन किया है–

(क) पंदरासौ अवतार लियो गुरु, आठम सोम अठौत्तरै।[२]
(ख) आठम सोम अठौत्तरै, पन्दहसौ अवतार।[३]
(ग) पनरासौ अठोतर साला, गुरु आयो भाविक जन भाला।[४]
(घ) पनरासौ अठ ऊपरै कृष्ण अष्टमी आरंभ।
मुरधर में अवतार लिय, वंदों श्री गुरुजंभ।।[५]
(ङ) पनरासै अठोतरे, गुरु आयो करि भाव।
कुपरि पलटण परिकरण, थापण नीति न्याव।।[६]

सुरजनदासजी ने इन तिथि–संवत् के साथ उस रात कृतिका नक्षत्र होने का उल्लेख किया है।[७]

हमारे संग्रह के एक हस्तलेख में जांभोजी का जन्म वृष लग्न में हुआ लिखा है[८] तथा एक स्थान पर मृगशिरा नक्षत्र का उल्लेख मिलता है।[९]

निम्नोद्धृत संस्कृत श्लोक में जांभोजी के जन्म संवत् के साथ देश– मरुस्थान, ग्राम–पीपासर और पिता लोहटजी के नामों का उल्लेख हुआ है–

श्रीमद् विक्रम भूपहायनगतेष्वष्टा प्रवाणेन्दुषु १५०८।
भादेकृष्णदले निशार्द्ध समये देशे मरुस्थान के
अष्टम्यां च तिथौ पुमारशुकुले पीपासर ग्राम के

---

१. जभसार, चतुर्थ प्र. पृ. ६२। २ सुरजनदासजी, अवतार चरित।
३. साहबरामजी, जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र। ४. जंभसार, अष्टादश प्र. पृ ४६।
५ साधु शालिग्राम, जंभेश्वर धर्म दिवाकर, पृ १। ६. "जंभसार साखी", साखी–४।
७. समत् पंदहसौ अठोतरे, क्रितिका नक्षत्र प्रमाण। भादों बदी अरु अष्टमी, चंद्रवार पुनि जाण। ८. भारतीय विद्या मदिर शोध प्रतिष्ठान में सुरक्षित पत्र।
९. राव सांवलराम मेलाना (ओसियां) एक अपील मे उद्धृत।

लोहट्टस्य सुपत्नि शुद्ध जठराज्जम्भावतारो भवत्[1]

इन उद्धरणों के अतिरिक्त विश्नोई पंथ की पुस्तकों[2] तथा अन्यत्र जहां भी जांभोजी का उल्लेख हुआ है[3] प्रायः उन सबमें यही जन्म संवत् लिखा मिलता है। जन्म संवत् के सबंध मे सभी प्रमाण तथा लेखक एकमत हैं।

साधु सुरजनदासजी ने जांभोजी के जन्म समय का इस प्रकार वर्णन किया है-

माता सपने रैन के, पुत्र हेत करि मींट।
हांसा बोली विहस तब, सनमुख बालिक दीठ।।[4]

अर्थात माता हासा रात्रि के समय स्वप्नावस्था में अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से सो रही थी, नेत्र खुलने पर जब उसने अपने सामने बालक देखा तो वे प्रसन्नता से विहंस उठीं।

लोहटजी को पुत्र-जन्म का शुभ संवाद

जांभोजी के जन्म का शुभ समाचार लोहटजी को तब प्राप्त हुआ जब वे ब्राह्ममुहूर्त में, अपने ठाकुरद्वारे मे परमेश्वर का ध्यान कर रहे थे।[5]

पुत्र जन्म का शुभ समाचार सुनकर लोहटजी के आनन्द का कोई पार नहीं रहा। उन्होने बालक को अपने हृदय से लगाया और अपार आनन्द का अनुभव किया।[6] "जांभाणी साहित्य" में ऐसे स्थलों के सुंदर वर्णन मिलते हैं।

---

१ जभाष्टक (जंभसागर मे प्रकाशित)।

२. जभसागर, जंभसार, विश्नोई धर्म वेदोक्त, विश्नोई धर्म विवेक, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, अवतार चरित्र आदि।

३ मारवाड राज्य का इतिहास, बीकानेर राज्य का इतिहास, तवारीख राज श्री बीकानेर, बीकानेर गजेटियर, मारवाड मर्दुम शुमारी रिपोर्ट, कल्याण का भक्तांक।

विशेष—"जाभाणी साहित्य" में जामोजी के जन्म–स्थान पीपासर का, स्थान–स्थान पर उल्लेख हुआ है–"नंद लोहट अवतार, "नंद सन[illegible] लोहट हंसा", (साहबरामजी, साखी ३२)। "लोहट घरां बधावणा, कुल पुवार तणै प्रका[illegible] (केशोदासजी, जंभसार साखी ४)। पीपासर प्रकट्यो दई, देवजे आयो दाय। घर [illegible] अवतार ने दीनी मोक्ष बताय।। (हरजी बेनीवाल, जभसार साखी)। नागौर के पर[illegible] देश जोधपुर जाण। पीपासर प्रकाशिया, सही जे उग्यो भाण।। (जंभसार साखी ३)। किये कुल पुवार तणै प्रकाश (जंभसार)। पीपासर वास प्रकाश भयो, दुख दालद मेटण आप दई। पति प्राण अधार पंवार तणों, कुल आप अपार अलेख सही। हहि हांसा मात सुपात सुपरसण, लोहट घर अवतार लियो।

४. सुरजनदासजी, अवतार चरित, पृ २।

५ बन्यो गृष मे सुंदर मंदिर, लोहट ध्यान करे ता अंदर। प्रात न्हाय आयेउ तेहि धामा, खोल कपाट ध्यान धरु श्यामा।

६ दासी आय बधाई लयऊ, हांसा उदर पुत्र अेक भयऊ। लेकर लोहट कठ लगाये, मानहू प्राण गयेऊ पुनि आये। (जंभसार, चतुर्थ प्र पृ ६२)।

जन्म घूंटी

जांभोजी के संबंध में यह मान्यता है कि उन्होने जन्मघूटी नहीं ली और न ही स्तन पान किया।[1] स्त्रियां उन्हें किसी भी उपाय से जन्मघूंटी न दे सकी।[2] "जंभसार" तथा "साखियों" में स्थान–स्थान पर इसका उल्लेख हुआ है। घूंटी तथा स्तन–पान न करने को जामोजी में जन्म से ही अद्‌भुतता होना माना जाता है।

लोहटजी की चिन्ता

लोहटजी को बालक के स्तन–पान न करने पर बडी चिंता हुई। "यह दुग्ध–पान के बिना कैसे जीवित रहेगा?"[3] यह उनके लिये रात–दिन चिंता का विषय बन गया। बालक की अद्‌भुतता देखकर लोहटजी आश्चर्यमिश्रित चिंता से ग्रसित रहने लगे। परंतु जब उन्हें सहसा यह स्मरण हुआ कि वन में मिलने वाले महापुरुष ने "अलौकिक और अद्‌भुत चरित्र वाला बालक होगा" कहा था, तब वे कुछ समय के लिये आश्वस्त हुए।[4] इस प्रकार दस दिन का समय व्यतीत हुआ। बालक का जन्मोत्सव मनाने के लिये कुटुम्बी जनों का आगमन होने लगा। लोहटजी के पुत्र होने का शुभ समाचार सुनकर उनकी बहिन तांतू भी अपने ससुराल नंदेऊ से पीपासर आई।[5]

ज्योतिर्विद ब्राह्मण का आगमन

लोहटजी ने ज्योतिषी ब्राह्मण को बुलाया[6] और उसे बालक के ग्रह– नक्षत्र देखने को कहा। ब्राह्ण ने ग्रहादि देखकर कहा, "यह बालक देवी– शक्ति–संपन्न है। अनिष्टकारक ग्रह तो इसके पास ही नहीं आ सकते। यह सनकादि, दत्तात्रेय,

---

पीपासर के जिस स्थान पर जांभोजी का जन्म हुआ था उस स्थान पर वर्तमान में मंदिर बना हुआ है जिसे चौ बगडावतराम गोदारा निवासी मेहराणां, अबोहर जिला फिरोजपुर (पंजाब) ने सन् १९७० मे बनाया था। राव दूदा मेडतिया को जहाँ वरदान दिया था वह स्थान पीपासर गांव से लगभग एक कि.मी. है। यहाँ कुछ वर्ष पूर्व प्रेमदासजी नाम के साधु ने मंदिर बनवा दिया। वह पीपासर की "साथरी" कहलाता है।

१. पचहारी सब नार, घूंटी बूंटी ना लही।
   निसदिन करत विचार, दूध अरु जल पीवै नहीं। –जंभसार, षष्टम प्रकरण, पृ १०५।

२ नारी आचार विचार करैं, अलिआन निरमल नीर न्हावैं।
   घूंटी के काज तकै कर मोहन, मोहन को मुख हाथ न आवै।
   गाल के नाक टिकै कर ठोडी, गोविन्द की गति नारी न पावै।
   केशवदास उजास भई सब धरणीधर कबूं पीठ न लावै।

३ फूमो दूध न थानक धार, जीवै जागै कवन विचार। –सुरजनदासजी, अवतार चरित।

४ लोहट हांसा नै कह मनमां करौ विचार।
   महापुरुष बन भेटिया, ताकी वाचा सार।। –सुरजनदासजी, अवतार चरित, पृ ३।

५ घाट बाध दिन दश बरतांहि, कुटुंब लोग आवे घर मांहि।

६ रैन घटि दिन प्रगटियो आय, लोहट पांडे लियो बुलाय।
   पडित पता देख निहाल, कवन महूरत आयो बाल।

गोरख, कपिल तथा नारायण के समान योग-शक्ति संपन्न होगा तथा धर्म का प्रचारक एव जीवों का कल्याण करने वाला होगा।[1]

नामकरण संस्कार

दस दिन बाद बालक का नामकरण संस्कार हुआ। "श्री जम्भदेव चरित्र भानु के अनुसार ब्राह्मण ने बालक का नाम "जंभराज" रखा।[2] जांभोजी के अनेक नामरूप तथा नाम विशेषण प्राप्त होते हैं[4] तथा इस नाम की विद्वानों ने कई प्रकार से व्युत्पत्ति की है।[5]

"नन्द्यादेर्ल्युहृयादेर्णिनि. पचादेरच्स्यात्" इस सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ "कृत पचादिराकृतिगण." "रधिज भोरचि" (अ. ७ पा सूत्र ६१) अेतयोर्नुमागमः स्यादचि" इस

---

१. पडित पतड़ा बांचे जोय, यह बालक कुल तारक होय।
पांडे वचन सुनाया जाहि, मात पिता सोचै मन मांहि।
सोवै नहीं पीठ धर सोय, धरती अंग न लावै कोय।
नीर दूध नहीं लेई आहार, भूख प्यास नहीं नींद व्यवहार। -अवतार चरित्र, पृ ३।

२ स्वामी ब्रह्मानंदजी, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, जन्म प्रसंग।

३ जांभोजी, जाभाजी, जंभजी, जंभनाथ, जंभराज, जभेश्वर, जंभमुनि, जंभऋषि, जंभदेव, जम भगवान, जंभमीशम, जंभ, जंभगुरु, जंभेजी, जंभनरेश, जंभेश्वर हरि, जभराय, जंभेश्वर देव, जाम्हो, जामदेव आदि। ये नाम "जांभाणी साहित्य" एवं अन्य लेखकों की रचनाओ मे प्रयुक्त हुए हैं। "जंभनाथ" नाम का प्रयोग "उत्तरी भारत की संत परम्परा" में, जाम्हो नाम का प्रयोग स्वामी नरोत्तमदासजी के एक लेख तथा जांभादेव नाम का प्रयोग "वीर विनोद" प्रथम प्रकरण, पृ १ फुटनोट मे हुआ है।

४ नाम विशेषणों मे-अलखराजा, बुधर, मोहन, स्वामीजी, साधपूगीसाम, अेकलवाई, अडबडिया आधार, श्याम सपीहर, कोड्यां रो, तारणहार, खालक, जीवांधणी, रूंखां पालण, संभराश्याम, कवलिश्याम, श्रीदेव, सिद्धेश्वर थापण (बीकानेर के इतिहास में प्रयुक्त) महामुनी, परम कारुणिक योगीश्वर, गत का ग्वाल, पृथ्वी का पाल, दालिद्रभजन देव, आदि नाम विशेषण विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं।
जाभोजी के लिये "मुनि" और "ऋषि" शब्दों का प्रयोग हुआ है। "मुनि" शब्द के साथ ज्ञान, तप, योग और वैराग्य जैसी भावना का गहरा सबंध है। "ऋषि" शब्द का मौलिक अर्थ मंत्रद्रष्टा है। तुलना कीजिये-"ऋषि दर्शनात्स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यव (निरुक्त, २/११)

५ *जम (जांभोजी) नाम की व्युत्पत्ति-*
जाभोजी के नाम की व्युत्पत्ति के संबंध मे जंभसागर (हिसार) पृष्ठ ३१८ पर एक श्लोक उद्धृत हुआ है-

जंभेति शब्द प्रसिद्धि यथोक्त लोकवेदयो
अत्रापि जम्भ शब्दार्थ ज्ञेयं पंकजशब्दवत्

ऐक स्थान पर "जंभसागर" में जांभोजी के नाम की इस प्रकार व्युत्पत्ति की है- "जंभिनाशने (पा.धा.पा.चु ग धातु १८३) नन्दिग्रहि पचादिभ्योल्युणि न्यच" (३-१-१३४)

सूत्र से नुम आगम होकर जंभ शब्द सिद्ध होता है। "जम्भयति नाशयति अज्ञानम् पापानि वा जम्भ: मननान् मुनिरिति व्युतपत्याध सम्भवात" अर्थात अज्ञान का नाशक हो और मुनि हो उसको जम्भ मुनि कहते हैं। अणिमादि सिद्धि सपन्न को जम्भमुनि कहते हैं। यजुर्वेद का यह मंत्र देखिये–

अध्यवोचदधिवक्ता, प्रथमो दैव्यो भिषक
अहीश्च सर्वाजयन्सर्वाश्च यातु धान्यः (यजु. ये. रुद्रा अ. ऋ ६)

"जम्भाराति" नाम इन्द्र का है जिन्होंने दुष्टों का दमन किया था। इसी प्रकार के भाव को प्रकट करने वाला निम्न दोहा देखिये–

जंभा सुर जैसे जवन, दुगुण विस्तर्‌यो दंभ
तेहि मद मर्दन इन्द्र सम, वंदौं श्री गुरु जंभ।

वायुपुराण ३ अनुङ्ग पादे नवषष्टितमोध्याय, पृ ३४१ में निम्न श्लोकों में जंभ शब्द का प्रयोग हुआ है जो नाग जाति के प्रधानों में एक है। संभवत. मूल वाणी मे प्रयुक्त "शेष जम्भराज" (शब्द ६४) इसी ओर संकेत करता है।

कण्डूर्नाग सहस्रवै धराधर मजीजनत्
अनेक शिरसांतेषां, खेचराणां महात्मनाम्
बहुधा नामधेयानां, पायशस्तु निबोधत
तेषां प्रधान नागाश्च शेष वासुकि तक्षकाः
साकर्णीरश्च जम्भश्च अञ्जनो वामनस्तथा
+ + + + +
कादवेया मयाख्याताः खशायास्तु निबाधत

जभति, जम्भति का अर्थ संगम करना और रमण करना भी "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ" में लिखा है। इस आधार पर भी विभिन्न जातियो को एकरूपता देना "सगम" का तात्पर्य है। "रमण" का तात्पर्य सर्वव्यापकत्व से है।

एच ए. रोज "एगूलासरी" इ (भाग २) पृ ११० के मतानुसार परशुराम चतुर्वेदी "अचम्भा" से "जम्भाजी" शब्द बनने का सकेत करते हैं। साखियों मे भी "जम्भ अचम्भो आयो" प्रयोग है। यद्यपि जाम्भाजी का जीवन अचम्भो–आश्चर्यकारक चमत्कारों से पूर्ण है तथापि अचम्भा से जम्भा बनना भाषा विज्ञान की दृष्टि से सभव नहीं है और "अचम्भा" से युक्त तो सभी महापुरुषों के जीवन होते ही हैं। कबीर के विषय में भी "हमरे घर है अचरज पूता" कहा गया है। नाम के संबंध मे ऐसी सभावना है कि "यमहा" शब्द लोकभाषा में जंभा या जांभा बन सकता है–यमहा–जमहा–जम्हा–जम्भा या जांभा, अर्थ होगा–यमराज को या यमराज के भय को नष्ट करने वाला, जन्म मरण से छुटाने वाला। हमारे विचार से जांभोजी का नाम वैदिक तत्व को सामने रखकर रखा गया अथवा हो गया।

बाल्यकाल

जांभोजी जन्म से ही अद्‌भुत चरित्र थे। उनके शैशवकाल के आश्चर्यजनक चरित्रों का उल्लेख विश्नोई पंथ के साहित्य में बडे विस्तार के साथ हुआ है। उदाहरणार्थ–जच्चा गृह से अदृश्य होना, पुन: प्रकट होना[1], अन्न–जल एवं दुग्धादि का पान न करना और अपने शरीर को इतना बोझिल बना लेना कि उठाये भी न उठना[2]। कर्ण–छेदन संस्कार पर कानों में बाली तथा धागे का न ठहरना।[3] यज्ञोपवीत संस्कार पर गले से जनेऊ का नीचे गिर जाना। अध्यापक के सामने अनधीत शास्त्रो का वाचन करना आदि।

एक कथा है कि जब जांभोजी ने दुग्धादि पान नहीं किया तब लोहटजी उन्हें उपचार के लिए "भोपा" के मढ पर ले गये। वहां भोपा ने पाखंड किये और ग्यारह जीवों की बलि दी। "भोपा" ने जब यह कहा कि "बालक को स्वस्थ करने हेतु ग्यारह जीवो की तो बलि दे चुका हूं" तब जांभोजी ने इस बात का प्रतिवाद करते हुए कहा, "झूठ, तुमने तेरह जीवों की हत्या की है।" पर भोपा ने कहा, "नहीं, बलि तो ग्यारह की ही हुई है।" इस पर जांभोजी ने कहा "दो गर्भस्थ जीवों की हत्या भी साथ में हुई है।"[4] इस प्रकार अनेक चमत्कारपूर्ण चरित्र जांभोजी के हैं।

---

१ माता मने उदास हुय, दौड गई दरबार।
अब बालक दीसै नहीं, ताका कहौ विचार।। — जंभसार चतुर्थ प्र., पृ ७३।
इह रानी के वचन सुन, तुरत गये रनवास।
अब बालक घर मे नहीं लोहट भये उदास।। — जंभसार पंचम प्र.।
खिजकर लोहटजी कह्यो, लेग्यो कोउ उठाय ?
के छल छेदर चरत कोउ ? अब कहु कहा बसाहु।। — जंभसार चतुर्थ प्र., पृ ७३।
घड़ी अेक अैसे भई, लोहट निकसे बार।
बालक पोढे सेज पर, निगम खरे तनु धार।। — जंभसार पंचम प्र., पृ ८५।
जैसे निरधन को धन मिले, पड्यो दरब को·ढेर।
अेहि गति दंपति की भई, छीन लेहु जनु फेर।। — जंभसार पंचम प्र।

२. श्री जम्भदेव चरित्र भानु, जन्म प्रसंग।

३ वेधनहारा देखहि, कान छेद कछु नाहिं।
त्वचा हाड मांस ही नहीं, तब चालेउ खिसियाय।। — जंभसार षष्ठम् प्र।

४. नाचै कूदै भोपडा, कारी लगै न काय।
पाखड पाप पसार कै, मने रह्या अरगाय।।
सूभर छाली मारी दोय, गर्भ जीव निकाला दोय।
सतगुरु लेखै अेक न आने, सबला जीव पिछार्णे सीव। अधिक जानकारी के लिये देखिये अवतारचरित्र (स्वामी श्रीरामदासजी द्वारा प्रकाशित)।

जन्मजात अवधूत

जांभोजी जन्मजात अवधूत थे। उन्हें बाल्यकाल से ही कपड़े तथा आभूषण पहनना पसद नहीं था। पिता के चाहने पर भी वे इस ओर से उपराम थे। "अवतार चरित्र" में लिखा है–

मेरे घर लक्ष्मी घणी, को न भोगवे आय।
कपड़ो भूषण धारल्यो, सुख पावै पितु-मात।।

लेकिन जांभोजी के चित्त में इस प्रकार की साधारण तथा लौकिक बातें स्थिर नहीं हो पाती थी।[1]

जांभोजी एकान्तप्रिय थे–

सदा उदास बोलेहु न कबही।
बालनि संग रलायो तबही।
मिले बालक खेलन जाई।
मिले न ता संग दूर रहाई।
बालक खेलन ही बुलावै।
बैठ इकंतर ध्यान लगावै।[2]
बालक ख्याल देखकर जाई।
ल्याये बिना जंभ नहीं आई।
जब माता ल्यावन को जावै।
गहै हाथ तबही उठ आवै।[3]

जाभोजी जन्म से ही योगी थे। वे सहज समाधि में ध्यानावस्थित रहते थे–

कर ही ध्यान नित लगै समाधी।
मन तन कर जेहि नहीं उपाधी।
आतम ध्यान लगाय अखंडा।
पवन वेग जीतै प्रचंडा।
सबकी सुने सबनकी देखे।
.......सब त्रिलोकी देखे।
यहि विधि सात वर्ष के भये।[4]

जब वे गायें चराने जाते थे तब अनेकों बार रात्रि को जंगल में रह जाते थे। "सांखलों का धोरा" और "समराथल धोरा" उनके प्रिय स्थान थे। कई बार वे महीनों

---

१. जंभराज चित अेक न आने, अलख भेज पुनि नहीं पहचाने।
श्री जंभदेव चरित्र भानु, पृ २५ में लिखा है कि जब कभी माता–पिता ने जाभोजी को आभूषणादि पहनाये तो वे उन्हें कटक की तरह चुभने लगे। उन्हें तब तक चैन न पडा जब तक उनके हाथ–कंगन एवं कर्ण–कुंडल उतार न लिये गये।
२ जंभसार, साहबरामजी।
३. जंभसार। ४. जंभसार।

घर से बाहर निर्जन व गुप्त स्थानों में चले जाते थे। जभसार में ऐसे अनेक चरित्रों का संकलन हुआ है।

माता की जांभोजी का विवाह करने की इच्छा

जांभोजी की माता ने उनका विवाह करना चाहा[1] किन्तु उन्हें यह कब स्वीकार था ? उनका तो मार्ग ही भिन्न था। वह परमार्थ का मार्ग था, जिसके वे पथिक थे। उन्हें तो ऐसे तख्त की रचना करनी थी जिसके शासन में धर्म, समता और सदाचार की प्रधानता हो। उनका धरती पर आगमन ही इसी उद्देश्य से हुआ था। उनकी वाणी में इस ओर सकेत हुआ है–

मा जाणै मेरै बहुटल आवै बाजै विरद बधाई
म्हे शंभु का फरमाया, बैठा तखत रचाई।[2]

जाभोजी ने आजन्म ब्रह्मचारी रहकर परमार्थ मार्ग को प्रशस्त किया। जिस उदेश्य से इस विभूति का उदय हुआ था, उस लक्ष्य की ओर वह निरंतर अग्रसर रही।

जाभोजी भूख–प्यास से रहित, मैडी–मंडप, कोट, घर और माया से रहित, वृक्षों के नीचे विश्राम करने वाले परमहंस वृत्ति के थे।[3] ऐसी वृत्ति वाले भला विवाह आदि के सासारिक बंधनों से कैसे बंधते ?

जांभोजी का गोचारण

जांभोजी के जीवन के सात वर्ष बाल–लीला मे व्यतीत हुए। उसके बाद उन्होंने सत्ताईस वर्ष तक गोचारण किया।[4] उनकी वाणी से "छाळी" "टाट" और गौओं का चराना ज्ञात होता है।[5] उन्होने एक स्थल पर कहा है, "जहां मैंने जन्म लिया है वहां गायें बहुत होती हैं।" जाभाणी साहित्य में जांभोजी को "पशुवां परमेश्वर" तथा "जभा गोरक्षा अवतार"[6] जैसे विशेषणो से विभूषित किया गया है जो उनके गौ आदि पशु प्रेम के द्योतक हैं।

गो–धन एवं अन्य पशु उनकी आज्ञा में चलते थे। सुरजनदासजी ने लिखा है[7]–

---

१ स्वामी ब्रह्मानदजी, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ २२, २३।
२ जाभाजी की वाणी, शब्द सख्या ८५।
३. पुरुष पगट्यो अेक पाप पुनि सिद्ध करंतो।
नहीं भूख तिस नींद, रह्यो निरंकार करतो।
रूख वृक्ष विश्राम, तजी मनहू तै माया।
मेडी मंडप कोट तजे घर मदिर छाया।
"वील्हा" सोच विचार अब, मन साधा गुर साचो मिल्यो।
जभ सरीखो इसो गुरु, जुग जुग और न साभल्यो।।
४ जैसा कि बील्होजी ने अपने छप्पय में जांभोजी के जीवन का विभाजन किया है।
५ जाभोजी की वाणी, शब्द ८५।
६ नत्थूराम, जभेश्वरी भजनमाला, पृ १०।
७. श्री जभदेव चरित्र भानु, भूमिका, पृ १५।

(क) सतगुरु जावे गायां लार।
भूख प्यास नहीं उर अहंकार।।
हुकमे वाछा धूंगे गाय।
व्याघ्र चोर न सतावे काय।
आज्ञा आवें आज्ञा जाय।
याल गोपाल रहे संग आय।
(ख) हुकम घरावे पाल, हुकमें पाणी पीजिये।
यालां संग जग आप कहियो यालां कीजिये।[4]

जांभोजी के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे जितने पशुओं को कूए पर पानी पीने की आज्ञा देते थे, उतने ही पशु खेळी में पानी पीने जाते थे। इस संबंध में देखिये जमसार का उद्धरण–

(क) बैठेऊ बाळक जांउ आधारा, बोलेऊ कोहर संचण हारा।
सोळा भैंस भेजदे भाई, कहते इस्पात खेळ आई।
पय पी तुरत तेऊ दूरी, बीस भैंस आवण दे पूरी।
बीस गई और निकट न आवै, मावै खेळ जितेई पी जावै।
सबहि जानवर सीरा नियाई, हृदय मन अचरज अति आवैहि।
(ख) जळ पीवै कहिये खड़ चरहैं, पसू सकल अज्ञा संवर हैं।

इस प्रकार उनका गोचारण एवं पशु पालन भी उनके अद्भुत चरित्रों के अनुकूल ही था।

❖❖❖❖

४. जंभसार, साखी, पृ. ३०
५ वही, षष्टम प्रकरण, १३३।
६ जंभसार, षष्टम प्र., पृ १३३।

जांभोजी की मौनावस्था

जाभोजी के संबध में यह प्रसिद्ध है कि वे अपने जीवन में एक लंबे समय तक मौन रहे। किंतु इस संबंध में यह मतैक्य नहीं है कि वे किस समय तक मौन रहे और किस उम्र में उन्होंने बोलना आरंभ किया।

स्वामी ब्रह्मानंदजी के मतानुसार जांभोजी जन्म से बारह वर्ष तक की अवस्था तक मौन रहे।[1] डॉ. परमात्माशरण जांभोजी का ३४ वर्ष की आयु तक मौन रहना मानते हैं।[2] "जंभसागर" (हिसार) के अनुसार जांभोजी ने प्रौढावस्था पर्यन्त कभी कुछ भाषण नहीं किया जिसकी साक्षी में वहां यह दोहा उद्धृत किया गया है-

हांसा लोहट नै कह, सुनो बात चित लाय।
बाळक मोटो बोलै नहीं, कोई जतन कराय।।[3]

डॉ. हीरालाल ने भी उक्त मंतव्यों की भांति ही जांभोजी के ३४ वर्ष की अवस्था तक एक शब्द भी न बोलने का उल्लेख किया है।[4] किन्तु जांभोजी का यह मौन एक मूक व्यक्ति का मौन नहीं था। उनकी यह मौनावस्था एक योगी की साधनावस्था जैसी थी। स्वामी ब्रह्मानंदजी के मतानुसार जांभोजी की इस उपराम वृति को पीपासर के निवासी उनका "गूंगापन" समझते थे।[5]

हमारे मत से जांभोजी अबोले तो पहले भी नहीं थे। उनके बाल चरित्रों से यह ज्ञात होता है कि वे आवश्यकतानुसार बोलते थे।[6]

पूर्व का मौन उनका साधना-काल था। जो उन्हें संचय करना था, पाना था और जिस भाव-स्थिति में उन्हे स्थिर होना था, जो चित्य था और जो चिरतन था वह उन्होने अपने ३४ वर्ष के सुदीर्घ जीवन काल में भली भांति से पा लिया था।

जांभोजी के पिता उनकी इस प्रकार मौन तथा अवधूत वृत्ति को रोग-जन्य जानकर बडे ही चिंतित रहते थे। उन्होने अपने पुत्र को प्रकृतिस्थ एव स्वस्थ करने के अनेकश. उपाय किये[7] किन्तु जांभोजी के सामने वे सब प्रयत्न विफल ही हुए।

---

१. स्वामी ब्रह्मानंदजी, श्री जभदेव चरित्र भानु।
२. विश्नोई धर्म वेदोक्त, भूमिका, पृ. ६
३. स्वामी रामानंदजी, जभसागर (हिसार) पृ. २३६।
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. २७७।
५. वही, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ. ८।
६. देखिये, जांभोजी का बाल्यकाल।
७. लोहटजी को हांसाजी ने कहा-
ऐसा कोई जतन करावो, जेहि तेहि विधि लालहि बोलावो।
करो जतन देवा नै ध्यावो, बोलै बाल जन्मफल पावो।
—जंभसार, षष्टम प्रकरण, पृ १२२।

लेकिन पिता तो अब भी आशावादी थे। उनकी एकमात्र इच्छा थी कि किसी भी उपाय से उनका पुत्र स्वस्थ हो एवं बोलने लग जाय। अतएव इस ओर उनके प्रयत्न अब भी चालू थे।

उन दिनों नागौर में एक ब्राह्मण रहता था जो अपनी विद्या के लिये बहुत प्रसिद्ध था। लोहटजी ने उसके पास जाकर अपने पुत्र को स्वस्थ करने की प्रार्थना की।[1] सुरजनदासजी ने इसका इस प्रकार उल्लेख किया है–

पंडित अेक बसै नागौर, तिसको पंडित पूछैं और।
तहां गया लोहट गंभीरा, बालक सकल सुनाई पीरा।
कह लोहट सुनो विनती मोरी, अन धन देऊं गऊ बहुतेरी।
विप्र कह सुन लोहट बीरा, बालक सकल हरूं सब पीरा।
लोहट पंडित लायो बुलाय, विप्र पहुंचो पीपासर आय।[2]

लोहटजी की प्रार्थना पर ब्राह्ण ने पीपासर आकर जिस विधि का आयोजन किया, सुरजनदासजी ने उसका सुंदर वर्णन किया है[3]–

अठोतर दीपक उतराया, करवै चौसठ छेद कराया।
अग्नि में ये सब पकवाया, रविवार को अरु उतराया।
करवै जल भरी हित लाया, पांडे मंत्र पढे चितलाया।
सतगुरु नै स्नान करायो, दीपक बत्ती धर जलायो।[4]

अर्थात ब्राह्मण ने एकसौ आठ दीपक तथा चौसठ छिद्र वाला मिट्टी का कलश रविवार के दिन कुम्हार के आवे में पकवायें। ब्राह्मण उन मिट्टी के बर्तनों एवं अन्य सामग्री को लेकर अनुष्ठान करने बैठा। ब्राह्मण ने दीपकों को घृत और कलश को पानी से पूरित किया।

---

१. जंभसार की एक कथा के अनुसार वह ब्राह्मण देवी–भक्त था। उसका नाम खेमनराय तथा वह कालपी का निवासी था। (वही, षष्टम प्र) सुरजनदासजी उसे नागौर का निवासी मानते हैं। उसकी जाति के लिये पांडे, पाडिया, विप्र, जोशी आदि कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं, लेकिन जांभोजी के "शब्द" साक्ष्य के अनुसार वह पुरोहित था। एक धारणा के अनुसार उसका नाम मूलराज था जो पंवारों का कुल पुरोहित था। निम्न दोहे से यह बात सिद्ध होती है–
अेहि विधि लोहट विनय कर, कीनेहु बहु सन्मान।
जो कारज हमरो भयो, तुम गुरु हम जजमान।

२. सुरजनदासजी, अवतार चरित्र।

३ श्री जम्भदेव चरित्र भानु के अनुसार यह आयोजन पीपासर के कूए पर हुआ तथा यह अनुष्ठान ११ दिन तक चला। जंभसार के अनुसार यह अनुष्ठान जांभोजी के घर के आंगन में हुआ– गोबर गौ करि घर लिपवाया। आगण में अेक चौक पुराया।

४. सुरजनदासजी, अवतार चरित्र।

ब्राह्मण ने अनुष्ठान की प्रारंभिक विधि सम्पन्न करने के बाद दीपकों को जलाने का उपक्रम किया, किन्तु जैसे ही वह दीपकों को जलाता था वैसे ही दीपक बुझ जाते थे। मंडप की ओट मे बिना हवा–आंधी के दीपक न जले[1]–

मंत्र पढे पांडिया, सत देखे संसार।
ज्यूं जलावै त्यौं बुझै, पवन न चले लिगार।[2]

ब्राह्मण को दीपक न जलने तथा जलकर तत्क्षण बुझ जाने का कारण समझ में नहीं आ रहा था। सुरजनदासजी ने इसका वर्णन किया है–

तैल बाती सब ठहराय, दीपक किस विध जले न काय ?
किस विध जोति होन नहीं पावै, पांडे मन में अति पछितावै।
तेल बाती पुनि जोत न होय, ऐसो अचंमो सुण्यो न कोय।
जोलों दीपक जोत न होय, तोलों मंत्र चलै नहीं कोय।[3]

\+ + + +

दीपक जगै अरु दीसै लोय।
बालक सारों करदूं तोय।

अर्थात् ब्राह्मण का कथन था कि बालक का स्वस्थ होना इन दीपकों के प्रज्ज्वलित होने पर निर्भर करता है। पर ब्राह्मण के सामने बैठे जांभोजी ने जब उसकी बात को सुना तब उन्होने कच्चे करवे (बिना पक्का घडा) को सूत के कच्चे धागे से बांध कर, कूए से जल निकाला और उस जल को दीपकों में भर दिया तथा बिना अग्नि के ही उन दीपको को जला दिया[4]–

काचे करवै जल रख्यो, शब्द जगायो दीप।
ब्राह्मण को परचो दियो, ऐसो अचरज कीन।[5]

---

१. चोमुख दीप बनाय कै, आंगन दियो सै बार।
बो जगावै बो बुझै, बुझत न लागै बार।

२ सुरजनदासजी, अवतार चरित्र।

३ वही।

४ जभसार में इस घटना का वर्णन इस प्रकार हुआ है–
पूर्ण ब्रह्म सुनेहु यह वचना, जानेउ खूब कपट की रचना।
उठेउ तुरंत बाहर को धावा, कछु नर–नारी लारे आवा।
प्रथम गयेउ प्रजापति गेहा, कच्चा करवा लीनेहु तेहा।
कात रही घर अैड बाला, लीनी कूकडी जंभ कृपाला।
बैठे दूकंत खोल तेहि तागा, करवै के मुख बांधण लागा।
बाधि ताहि छिन कूप उसारा, लाये जल दीपक में डाला।
चुटकिन दीपक दयेउ जलाई, करेहु सेन बोलावहूभाई।
तब ही खेमन मन में कपेउ, गुरु जान हरि चरनन चपेउ।
–जंभसार, षष्टम प्र, १२४।

५ स्वामी रामानंद गिरि, जंभसागर, पृ २३८।

सुरजनदासजी ने लिखा है–

(क) दिवा जगावै सब तैल अधारा, सतगुरु जोति करै जलधारा।

(ख) जलमां जोति परगटी जोय, दुनियां हरी अचंभै होय।

बालक हुकम कियो तिण वार, दीपक जग अरु भयो तियार।[1]

जांभोजी ने ब्राह्मण से संकेत में कहा–"लो, अब तो दीपक प्रज्ज्वलित हो गये? अब अभीष्ट सिद्ध होने में क्या संशय रह गया ?

नागौर का पांडे जांभोजी के इस सिद्धि–चमत्कार से चमत्कृत हो उठा। वह उनके चरणों में लिपट गया।

जांभोजी ने उसी दिन उस ब्राह्मण के प्रति अपनी वाणी को स्पष्ट मुखरित करते हुए "गुरु चीन्हों गुरु चीन पुरोहित" शब्द में सारगर्भित उपदेश किया।

इस प्रकार परमसिद्ध जांभोजी ने एक विशिष्ट चमत्कार के साथ तत्व की वाणी में अपना मौन समाप्त किया।

---

१ अवतार चरित्र।

जांभोजी की दृष्टि में गुरु

गुरु जांभोजी के गुरु कौन थे इस विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं है। उन्होंने कहा है– 'म्है सरै न बैठा सीख न पूछी', गोरख से उनका अभिप्राय अजर-अमर और ईश्वर से है। उनका गोरख–गोपाल, नन्दलाल और लीला का विस्तार करने वाला विष्णु है।

जांभोजी की वाणी के अतिरिक्त गोरख का उल्लेख स्वामी ईश्वरानंद,[1] ब्रह्मानंद,[2] रामानंद,[3] मुंशी रामलाल,[4] डॉ. परमात्माशरण,[5] डॉ. गौरीशंकर ओझा,[6] मुंशी देवीप्रसाद,[7] डॉ. हीरालाल माहेश्वरी,[8] सिद्ध रामनाथ[9] आदि ने अपने ग्रंथों में किया है।

स्वामी ईश्वरानंद तथा डॉ. परमात्माशरण के मतानुसार जांभोजी को सोलह वर्ष की आयु मे योगीन्द्र अथवा बाला गोरखनाथ मिले थे। किंतु यह आयु अनुमान पर आधारित है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जांभोजी और गोरख के समय में बहुत अंतर है। यद्यपि विद्वानों में गोरखनाथजी के समय के संबंध मे मतैक्य नहीं है तथापि ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात उनकी अवस्थिति नहीं मानी जाती।[10] ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक दृष्टि से जांभोजी और गुरु गोरखनाथ के मिलने में कालदोष हैं। आगे की पंक्तियों मे इसका स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है।

नाथपथ की भावप्रधानता में गोरखनाथ आदि–अनादि योगी हैं और इसी भाव प्रधानता में गोरखनाथ को गुरु रूप में स्वीकार करने की अेक लम्बी परम्परा रही है और इसी परम्परा में अनेक भाग्यशाली पुरुषों के साथ गोरखनाथ गुरु बनते आये

---

१. श्री जंभसागर (वि.स० १९४६ मे प्रकाशित) पृ. ४३६।
२. श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ ७।
३. जंभसागर (हिसार) पृ ६७, ५२७।
४. विश्नोई धर्म वेदोक्त, पृ. ६०, १८०।
५. वही, भूमिका।
६. बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ १६, टिप्पणी राजो.रा.पृ १६, टि. २।
७ रिपोर्ट मर्दुमशुमारी मारवाड़, तीसरा हिस्सा, पृ ६३–६४।
८. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ २७४।
९ यशोनाथ पुराण।
१० डॉ हजारीप्रसाद तथा डॉ. बड़थ्वाल ने गोरख का समय विक्रम की १०वीं शती का अन्त अेवं ११वीं शती का प्रारभ माना है। डा. रांगेय राघव के मतानुसार गोरख का समय नवीं शती का मध्य है।

हैं।[1] उनमें कतिपय महापुरुष तो ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपनी वाणी में गोरख के प्रकट होकर दर्शन देने का वर्णन किया है, जिनको हम मिथ्या एवं पाखडपूर्ण नहीं कह सकते और ऐतिहासिक दृष्टि से गोरखनाथ का उन महापुरुषों के समय वर्तमान होना संभव नहीं।[2]

सत चरणदास ने शुकदेव को तथा बाबा किनाराम ने दत्तात्रेय को तथा गरीबदास ने स्वप्न मे कबीर को अपना गुरु स्वीकार किया[3] साधु समाज में मानसगुरु, भाव–गुरु तथा समाधि–गुरु बनाने की भी परम्परा रही है। एक मत के अनुसार कबीर भी किसी मानव गुरु के शिष्य नहीं थे।[4]

साहबरामजी के मतानुसार जांभोजी ने वि.सं. १५४२ ज्येष्ठ कृष्णा ६ के दिन भगवां वेश धारण किया था–

गुरु किया भगवां भेष, जेठ वदी नौमी दिने
गुरु कियो भंद उपदेश, साहब सतगुरु है सही।

गुरु जाम्भोजी की शिक्षा–दीक्षा और गुरु के विषय में अधिक पता नहीं चलता। उनकी अपनी वाणी में 'जाम्भा–गोरख गुरु अपारा'[5] कहने से यह प्रकट नहीं होता कि गोरखनाथ अपार गुरु थे, जिन्होंने इन्द्रियों को वस मे कर लिया था। प्राचीन विश्नोई साहित्य में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं है, न ही ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी समकालीनता सिद्ध होती है।[6]

❖❖❖❖

---

१ (क) वीरवर पाबूजी राठौड़ के भतीजे झरडोजी ने गोरखनाथजी के वरदान से खींची जिंदराव को मारकर अपने चाचा पाबूजी का बैर लिया था। बाद में झरडोजी ने गोरखनाथजी से दीक्षित होकर रूपनाथ के नाम से प्रसिद्धि पाई। पाबूजी का समय १३१३–१३३७ माना जाता है–राव शिवनाथसिह, कूंपावत राठौडों का इतिहास, पृ. १५६। (ख) जांभोजी के समकालीन सिद्ध जसनाथजी को गोरखनाथजी द्वारा वि. सं १५५१ में दीक्षित करना प्रसिद्ध है। (ग) और इसी प्रकार वि सं. १५५६ में निरजनी संप्रदाय के प्रवर्तक हरिपुरुष (हरिदासजी) का गोरखनाथजी से दीक्षित होना प्रसिद्ध है। (घ) राजस्थान में गोरख के दर्शन देने की परम्परा को १८वीं शती तक देखा गया है। १८वीं शती में जसनाथी संप्रदाय के प्रसिद्ध सिद्ध रुस्तमजी को गोरखनाथ ने दर्शन दिये थे। इन्होंने अपनी वाणी में गोरख के मिलने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार अन्य प्रांतों तथा अनेक पुरुषों के साथ गोरख के मिलने की बात संबद्ध है।

२ झरडोजी का समय १६वीं शती है और रुस्तमजी का समय १८वीं शती है जबकि इन दोनो ही पुरुषो को गोरखनाथ के मिलने की बात मानी जाती है।

३ डॉ त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ ७१–८२।

४ डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ २८।

५.जम्भसागर, शब्द–६४

६.डॉ कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पथ का इतिहास, पृ ५६–५८, सन् २०००

जांभोजी का गृह-त्याग

जांभोजी ने ३४ वर्ष की अवस्था में पूर्ण रूप से घरबार को त्याग दिया। वे वि सं १५४२ ज्येष्ठ कृष्णा ६ को अपने ग्राम पीपासर से चार कोस उत्तर में स्थित "समराथल धोरे" पर जा विराजे तथा लोगों को उपदेश देने लगे।[1] जंभसार में लिखा है—

> जंभगुरु जग आवत भयेऊ।
> ग्यारहु तीस बरस चलि गयेऊ।
> ताहि समैं मन मांहि विचारा।
> अवस्य जीव करहू निसतारा।[2]

लोक—कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर ही जांभोजी आदि आस "समराथल" पर आसनस्थ हुए। उनकी भावनाओं में जो धर्म—स्थापना का स्वप्न थ उसको वे मूर्तरूप देना चाहते थे। आज से पूर्व उनकी महानता स्वयं में छिपी हु थी। लोग उन्हें मूक तथा लौकिक व्यवहार से शून्य सूमझते थे। परंतु अब वह सम आ गया था जिसमे उन्हे अपनी महानता को प्रकट करना आवश्यक हो गया था

❖❖❖

---

१ स्वामी ब्रह्मानन्दजी के मतानुसार जाभोजी अपने पिता एवं माता के देहांत होने बाद तीन महीने अपने जन्मस्थान पीपासर मे रहे, तदुपरांत अपनी पैतृक सम्प अपने पितृव्य नाभाजी (धनराज) को देकर समराथल चले गये। नाभाजी गु जाम्भोजी के चाचा पूल्होजी पंवार के पुत्र थे। स्वामीजी ने लोहटजी का स्वर्गवा वि.सं १५४० चैत्र शुक्ला ६ एव माता का देहात भाद्रपद की पूर्णिमा को माना है
— श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ ४३

२ जंभसार, आठवा प्रकरण, पृ २२१।
जंभसार में एक स्थल पर लिखे अनुसार लोहटजी की "काण" (प्राणी के मरणोपरां उसके सबधियों के पास सवेदना प्रकट करने के लिये उपस्थित होना) जाभोजी उस समय करवाई जब वे मारवाड का भ्रमण करते हुओ पीपासर आये।

अकाल-पीड़ितों की सहायता

वि.सं. १५४२ में इस क्षेत्र में भयंकर अकाल पडा। "जांभाणी साहित्य" में इस अकाल का विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है–

पनरासइयो समत कहावै, कुसमो संवत बैयालो आवै।
मेघ न बरसै बूंद न परिहै, जेठ असाढ सावन अवतरिहै।
यहि विधि भादव गयेऊ पुलाई, मेघ देत नहीं दिखाई।
यह विध आसोज चलि आई, घन गरजेहू नहीं बीज खिंवाई।
मंडल काल पड़ेउ बड़ भारी, त्राह त्राह सब दुनी पुकारी।
भूख मरहीं सब जीया जूणी, दिन दिन दाह लगती भई दूणी।[1]

+ + + +

भूख तणा दुख सह्या न जावै, विचल्यो लोग मउ मन लावै।[2]

इस क्षेत्र में हर तीसरे वर्ष अकाल पडने की बात प्रसिद्ध है। किसी कवि ने लिखा है–

पग पूगळ धड कोटड़ै, बाहू बायड़मेर।
फिरतो घिरतो बीकपुर, ठावो जैसलमेर।

किंतु इस वर्ष का अकाल भयंकर था।[3] जांभोजी ने इस भयंकर अकाल की घडियों में भूखी जनता को प्रत्येक संभव सहयोग दिया। "जंभसार" कथाओं के अनुसार जांभोजी ने गांव–गांव में भ्रमणकर लोगो की स्थिति का ज्ञान किया तथा उनसे पूछा कि "आगे उन्होंने जीवन–निर्वाह के संबंध में क्या सोचा है ?"

लोगों के सामने दुर्भिक्ष से बचने का एक ही उपाय था। वह था, अपना देश, ग्राम एवं घर–द्वार छोडकर उदर पूर्ति हेतु "मऊ–मालवे"[4] की ओर जाना।

स्वामी ब्रह्मानंदजी ने लिखा है[5] कि अकाल पीडित जन–समुदाय "समराथल

---

१ जंभसार, आठवा प्रकरण, पृ. २२१।

२. जंभसार, आठवां प्रकरण, पृ. २२३।

३ विश्नोई धर्म वेदोक्त, पृ. ६ में लिखा है–वि.सं. १५४२ में इस क्षेत्र में भयंकर अकाल पडा। भूख मरने से बचने के लिये मारवाड़ की प्रजा दूर–दूर देशों को भागने लगी। उस समय जांभोजी ने अकाल पीडितों की बडी सेवा की और हजारों मनुष्यो के लिये खाने–पीने का प्रबध कर उनकी रक्षा की।

४ जब इस प्रदेश में अकाल पडता है तब यहां की जनता का मालवे प्रदेश की ओर जाना "मऊ मालवा" कहलाता है। मालवा सदेव से ही अन्नबहुल प्रदेश रहा है तथा उसका भाषा एवं संस्कृति से भी राजस्थान से काफी साम्य है।

५ श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ. ५१।

धोरे" के पास से "मऊ–मालवे" की ओर जा रहा था। जनता के २५ ... निष्क्रमण को देखकर कारुणिक जांभोजी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने विशाल जन–समुदाय को अपने पास बुलाया और उनसे कहा "यदि तुम्हें यहीं खाने को मिलता रहे तो क्या "मऊ–मालवे" जाना स्थगित कर दिया जायेगा ?"

लोगों का उत्तर था–"स्वांस और वास (निवास) बडी मुश्किल से छूटता है। यदि यहीं भूख से बचने का कोई उपाय हो जाये तो फिर हमें बाहर जाने की आवश्यकता नहीं।" पर लोगो के मन इस बात से शंकाकुल थे कि इतने लोगों के लिये अन्न की व्यवस्था कैसे होगी ? तथा आगामी वर्ष में वर्षा होने के उपरांत खेती का सामान बीज, और नई फसल के पकने तक जीवन निर्वाह के लिये अन्न कहां से आयेगा ?

जांभोजी ने उन लोगों को दृढता के साथ आश्वासन देते हुए उनकी शंकाओं का निराकरण किया और कहा–"यदि तुमने निष्क्रमण रोक दिया तथा मेरे उपदेश के अनुकूल आचरण किया तो चाहे कितने ही मनुष्य हों, सबको खाने को अन्न और आगामी वर्ष के लिये खेती बोने का सामान दिया जायेगा।"

लोगों ने जांभोजी की बात मानली। समराथल पर उनकी छत्र–छाया में लोग पलते रहे।

लोगो को भी जांभोजी के असली स्वरूप का ज्ञान तब हुआ जब उन्होंने भयंकर अकाल में उनकी अन्न देकर रक्षा की। इस संबंध में निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

अकल विहूंणा निंद्यौ देवा।
अब लाधी सतगुरु की भेवा।
गहलो गहलो कर्‌यो अजाणा।
फेर हुई सतगुरु की जाणा।
भूखा अन सींच्यौ जिन नगरा।
सरम्या लोग लुगाई सगरा।[1]

दयालु और दानी

जाभोजी लोगो के प्रति अपार दयालु, उदार और हितचितक थे। अभाव-अभियोगो से पीडित लोगो की उन्होंने हर प्रकार से सहायता की। जिसने जो मांगा वही उन्होने उसे वहीं उपलब्ध करवाया–

धीणों मांगै जिनहिं न धीणा।
वस्त्र मांगै वसतर हीणा।
उंणत भाखै अपणी अपणी।
माया किति अेक सेन्या घणी।
जो जोहि मांगै सो तेहि दिये।
आपणी जीव संभाल जु लये।[2]

---

१ जंभसार, आठवां प्रकरण, पृ २३६। २. वही, पृ २४०।

इस प्रकार जाभोजी ने अपनी यौगिक सामर्थ्य के बल पर हजारों व्यक्तियों के लिये महीनों तक अन्न की व्यवस्था कर दी।

अक्षुण्ण अन्नराशि

जंभसार की कथाओं के अनुसार अनेक व्यक्ति जांभोजी से अपने घर के लिये भी अन्न ले जाते थे। इच्छा और आवश्यकतानुसार ऊंटो पर लादकर लोग अन्न ले जाते। जो भी आता, जांभोजी उसे अन्न का ढेर बता देते। ऊटों की कतारें की कतारें, अन्नराशि से भरी जाती थीं, पर वह अन्नराशि किंचित भी कम न होती।[1] यह जांभोजी के सिद्धि–चमत्कार की ही बात थी।

१. जंभसार, आठवां प्रकरण, पृ २३४।

पंथ की स्थापना

जांभोजी ने विश्नोई पंथ की स्थापना वि.सं. १५४२ कार्तिक कृष्णा अष्टमी को अपने आदि आसन "समराथल धोरे" पर की। जंभसार आदि ग्रंथों में भी पथ स्थापन के दिन अष्टमी तिथि होने का उल्लेख मिलता है–

पनरासइ बंयाला साला, कातक वदी पक्ष शुभ आला।
मंगलवार अष्टमी कहिये, पंथ चल्या प्रगट कर लहिये।[1]

निम्नोद्धत दोहे में अष्टमी के साथ सोमवार का उल्लेख हुआ है–

पनरासै कातक वदी, अष्टमि तिथि ससिवार।
न्यात जमाती झूमरा, आये जंभ दरबार।[2]

यह अष्टमी पंथ–स्थापना की समारंभ तिथि थी। इस दिन से लेकर अमावस्या तक चारों वर्णों का विश्नोईपंथ मे दीक्षा–समारोह मनाया जाता रहा–

आदि अष्टमी अंत अमावस।
चार वरण कूं किया तपावस।[3]

कहा जाता है कि कार्तिक कृष्णा अमावस्या सोमवती अमावस्या थी तथा उस दिन विशाखा नक्षत्र था।[4] इस हिसाब से पंथ के समारंभ दिवस अष्टमी को भी सोमवार ही था।

होम

जाभोजी ने पंथ–स्थापन की मंगलविधि में यज्ञवेदी को प्रज्ज्वलित किया–

वासुदेव प्रचुर करि दयेऊ, सामग्री नाना विधि भयेऊ।
घृत खांड चंनण अरु मिश्री, तिल जव किसमिस ल्याय सुंदीसरी।
गिरी गिंदोडा सुगंध चढावै, कपूर काचरी केसर ल्यावै।
होमत घृत वढी बहु ज्वाला, बीक जोध आये महिपाला।[5]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है कि इस विशाल समारोह में केवल जांभोजी के श्रद्धालु अनुयायी ही नहीं, राजा–महाराजा भी आये थे।

कलश-स्थापन

जांभोजी ने अपने मत का नाम "विश्नोई पंथ"[6] रखा। उन्होंने सर्वप्रथम पंथ–स्थापना के प्रतीक रूप में कलश की स्थापना की और दीक्षार्थियों को, उस

---

१. जंभसार, आठवा प्रकरण, पृ २४२।
२. व ३, वही।
४ सांयलराम मेलाना, अेक अपील (पेंफलेट रूप में प्रकाशित)।
५. जभसार, नवां प्रकरण, पृ २६४।
६. श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ ४५।

समीप बैठाकर मंत्र का जाप (उच्चारण) करवाया–

ताहि समै कलश इक आयेऊ।
वसत्र ढांप सत मंत्र जपायेऊ।[1]

पाहल

कलश स्थापन एवं यज्ञारंभोपरांत जांभोजी ने जल को अभिमंत्रित कर "पाहल"[2] बनाया और इसी पवित्र जल "पाहल" को पिलाकर अपने आज्ञानुवर्ती जन समुदाय को विश्नोई पंथ में दीक्षित किया।

सर्वप्रथम पूल्होजी को पंथ में दीक्षित करना

जांभोजी ने सर्वप्रथम अपने चाचा पूल्होजी को "पाहल" पिलाकर विश्नोई पंथ में दीक्षित किया।[3] दीक्षित होने से पूर्व मूल्होजी ने जांभोजी से निवेदन किया कि "यद्यपि मैं आपका संबंधी हूं तथा आपकी शरणागत हूं, तदपि बिना किसी "परचे" (चमत्कार) के आपके मार्ग में मेरा विश्वास स्थिर नहीं होता–

परचै बिना पिछाण नी, गुर परचै परचाय
म्हे संबंधी शाखमां, चरण गह्यो हम आय[4]

जांभोजी ने पूल्होजी को परचा दिखाना स्वीकार कर लिया, पर साथ ही उनसे यह वचन भी ले लिये कि परचा मिलने पर उनके बताये मार्ग को उन्हें स्वीकार

---

१. जंभसार, नवां प्रकरण, पृ २६४।

२. "पाहल" पान विश्नोई पंथ का एक अनिवार्य तथा पवित्र संस्कार–विधान है। सभी धर्मों एवं पंथ–संप्रदायों मे अपनी–अपनी पद्धति के अनुसार सस्कार किये जाते हैं। हिन्दू धर्म मे षोड़स संस्कारो का विधान है। जिस प्रकार सिख धर्म में "अमृत छिकना" और जसनाथी संप्रदाय में "चलू" लेकर धर्म स्वीकार किया जाता है, उसी प्रकार विश्नोई पंथ में "पाहल" का महत्व है। किसी अपराध का प्रायश्चित भी विश्नोई पंथ में पाहल (पौहल) पान करके किया जाता है।
पाहल दियां सब पाप ही, कटे पलक कै मांय।
अमृत की घूंटी दियां, म्रतक ही जी ज्याय। जंभसार, द्वादश प्र पृ ५८।
जारी तो पाहल वीरा। पातिग रे म्हांसे, लेहीयो मोमण अेहा। केशोदासजी, साखी।
संस्कार से रहित जन, सो वह शुद्र समान।
पाहल दीजे ताह को, कीजे ब्रह्म समान। जंभगीता, पृ. २४।
पूण छतीसों सुध भये, पाहल मंत्र प्रताप।
पाहल धर्म त्यागन करे, तेजन भुगते पाप।। जंभसार, द्वादश प्र., पृ ५८।
विश्नोई पंथ में "पाहल" और "पाहल मंत्र" का अपूर्व माहात्म्य है। एक बर्तन में पानी भरकर साधु उस पर गुरु की वाणी पढते हैं फिर उस जल का आचमन किया जाता है, उसका नाम कलश पाहल है।

३. (क) बुधवंत अरु जाति पवारा, पूल्हो नाम हरि नाम अधारा। सुरजनदासजी, अवतार चरित्र। (ख) श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ ४५।

४. जंभसार, सप्तम प्र., पृ १३६।

करना होगा।[1] इस प्रकार वचनबद्ध होने पर पूल्होजी को जांभोजी ने अभीप्सित परचा दिया।[2] परचा पाकर पूल्होजी को जांभोजी की सामर्थ्य एवं उन द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर पूर्ण विश्वास स्थिर हो गया तथा वे सर्वप्रथम विश्नोई पंथ में दीक्षित हुए।

इस प्रकार अलौकिक परचा पाकर पूल्होजी के दीक्षित होने के बाद पंथ निशक भाव से चल पड़ा—

प्रह्लाद की प्रीत सूं, जाग्यो पूर्व अंक।
पूल्है की प्रीत सूं, चाल्यो पंथ निशंक।।[3]

पंथ संचालन हेतु अनुशासन

पथ–स्थापना के बाद जाभोजी ने पंथ के सुचारू रूप से चलने के लिये अपना विशिष्ट अनुशासन स्थापित किया जो निम्न प्रकार है—

१—सर्वप्रथम २६ धर्म नियमो का प्रतिपादन किया।
२—विश्नोई पंथ में "पाहल"[४] पान के अनंतर ही कोई प्रवेश पा सकता है ऐसा विधान किया।
३—जांभोजी ने विश्नोई समाज के लिये पुरोहित स्थानी "थापन"[५] की नियुक्ति की
४—यति आश्रम की स्थापना की।[६]
५—समाज की वंशावली एव विवाहादि उत्सवों पर गान कीर्तन के लिये एक अलग "गायणा" वर्ग की स्थापना की।[७]
६. अपने विश्नोई पथानुयायियो के लिये अन्यो के हाथ का बना तथा स्पर्श किया

---

१ तब सतगुरु बोले समझाय, ज्ञान रतन उपदेश सुनाय।
कुल में अगत गयो ससार, मुक्ति हेतु का करो विचार।
जो मन मे विश्वास न होय, सो निश्चय करवाऊं तोय।
सतगुरु कह बांह मोहे दीजे, सचे सिख सू गुरु पतीजे।
ले बाचा प्रभु इंच्छा कीना, ... जंमसार, सप्तम प्र., पृ १३८।

२. सतगुरु पूल्हो लियो बुलाय, सकल लोक मिला परथाय।
मनसा रथ आकास विवाण, सतगुरु पूल्हे लियो बैसाण।
सिद्ध जोग विवाण चलाया, स्वर्गलोक का दर्शन पाया।

+ + + +

पूल्हे दीठो स्वर्गनैं, वैकुठ आयो दाय।
काची देह कलिकाल की, इत राखी न जाय। — सुरजनदासजी, अवतार चरित्र।

३. श्री रामदासजी, श्री जांभाजी महाराज का जीवन चरित्र, पृ १३।

४. श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ ४५।

५. बीकानेर राज्य के इतिहास मे तथा गजेटियर में जाभोजी के लिये "थापन" (धर्म की स्थापना करने वाला) शब्द का प्रयोग हुआ है। वैसे "थापन" विश्नोई पंथ में धार्मिक संस्कार करने वाले को कहते हैं।

६ यति - साधु, जो समाज को गुरुमंत्र देता है तथा "होली" पर "पाहल" पान करवाता है।

७. आज "गायणा" ही विश्नोई पंथ मे पुरोहिताई का कार्य करते हैं। "गायणा" शब्द का जातिवाचक अर्थ में पृथ्वीराज रासो में भी प्रयोग हुआ है।

भोजन न करने की आज्ञा दी। अधिकाश विश्नोई आज भी किसी के हाथ का भोजन नहीं करते। "पाहल" लेकर विश्नोई बनने के बाद पूर्व–जाति–वर्ण का तिरोधान हो जाता है, वह विश्नोई नाम से ही अभिहित किया जाता है। वैवाहिक संबंध विश्नोइयों का विश्नोइयों में ही होता है।[१]

श्री जम्भदेव चरित्र भानु में उन जातियों की सूची प्रकाशित हुई है जिन्होंने उस समय जाभोजी से विश्नोई धर्म की दीक्षा ली थी।[२]

२६ धर्म नियम

गुरु जाम्भोजी के अनुयायियो ने उनकी वाणी के आधार पर उनतीस धार्मिक नियमों को क्रमबद्ध किया था, उसका मूल छद दृष्टव्य है–

तीस दिन सूतक[१], पांच ऋतुवन्ती[२] न्यारो।
सेरो करो स्नान[३] शील–संतोष सुची[६] प्यारो।
द्विकाल सन्ध्या[७] करो, सांझ आरती[८] गुण गावो।
होम[९] हित चित प्रीत सूं होय, वास वैकुण्ठे पावो।
पाणी[१०] वाणी[११] इन्धणी दूध, इतना लीजै छाण।
क्षमा[१२] दया[१३] हिरदै धरो, गुरु बतायो जाण।
चोरी[१४] निन्दा[१५] झूठ[१६] बरजीयो, वाद[१७] न करणो कोय।
अमावस्या[१८] व्रत राखणो, भजन विष्णु[१९] बतायो जोय।
जीव दया[२०] पालणी, रुंख लीलो[२१] नहीं घावै।
अजर[२२] जरै जीवत मरै, वै वास स्वर्ग ही पावै।
करै रसोई हाथ सूं[२३] आन सूं पलो न लावै।
अमर रखावै थाट[२४] बैल बधिया[२५] न करावै।
अमल[२६] तमाखू[२७] भांग[२८] मांस[२९] मद[३०] सूं दूर ही भागै।
लील[३१] न लावै अंग देखते दूर ही त्यागै।
उणती धर्म की आखडी, हिरदै धरियो जोय।
जाम्भैजी किरपा करी, नाम विष्णोई होय।

इस छद के आधार पर विश्नोई पंथ के नियम निम्नानुसार है–

---

१ पथ के बीस और नौ (२६) धर्म नियम विधान के कारण एवं विष्णु की उपासना–विधान के कारण जांभोजी के पंथानुयायी "विश्नोई" या "विश्णोई" कहलाने लगे। कुछ लोगों का मत है कि "विष्णु–स्नेही" शब्द से विश्नोई बना है। कुछ लोगो की धारणा है कि वैश्वानर (अग्नि) के पूजक होने के कारण ये लोग "विश्नोई" कहलाने लगे।

२ वही, पृ ५८–५९।

३ विश्नोई पंथ के उपर्युक्त उन्तीस धर्म नियमों की "आंकडी" या "आखडी" पद्यबद्ध रूप मे विश्नोई पंथ की प्राय सभी पुस्तकों मे प्राप्त होती है। "आखडी" एक प्रतिज्ञा–सूत्र का नाम है। राजस्थान में "आखडी" पालन की परम्परा एक लम्बे समय से प्रचलित रही है। उदाहरणार्थ–कोई आदमी कहता है–"म्हारे दस बातां री आखडी घातेड़ी है" अर्थात वह दस बातों को निषेध समझता है।

१. तीस दिन तक सूतक रखना।
२. पांच दिन तक रजस्वला स्त्री को गृह कार्यों से अलग रखना।
३. प्रात. काल स्नान करना।
४. शील, सतोष व शुद्धि रखना।
५. द्विकाल सन्ध्या करना।
६. साय को आरती करना।
७. प्रातःकाल हवन करना।
८. पानी, दूध, ईन्धन को छान–बीन कर प्रयोग में लेना।
६. वाणी सोच विचार कर शुद्ध बोले।
१०. क्षमा (सहनशीलता) रखें।
११. दया (नम्रता) से रहे।
१२. चोरी नहीं करना।
१३. निन्दा नहीं करना।
१४. झूठ नहीं बोलना।
१५ वाद–विवाद नहीं करना।
१६. अमावस्या का व्रत करना।
१७. विष्णु का भजन करना।
१८. जीवो पर दया करना।
१६. हरे वृक्ष नहीं काटना।
२०. काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि अजरों को वश में करना।
२१ अपने हाथ से रसोई बनाना।
२२. थाट अमर रखना।
२३ बैल को बधिया न करना।
२४. अमल (अफीम) नहीं खाना।
२५ तम्बाखू खाना–पीना नहीं।
२६ भांग नहीं खाना।
२७. मद्यपान नहीं करना।
२८. मांस नहीं खाना।
२६. नीले वस्त्र नहीं पहनना।

उपरोक्त नियम वर्तमान मे बिश्नोई समाज में ये इसी क्रम में प्रचलित हैं औ सर्वमान्य हैं।

❖❖❖

जांभोजी के शिष्य और उनसे प्रभावित व्यक्ति

जाभोजी पंथ–संस्थापक, धर्म–नियामक .एवं समाज–सुधारक थे, इसलिये उनका शिष्य समाज भी वृहत् तथा विस्तृत था। उन्होंने अपने धर्म प्रचार के हेतु दूर–दूर तक की यात्रायें की थी। उनका आदर्शपूर्ण एवं आध्यात्मिक जीवन और अमृतमय उपदेश इतना प्रभावशाली था कि उससे प्रभावित होकर प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति उनका पंथानुयायी व शिष्य बना।

जांभोजी का पंथ केवल साधु संप्रदाय नहीं था, अपितु उनके पंथ का मूलाधार गृहस्थ समाज ही था। अतएव उनके गृहस्थ और विरक्त दोनों प्रकार के शिष्य थे। अनेक परिवारों तथा व्यक्तियों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर अपने जीवन को उपकृत किया था।

जंभसार में ऐसी बहुतसी कथायें हैं, जिनमें विश्नोई पंथ में दीक्षित होने वाली जातियों, "जाति मुखियों" और व्यक्तियों का बडे विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है। जिस जाति, समुदाय व व्यक्ति ने उनके उपदिष्ट धर्म को स्वीकार किया वह उनका शिष्य माना गया।

"वील्होजी के जीवन चरित्र" में लिखा है कि "सद्धर्म संस्थापक भगवान जभदेवजी के पन्द्रहसौ साधु शिष्य थे।[1] संभवतः यह संख्या उन द्वारा संन्यस्त हुए शिष्यों की हो, जिन्होंने जांभोजी के सान्निध्य में आध्यात्मिक जीवन का उत्कर्ष प्राप्त किया।

हजूरी महिला शिष्यों की नामावली

श्रीरामदासजी ने "हजूरी नामावली" नाम से उनके शिष्यों एवं शिष्याओ की अेक नाम सूची प्रकाशित की है[2] जो इस प्रकार है–

महिला शिष्यो की सूची–

१. खेतु भादू	२. ओरंगी पूंवार	३. तांतू पूंवार
४. नायकी पुंवार	५. वीरां अचेरी	६. अजायबदे गोदारी
७. आल्ही बणियाल	८. जेती बणियाल	६. सवीरी लोळ
१०. सीको सुथारी	११. झीमां पुनियांणी	१२. गोरां बागड्याणी
१३. अतली कासण्याणी	१४. सीरीयां जाणन	१५. लोचां मंडी
१६. मरीयम पठाणी	१७. बीरां गोदारी	१८. आल्हि जांघू
१६. चोखा साहवी	२०. लांहण वरी	२१. खेमसाह थापण (?)
२२–देऊ सेवदी	२३–राजी मातवी	२४. टाकू नफरी

---

१. जंभसागर, पृ १०।

२. जंभसार, नवां प्रकरण, पृ २७६।

२५. गींदू नफरी २६. मील्ही नफरी २७. साल्ही नफरी
२८. नौरंगी भादू २६. चन्द्रमा चारणी ३०. रूपां मांझू

ये महिलाये जांभोजी के प्रति अतिशय भक्ति तथा उनके उपदेशों को मानने वाली थीं। इनमें से कतिपय "नफरी"[1] उपाधिवाली महिलायें संभवत वैराग्य धारिणी संन्यासिनी के रूप में रही हो।

हजूरी पुरुष शिष्यों की नामावली

उपर्युक्त महिला "हजूरी नामावली" के पश्चात उन पुरुष नामो की सूची है, जिन्हें जांभोजी का शिष्य, अथवा "हजूरी संत" होने व उनके साथ "साथरी" में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।—

१. डूमो भादू	२. बुढो खिलेरी	३. रावल जाणी
४. रूपो जाणी	५. खेतो जाणी	६. पुरबो जाणी
७. मंगोल (मंगलो) जाणी	८. तोल्हो जाणी	६. बीरम भादू
१०. जोखो भादू	११. मोतियो मेघवाल	१२. रेडाजी सावक
१३. नाथाजी सांवक	१४. लखमण गोदारो	१५. पांडू गोदारो
१६. बरसंग खदाह	१७. केल्हण खदाह	१८. सायर गोदारो
१६. सायर गुरेसर	२०. दूदो गोदारो	२१. राणो गोदारो
२२. सैंसो कस्वो	२३. वरयाम सहु	२४. जोखो कस्वो
२५. बीसल पूंवार	२६. दणीयर पूवार	२७. बालो खिलेरी
२८. आलो जोधकण	२६. उदो नैण	३०. धन्नो-विघु साह
३१. चेलो साह	३२. कुलचद साह	३३. रणधीरजी बावल
३४. टोहो सुथार	३५. पून्य बाडेटो	३६. रायचंद सुथार
३७. लालचंद नाई	३८. ऊधो ढाढणियो	३६. कांधल मोहल
४०. रायसाल हुडो	४१. दुर्जण माल	४२. गंगो तरड
४३. अली ब्राह्मण	४४. ठुकरो राहड	४५. सधारण नैण
४६. गोयंद-रावण झोरड	४७. धडूको सारण	४८. करणों पूंवार
४६. कान्हो चारण	५०. तेजो चारण	५१ अल्लू चारण
५२. साल्हो गायणो	५३. भीयों लोहार	५४. आसनों भाट
५५ खींयो मांझू	५६. सैंसो राठोड	५७. लूंको पोकरणो
५८. गंगो बावल		

कवि साहबरामजी राहड ने जांभोजी के शिष्यों का, उनकी विशिष्ट वेश-भूषा के साथ वर्णन किया है।—

> **जंभगुरु के शिष्य अनेक, कहता लहूं न पार।**
> **के भगवा वस्त्र रक्षिता, काले सेती प्यार।**

---

१. नफर : सेवक या दास। राजस्थानी में नफरी सेविका या शिष्या के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मिलाइये—"रुस्तम सिद्ध दिल्ली ने चढिया नफर लिया दश साथ।"

कैई पीताम्यर सोभिता, निहंग कहै अपार।
कै महाराजा के संगी भया, कुलचंदजी के लार।

इस प्रकार की शिष्य मंडली के अतिरिक्त तप.पूत जांभोजी के सामने बड़े–बडे पंडित, काजी, मुल्ला आदि भी नत–मस्तक थे।[1] अनेक ऐसे भी उनके शिष्य थे जो प्रारंभ में उनसे द्वेष एवं प्रतिद्वंद्विता रखनेवाले थे, जिनमे नाथपंथी लोहापांगल, लक्ष्मणनाथ, लोहाजड़, पीतलजड, मृगीनाथ तथा हाली–पाली के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोदी, नागौर का शासक मुहम्मद खान, जैसलमेर रावल जैतसी, जोधपुर राव शांतल, उदयपुर राणा सागा आदि छै राजेन्द्र जांभोजी के सिद्धि–परिचय एवं ज्ञानोपदेश से सदाचारी तथा उनके आज्ञानुवर्ती बने[2]। रायसल, बरसल राव, दूदा, राव बीका, बीदा, शैखसद्दू, हारणाखां, मल्लूखांन[3] आदि नामों का उल्लेख भी जांभाणी साहित्य में हुआ है जो जाभोजी को अपना गुरु मानते थे।[4] स्वामी ब्रह्मानंदजी ने जोधपुर के संस्थापक राव जोधाजी, मालदेव, यज्ञेश्वर शर्मा, पं. मूलराज, झालीरानी, बौद्ध संन्यासी चन्द्रपाल आदि के जांभोजी के शिष्य बनने एवं उनसे भेट करने का उल्लेख किया है।[5]

"जंभसार कथाओं" के अनुसार समुद्र पार के राजाओं ने भी जांभोजी का शिष्यत्व ग्रहण किया था। ईरान का बादशाह तो उनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने जांभोजी

---

१. जाभाजी री वाणी मे कई स्थलो पर इन नामों का प्रयोग हुआ है।

२. ऊधो भक्त हुवो अपरपर, जो जपतो मइमाइये।
रावण सांसै ओलै आण्या, गोयंद सा गुरु भाइये।
लोहापांगल सुणकर सीधा, सतगुरु हुवा सहाइये।
सिकंदर यूं कीवी करणी, दुनियां फिरि दुहाइये।
महमंदखां नागौरी परच्यो, चाल्यो गुरु फरमाइये।
सेख सदू परचे पर आण्या, मरती गऊ छुड़ाइये।
सिद्ध साधु पकंबर सीधा, गिणियो ज्ञान न जाइये। जभसार साखी, पृ २।

३ यह मांडू के सुलतान नासिरशाह खिलजी की ओर से नियुक्त अजमेर का सूबेदार था।
–डॉ. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, पाद टिप्पणी१।

४ दिल्ली सिकंदर साह दे परचो परचायो।
मुहम्मद खान नागौरी, परच गुरु पाये आयो।
दूदो मेड़तियो राव आय, गुरु पाय विलग्गो।
रावल जैसलमेर पचतां सांसो भग्गो।
सांतिल सनमुखी आय, सुचील तां हुवो सिनानी।
सांगा राणा सीख, गुरु कही सो मानी।
छव राजिन्दर कै कै अवर, आचारे ओळख्यो।
वील्ह कह मांगू पुन जांह मुक्ति नै हाथो दियो।
–विश्नोई धर्म विवेक, पृ. २८ और जंभसार, द्वादश प्रकरण, पृ ४६।
इस संबध मे द्रष्टव्य है–"जभसार साखी", पृ ३१।

५.श्री जम्भदेव चरित्र भानु।

के चरणो में "अेक लाख पट्टे की जागीरी" का "परवाना" लिखकर रख दिया।[1] जांभोजी के भ्रमणकाल में काबुल के निवासी सुखन खांन, सेफन अली, हसन अली और मुलतान के नवाब उनके बडे ही भक्त एवं शिष्य बन गये थे।[2]

क्षत्रियों की बीस जातियों ने जांभोजी का शिष्यत्व तथा उन द्वारा प्रतिपादित उन्तीस धर्म–नियमों को अंगीकृत किया।[3] "पूरबिये ब्राह्मणों" में से जांभोजी के इतने शिष्य हुए कि उनके त्यागे हुए यज्ञोपवीत का सवामन वजन हुआ। आज भी उस वंश के लोग अपने को "जम्भैया" कहलाने मे गौरव का अनुभव करते हैं।[4]

वैश्य जाति के गर्ग आदि और ब्राह्मण जाति के मुद्‌गल आदि तेरह गोत्रों ने जांभोजी का शिष्यत्व स्वीकार किया।[5] आज भी देश के कई भागों में विशेषकर उत्तर प्रदेश के बिजनौर, बरेली व मुरादाबाद जिलों में इनकी शिष्य परम्परा के लोग हैं, जो "अग्रवाल विश्नोई" या "बिस्नी बनिये" (बनिया बिश्नोई) कहलाते हैं।

जांभोजी अपने समय मे ही अवतारी एवं महापुरुष माने जाने लगे थे। रंक से लेकर राजा तक उनकी योग सिद्धि तथा महानता के कायल थे, जिनमें अनेक व्यक्ति ऐसे थे जो जांभोजी के सिद्धि–चमत्कार, रोग–मुक्ति, राज्य–वरदान आदि कारणों से उनके शिष्य और भक्त बन गये थे, जिनमें निम्नोद्धृत व्यक्ति विशेष उल्लेखनीय हैं:–

राव जोधा

राव जोधाजी जांभोजी के दर्शनार्थ "समराथल" आये थे। उन्होंने जांभोजी से अनेक प्रश्न किये थे परंतु अपने प्रश्नों का उपयुक्त उत्तर पाकर वे बडे ही संतुष्ट हुए। अपने राज्य मे भी जांभोजी के सिद्धांतों के प्रचार के लिये उन्होंने जांभोजी से अपना एक योग्य शिष्य उनके साथ भेजने की प्रार्थना की। राव जोधाजी की प्रार्थना के फलस्वरूप जांभोजी ने अपने सुयोग्य शिष्य को "नगाडा निशान" देकर जोधाजी के साथ भेजा।[6]

---

१. जंभसार, आठवां प्रकरण, पृ २२६।
२. जंभसार, सप्तदश प्रकरण, पृ २५।
३. जभसार, आठवां प्रकरण, पृ २२६।
४ जभसार, सप्तदश प्रकरण, पृ ४२।
५. जंभसार, सप्तदश प्रकरण, पृ. २२८।
तेरा न्यात भये विष्णोई, उत्तम वेश मुक्ति गये सोई।
६ इस नगाड़े का नाम "वेरीसाल नगाड़ा" है। बाद में राव बीका ने अन्य पूजनीक (पूजनीय) वस्तुओं के साथ इसे भी जोधपुर राज्य से प्राप्त किया। यह आज भी बीकानेर के जूनागढ में सुरक्षित है। बीकानेर गजेटियर पृ ८७, तवारीख राज श्री बीकानेर तथा बीकानेर राज्य का इतिहास आदि में जाभोजी द्वारा प्रदत्त इस नगाड़े का उल्लेख हुआ है।

राव बीका तथा राव लूणकरण

बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीकाजी भी कई बार चांडासर व बीकानेर से जांभोजी के दर्शनार्थ समराथल पर आये थे।[1] बीकानेर राव लूणकरण तो जांभोजी को बहुत ही मानता था।[2] जांभोजी को लेकर राव लूणकरण एवं नागौर–शासक मुहम्मद खान में यह विवाद छिड़ गया कि वे हिन्दुओं के देव हैं या मुसलमानों के पीर।[3] इस संबंध में लूणकरण का कथन था–

> लूणकरण यों बोलिया, जंभगुरु है देव।
> मुहम्मदखान अैसे कही, किण विधि कहिये भेव।
> लूणकरण यों बोलिया, विष्णु जपावैं और संपड़ावै।
> धान जिमावैं मद्य मांस छुड़ावैं, इण पर इह विधि देव कहावै।

मुहम्मद खान का कथन था–

> मुहम्मद खां इस विधि कही, जंभेश्वर है पीर।
> लूणकरण अैसे कहे, कहो किसी विधि सीर।
> कलमा कहावै नमाज पढ़ावै, कान चिरावै घोर कफन दिलावै।
> मुसलमानी राह चलावै, इस विधि करते पीर कहावै।

इस निर्णय के लिये राजा ने अपने पुरोहित और खान ने अपने काजी को जांभोजी के पास भेजा कि वे वस्तुत: देव हैं या पीर ? पुरोहित ने जाकर प्रश्न किया–

> कहै पिरोहित जंभ नै, संत कहो गुर पीर ?
> तुम हिन्दू के देव हो ? कै है मुलसमान सूं सीर ?

जांभोजी का उत्तर था–

> हिन्दू मोकूं मत कहो, मुसलमान मैं नाहीं।
> जाकी करणी सुध है, ता मांही दरसाहीं।[4]

जांभोजी ने इस निष्कर्ष के लिये पुरोहित के सामने एक उदाहरण रखा जो "जमसागर" मे दोहाकार में छपा है। जांभोजी ने पुरोहित से पूछा, "यदि कोई हिन्दू पथिक तुम्हारे घर आवे और चोरी करके चलता बने। तुम्हें उसे पकडने के लिये पीछा करते समय रास्ते में कोई तुर्क मिल जाय तब बताओ तुम उसे पकडोगे या हिन्दू चोर को ?" पुरोहित ने उत्तर दिया, –"देव। इसमें जाति का क्या कारण है, जिसने चोरी की है, वही पकडने एवं दण्डित करने योग्य है।" यह सुनकर जाभोजी ने पुरोहित से कहा, "तुम्हारे ही मुंह इस बात का न्याय हो गया है। मैं भी उसी पुरुष का गुरु हूं जो मेरी आज्ञाओं का पालन करता है। चाहे वह किसी भी जाति–वर्ण का हो।" इसी प्रकार काजी को भी जांभोजी ने अपने उपदेश एवं तर्क से आश्वस्त किया।

---

१. स्वामी ब्रह्मानन्द, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ ६६।
२. "जंभसार" कथाओं मे इसका अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है तथा "जंभसागर" आदि में भी इसका विस्तृत प्रसंग दिया है।
३. स्वामी रामानन्द जंभसागर, पृ. २५७–२६१।
४. जंभसार, सप्तम प्र., पृ १४७–१४८।

बीदाजी[1]

बीदोजी मरुप्रदेश के "मोहिलवाटी" क्षेत्र के अधिपति थे। उन्होंने अपने नाम पर बीदासर नामक ग्राम बसाया। बाद में यह क्षेत्र बीदावाटी कहलाया। जाम्भोजी और बीदाजी की भेंट होने का उल्लेख "जांभाणी साहित्य" में कई स्थलों पर हुआ है। कहा जाता है कि जांभोजी ने अपना शुक्लहंस शब्द बीदोजी के प्रति कथन किया था। प्रारंभ मे बीदोजी जांभोजी के प्रति श्रद्धालु नहीं थे। जांभोजी द्वारा इसे सिद्धि के कई चमत्कार दिखाने के उल्लेख हुए हैं[2]–

> **आके आम्ब कराइया, नीवे नारेल कराय।**
> **पाणी दूध कराइयो, तो नहीं परच्यो काय।**

जांभोजी ने ऋतु और बीज के विपरीत वृक्षों पर फल लगा दिये, "थल" में पानी का दरिया बहता दिखा दिया। यह चमत्कार देखने पर बीदाजी ने जाभोजी से एक अभ्यर्थना और की। वह यह थी–"मैं आपको एक ही समय में अनेक स्थानों पर देखना चाहता हूं।" जांभोजी ने बीदा की बात मान ली। बीदा ने अपने विश्वासी आदमियो को कई जगह भेजा, जिससे जांभोजी के एक समय में ही अनेक स्थानों पर प्रकट होने वाली बात का पता लग सके। उन व्यक्तियों ने एक समय में ही सभी स्थानों पर जांभोजी को प्रकट देखा। "शुक्लहंस" शब्द[3] में अनेक स्थानों का नामोल्लेख हुआ है जिनसे जाम्भोजी के विभिन्न स्थलों पर भ्रमण का पता चलता है। इस चमत्कार के बाद बीदाजी भी जांभोजी का भक्त बन गया।

राव दूदा

भक्तिमती मीरां का पितामह राव दूदा मेडते का अधिपति था। उसे किसी कारणवश मेडते की गद्दी से वंचित होना पडा। इतिहासकारों मे इसके भिन्न-भिन्न कारण बताये गये है।[4] कारण जो भी रहे हों, उनसे इतना तो स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता

---

१. दूणपुर बीदो रहै, जोधावत तिणवार।
साध छुडावण कारणै, आयो देव दुवार।।

२ बीदा कहै सुण देवजी, अद्‌भुत परचो मोहि दिखाव।
जभ कहै अब देखले, जो तेरे है भाव।
अधिक ज्ञातव्य के लिये द्रष्टव्य है "जभसागर" पृ ४३३–३४ तथा पृ २४७।

३ जाभोजी की वाणी, शब्द ६७। ४. (क) बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ २५४ पर लिखा है–दूदा के सगे भाई वरसिंह ने दूदा को मेडते से निकाल दिया।

(ख) अजमेर का सूबेदार मल्लू खां जब मेडते पर चढ आया तब वरसिह और दूदा दोनो वहां से भागकर जोधपुर चले गये और जोधपुर राव सातल के सहयोग से मेडता पुनः छीन लिया। –ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ २६१–२६३।

(ग) बाकीदास ने इस धटना का उल्लेख इस प्रकार किया है–...... ... वरसिंह का पुत्र सोहा बड़ा कपूत था, जिससे वरसिंह की ठुकराणी ने बीकानेर से दूदा को बुलवाया जिसने आकर अजमेर के सूबेदार सिरिया खां के आदमियों को मेडते से निकाल दिया। तब से आधा मेडता दूदा ने लिया और आधा सोहा के पास रहा।
ऐतिहासिक बातें संख्या ६२२–३, जोधपुर राज्य का इतिहास, टिप्पणी, पृ २६२।

है कि किसी भी एक कारण ने एक समय राव दूदा को मेड़ते के अधिकार से वंचित कर दिया था।

वह मेडते से अधिकारच्युत होकर अपने भाई राव बीका के पास "चांडासर" की ओर चला। रास्ते में वह "पींपासर" ग्राम में ठहर कर कूंए पर अपने घोडे को पानी पिलाने लगा। इतने ही में जांभोजी भी अपनी गायों को पानी पिलाने के लिये उस कुएं पर आये और अंगुलियों के इशारों से गायों को पानी पिलाने लगे। वे जितनी अंगुलियां उठाते, उतनी ही गायें खेळ में पानी पीने को आगे बढती। इस क्रम से गायें पानी पीती जाती और तत्पश्चात जांभोजी के शरीर से अपना माथा स्पर्श कर अपने टोले में जा खडी होती। राव दूदा इस दृश्य को देख कर अचंभित रह गया तथा उसने जाभोजी को एक पहुंचे हुए महात्मा एवं सिद्ध–पुरुष के रूप में पहचान लिया। उसने सोचा– इनकी कृपा से मेरी विपत्ति का नाश हो सकता है।

पानी पीने के बाद सारी गायें जंगल की ओर चल पड़ी और सिद्धेश्वर जांभोजी उनके पीछे–पीछे चल दिये। घोडे पर सवार दूदा भी उनके पीछे चल पडे। उनके बीच की दूरी बराबर बनी रही। यह भी एक चमत्कारिक बात थी। निदान दूदा जब घोडे से नीचे उतरे तब कहीं वे जांभोजी के समीप पहुंच पाये। दूदा ने जांभोजी को प्रणाम किया तथा अपने संकट निवारण की प्रार्थना की।

जांभोजी ने राव दूदा पर कृपा की और उसको एक "कैर" की तलवारनुमा लकडी देते हुओ वरदान दिया कि "तेरा मनोरथ सफल होगा। आज से सातवें दिन तुम्हें मेडता पुन मिल जायगा और जब तक यह तलवार तुम अपने पास रखोगे तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा।" इस संबंध में बील्होजी के निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध हैं[1]–

(१) दूदा देसूंटो दियो, मन में घणो सधीर।
कूवे ऊपर निरखियो, दुखभंजन जंभ वीर।।

(२) थलिये उठ दूदा मिला, तूंठा सारे काज।
जब तक खांडा राखसी, तब लग निश्चल राज।।

(३) दूदा दुरदिन पालटै, जे चढ आवै भूप।
आज्ञा छै जंभदेव री, अग्नि दीजै धूप।।

जांभोजी के वचनानुसार दूदा को मेड़ता मिल गया।

दूदो आयो मेड़तै, कीयो निपट निहाल।
गुरु भेंट्या गढ भोगवै, सुध जांभाणी चाल।।

---

१ स्वामी ब्रह्मानंद, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ. २०।
कई गजटियर्स में लकड़ी की तलवार के साथ खरगोश देने का भी उल्लेख मिलता है, जिसको गढ की बुर्ज में रखकर दूब खिलाने का आदेश था।

बीदाजी[1]

बीदोजी मरुप्रदेश के "मोहिलवाटी" क्षेत्र के अधिपति थे। उन्होंने अपने नाम पर बीदासर नामक ग्राम बसाया। बाद में यह क्षेत्र बीदावाटी कहलाया। जांभोजी और बीदाजी की भेंट होने का उल्लेख "जांभाणी साहित्य" में कई स्थलों पर हुआ है। कहा जाता है कि जांभोजी ने अपना शुक्लहंस शब्द बीदोजी के प्रति कथन किया था। प्रारंभ में बीदोजी जांभोजी के प्रति श्रद्धालु नहीं थे। जांभोजी द्वारा इसे लिये के कई चमत्कार दिखाने के उल्लेख हुए हैं[2]—

आके आम्ब कराइया, नीचे नारेल कराय।
पाणी दूध कराइयो, तो नहीं परच्यो काय।

जांभोजी ने ऋतु और बीज के विपरीत वृक्षों पर फल लगा दिये, "थल" में पानी का दरिया बहता दिखा दिया। यह चमत्कार देखने पर बीदाजी ने जांभोजी से एक अभ्यर्थना और की। वह यह थी—"मैं आपको एक ही समय में अनेक स्थानों पर देखना चाहता हूं।" जांभोजी ने बीदा की बात मान ली। बीदा ने अपने विश्वासी आदमियों को कई जगह भेजा, जिससे जांभोजी के एक समय में ही अनेक स्थानों पर प्रकट होने वाली बात का पता लग सके। उन व्यक्तियों ने एक समय में ही सभी स्थानो पर जांभोजी को प्रकट देखा। "शुक्लहंस" शब्द[3] में अनेक स्थानों का नामोल्लेख हुआ है जिनसे जाम्भोजी के विभिन्न स्थलों पर भ्रमण का पता चलता है। इस चमत्कार के बाद बीदाजी भी जांभोजी का भक्त बन गया।

राव दूदा

भक्तिमती मीरां का पितामह राव दूदा भेडते का अधिपति था। उसे किसी कारणवश भेडते की गद्दी से वंचित होना पड़ा। इतिहासकारों मे इसके भिन्न-भिन्न कारण बताये गये हैं।[4] कारण जो भी रहे हों, उनसे इतना तो स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता

---

१ दूणपुर बीदो रहै, जोधावत तिणवार।
साध छुडावण कारणै, आयो देव दुवार।।

२ बीदा कहै सुण देवजी, अद्भुत परचो मोहि दिखाव।
जंभ कहै अब देखले, जो तेरे है भाव।
अधिक ज्ञातव्य के लिये द्रष्टव्य है "जभसागर" पृ ४३३–३४ तथा पृ २४७।

३ जाभोजी की वाणी, शब्द ६७। ४. (क) बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ २५४ लिखा है—दूदा के सगे भाई वरसिह ने दूदा को मेडते से निकाल दिया।
(ख) अजमेर का सूबेदार मल्लू खा जब मेड़ते पर चढ आया तब वरसिह और दूदा दोनों वहां से भागकर जोधपुर चले गये और जोधपुर राव सातल के सहयोग से मेड़ता पुन. छीन लिया। —ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ २६१–२६३।
(ग) बांकीदास ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है—........ वरसिह का पुत्र सोहा बड़ा कपूत था, जिससे वरसिह की ठुकराणी ने बीकानेर से दूदा बुलवाया जिसने आकर अजमेर के सूबेदार सिरिया खां के आदमियों को मेडते निकाल दिया। तब से आधा मेड़ता दूदा ने लिया और आधा सोहा के पास रहा।
ऐतिहासिक बातें संख्या ६२२–३, जोधपुर राज्य का इतिहास, टिप्पणी, पृ. २६२

है कि किसी भी एक कारण ने एक समय राव दूदा को मेड़ते के अधिकार से वंचित कर दिया था।

वह मेडते से अधिकारच्युत होकर अपने भाई राव बीका के पास "चांडासर" की ओर चला। रास्ते में वह "पींपासर" ग्राम में ठहर कर कूंए पर अपने घोडे को पानी पिलाने लगा। इतने ही में जांभोजी भी अपनी गायों को पानी पिलाने के लिये उस कुएं पर आये और अंगुलियों के इशारो से गायो को पानी पिलाने लगे। वे जितनी अंगुलियां उठाते, उतनी ही गायें खेळ में पानी पीने को आगे बढती। इस क्रम से गायें पानी पीती जाती और तत्पश्चात जांभोजी के शरीर से अपना माथा स्पर्श कर अपने टोले में जा खडी होती। राव दूदा इस दृश्य को देख कर अचंभित रह गया तथा उसने जांभोजी को एक पहुंचे हुए महात्मा एवं सिद्ध–पुरुष के रूप में पहचान लिया। उसने सोचा– इनकी कृपा से मेरी विपत्ति का नाश हो सकता है।

पानी पीने के बाद सारी गायें जंगल की ओर चल पडी और सिद्धेश्वर जांभोजी उनके पीछे–पीछे चल दिये। घोडे पर सवार दूदा भी उनके पीछे चल पडे। उनके बीच की दूरी बराबर बनी रही। यह भी एक चमत्कारिक बात थी। निदान दूदा जब घोड़े से नीचे उतरे तब कहीं वे जांभोजी के समीप पहुंच पाये। दूदा ने जांभोजी को प्रणाम किया तथा अपने संकट निवारण की प्रार्थना की।

जांभोजी ने राव दूदा पर कृपा की और उसको एक "कैर" की तलवारनुमा लकडी देते हुअे वरदान दिया कि "तेरा मनोरथ सफल होगा। आज से सातवें दिन तुम्हें मेडता पुन मिल जायगा और जब तक यह तलवार तुम अपने पास रखोगे तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा।" इस संबंध में बील्होजी के निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध हैं[१]–

(१) दूदा देसूंटो दियो, मन में घणो सधीर।
कूवे ऊपर निरखियो, दुखभंजन जंभ वीर।।

(२) थलिये उठ दूदा मिला, तूंठा सारे काज।
जब तक खांडा राखसी, तब लग निश्चल राज।।

(३) दूदा दुरदिन पालटै, जे चढ आवै भूप।
आज्ञा छै जंभदेव री, अग्नि दीजै धूप।।

जांभोजी के वचनानुसार दूदा को मेड़ता मिल गया।

दूदो आयो मेड़तै, कीयो निपट निहाल।
गुरु भेंट्या गढ भोगवै, सुध जांभाणी चाल।।

---

१. स्वामी ब्रह्मानंद, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ. २०।
कई गजटियर्स में लकडी की तलवार के साथ खरगोश देने का भी उल्लेख मिलता है, जिसको गढ की बुर्ज मे रखकर दूब खिलाने का आदेश था।

जंभसार मे यह बात इस प्रकार उल्लिखित है[1]—

मेरो भगवों राखो जब लग, खांडो मम कुल में रहे तब लग।
तब लग राज अकंटक रहहै, कोपै भूप खपै हुय जह है।

अब प्रश्न यह है कि जाभोजी ने दूदा को यह वरदान अपनी किस उम्र में तथा किस तिथि—मिति में दिया ? "विश्नोई धर्म वेदोक्त"[2] के अनुसार जांभोजी ने अपनी ग्यारह वर्ष की अवस्था में दूदा को मेड़ते के राज्य की प्राप्ति का वरदान दिया था। स्वामी ब्रह्मानंद व डॉ. परमात्माशरण ने सोलह वर्ष की अवस्था में दूदा को वरदान देने का उल्लेख किया है।[3]

कतिपय अन्य लेखकों[4] ने जहां जांभोजी द्वारा दूदा को राज्य प्राप्ति का वरदान मिलने का उल्लेख किया है वहां उन्होंने संवत आदि का संकेत नहीं किया पर कविराजा श्यामलदास अपने ग्रंथ में "वि सं. १५४२ में राव दूदा जोधावत को मेड़ता झामादेव (जंभदेव) के वरदान से मिला"[5] का उल्लेख किया है।

स्वामी ब्रह्मानंद आदि लेखकों के कथनो से सोलह वर्ष की अवस्था के उपरांत ही जाम्भोजी द्वारा दूदा को वरदान देना सिद्ध होता है।

"जंभसार" के उक्तोद्धृत उद्धरण मे जांभोजी द्वारा दूदा को प्रदत्त खांडे (तलवार) के साथ उनके "भगवें वस्त्र" को भी रखने अथवा धारण करने का आदेश देते हैं, डॉ कृष्णलाल बिश्नोई के अनुसार गुरु जाम्भोजी ने राव दूदा को अपनी १ वर्ष की आयु मे सन् १४६३ मे उपदेश दिया था।[6]

रणधीरजी

रणधीरजी जांभोजी के प्रिय एवं अधिकारी शिष्य थे।[7] राम—सेवक हनुमान की भाति वे जांभोजी के विनीत सेवक एवं भंडारी थे।[8] वे देशाटन के समय जांभोजी के साथ ही रहते थे। जाभोजी के साथ अद्‌भुत देशों की यात्रा करने एवं समराथल धोरे के नीचे उनके "सोवन नगरी" देखने के विचित्र उदाहरण "जांभाणी साहित्य" में मिलते हैं।

---

१. जम्भसार, विंशति प्रकरण, पृ २।
२ मुशी रामलालजी, पृ १८०।
३ (क) श्री जम्भदेव चरित्र भानु। (ख) वि. धर्म वे. भूमिका।
४. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ ३७०। श्री मुंशी देवीप्रसाद, मर्दुमशुमारी रिपोर्ट मारवाड़। श्री चन्द्रदान चारण, विश्नोई पथ, राजस्थानी भारती, भाग ७ अंक ४।
५. वीर विनोद, प्रथम प्रकरण, पृ १, फुट नोट (कोष्ठक में)।
६ डॉ कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पथ का इतिहास पृ ५५, सन् २०००।
७. रणधीरजी "बावल" जाति के थे। इनके वंशज फिटकासनी में हैं।
८. परमहंस रणधीर ज स्वामी, धर्मवीर गुरु के अनुगामी।
जभेश्वर के प्रिय अधिकारी, भंडारी नित पर उपकारी।
सब शिष्यों मे बड़े उजागर, रणधीर ज सुबुद्धि के सागर।
कितने ही मदिर बनवाये, विविध बावड़ी कूप खनाये।
—जभसार, विंशति प्रकरण, पृ ११।

रणधीरजी ने अपने सद्गुरु जांभोजी से होम, जाप आदि क्रियाओं का पूर्ण परिचय प्राप्त किया था।[1] कहा जाता है कि "सोवन नगरी" से रणधीरजी एक "सोने की शिला" उठा लाये थे जिससे ही उन्होंने जांभोजी की समाधि पर यह मंदिर बनवाया।[2]

जाभोजी ने जब लीला–संवरण करने का निश्चय किया तब उन्होंने रणधीरजी को ही अपने पास बुलाकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया एवं उन्हें "विष मारण" वाला "मूदडा" (मुद्रिका) दिया था जिससे उन्हें कोई विष देकर न मार सके।[3] किन्तु कालान्तर में चोखा थापन ने वह मूंदड़ा उनसे कपट करके ले लिया और उन्हें विष दे दिया[4] जिससे उनका अन्त हो गया।

चारण जाति के चार प्रमुख

चारण जाति के चार प्रमुख व्यक्ति–अल्लू (अल्लूनाथ), कान्हा, तेजा और कोल्हा ने जाभोजी की कृपा से अपना वांछित प्राप्त किया था तथा उनके उपदिष्ट धर्म को अपने जीवन में उतारा था। इस सबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है–

अैहि विधि अस्तुति जंभ की, अल्लू कान्ह जन कीन।
चारण चार जिवाणवै, विष्णु धर्म इन लीन।।

अल्लूजी-अल्लूजी जलोदर की पीड़ा से पीडित था। उसने अनेक उपचार किये पर रोग शांत न हुआ। अंत में जब वह जाभोजी की शरण आया तब उनकी कृपा से वह स्वस्थ हो गया। अेतद्विषयक यह कवित्त द्रष्टव्य है.–

---

१. होम जाप क्रिया सब चीन्ही, जमा–जागरण की विधी दीन्ही।
–जंभसार, अेकोविंशति प्रकरण, पृ ३।

२ श्री गुरु जांभा शिष्य, भक्त रणधीर भंडारी।
सुवरण की जो सिलम, अछय पाई उपकारी।
तातैं करि करि दान, मान पायो मुरधर में।
कीर्ति लता अखूट, घणी पसरी घर–घर में।
मदिर मुकाम विरच्यो महा, देखि दुष्ट जन जरि गये।
खल गरल खुवायो ताहितें, तन तजि ध्रुव यश करि गये।

३. रणधीरजी कू पास बुलाया–हंसकर गुरु अैसे बतळाया।
तू है महंत रिधि को धनी–ल्यायो सिलम बीस भरतणी।
ताते विष को डर तूं राखी, दई मूंदड़ो फिर अस राखी।
+ + + +
मेरे करके अंगूठी लेवो, और किसी को मत ना देवो।
जंभसार, अेकोविंशति प्र. ३।

४ अविनाशी की गोदमें, जा बैठे रणधीर।
अधम जीव चोखा निठुर, सहै नरक की पीर।
–जंभसार विंशति प्र. पृ ११।

वैद्य योगी वैरागी, खोज दीठा नहं नंगम
संन्यासी दरवेश शेख, सोफी अरु जंगम।
व्यथा व्यापी मोहि आज, आशा धर आयो।
जल आहार पेट, सुख परचो पायो।

अल्लूजी जांभोजी का अत्यन्त श्रद्धालु भक्त था। "विश्नोई पंथ" व जांभोजी के "हजूरी संतों" में अल्लूजी का महत्वपूर्ण स्थान है।[1] वह जांभोजी के शब्दोपदेश से प्रभावित होकर कहता है–

चार वेद होता चलू, पांचवां वेद सांभल्या।
शब्द केवली जंभ सा बल कवल आज साच पायो अल्लू।[2]

कान्हा-कान्हा चारण नि:संतान था। उसने पुत्र–प्राप्ति हेतु अनेक व्यय साध्य प्रयत्न किये। "भोपा" आदि को तुष्ट किया पर उसे पुत्र लाभ नहीं हुआ। अन्त में वह अल्लूजी की सलाह मानकर जांभोजी की शरण में गया और उसने जांभोजी की कृपा–कटाक्ष से पुत्र–रत्न प्राप्त किया।[3]

तेजा-तेजा चारण फलौदी (जोधपुर) का निवासी था। वह गलित कुष्ठ से पीड़ित था। उसने जांभोजी से अपने कुष्ठ–निवारण की प्रार्थना की–

कह तेजो प्रभु कृपा करहू।
मेरी कुष्ठ दया कर हरहू।

परम कारुणिक जांभोजी ने उसकी प्रार्थना सुनकर उसकी कुष्ठ निवारण करदी।[4]

कोल्ह-कोल्ह चारण शिरशूल की भयंकर पीड़ा से अंधा हो गया था। वह भी जब अन्य चारणों की भांति जांभोजी के शरणागत हुआ तब उनकी कृपा से उसे नेत्र लाभ हुआ। इस संबंध में किसी कवि ने कहा है–

---

१ श्रीरामदासजी, जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र।

२. जंभसार, चतुर्दश प्र के अनुसार जैसलमेर का निवासी था। श्री जम्भदेव चरित्र भानु के अनुसार कुचामन के समीपवर्ती "महाराणे" (जोधपुर) का निवासी था। पर सौभाग्यसिंह ने इस ग्राम का नाम "जसराणा" लिखा है जो आमेर नरेश रूपसिंह वेरागर ने इन्हें प्रदान किया था। इनका जन्म १५६० के आसपास माना जाता है। ये कविया शाखा के चारण थे। यह चारणो में सिद्ध–भक्त के नाम से प्रसिद्ध हैं। नाभादास ने अपनी भक्तमाल में कान्हा आदि चारण भक्तों के साथ इनका उल्लेख किया है। विशेष जानकारी के लिये द्रष्टव्य है सौभाग्यसिंह शेखावत का "सिद्ध–भक्त कवि अल्लूनाथ कविया" (परम्परा, भाग १२)।

३. जंभसार, चतुर्दश प्रकरण, पृ. १४–१५।

४ तेजै कै तन कुष्ट जु भई, फलोदी गढ को चारण यही।
कुष्ट भई तन सारो गलियो, भाई कटुम्ब गाव सूं टलियो।
तेजो भयो राज मानीतो, कवि राजा कहिये मानीतो।
–जंभसार, चतुर्दश प्रकरण, पृ ५–६।

कोल्ह अल्लू की आरति, सुणी जंभ भुवनेस।
कष्ट गया चक्षु खुले, रह्यो न दुख लवलेस।।

ऊपर वर्णित चारों चारणों ने शारीरिक कष्ट निवारण के साथ—साथ जांभोजी से आध्यात्मिक लाभ किया। "जंभसार" में इनकी कथाओं का सविस्तार वर्णन मिलता है।

लोहापांगल-लोहापांगल नाथ पंथ का कनफटा साधु था। वह अपने सैंकड़ों शिष्यों के साथ भ्रमण करता रहता था।[1] कहा जाता है कि वह अपनी लिंगेन्द्रिय को वश में रखने के लिये "लोह कच्छ" पहने रहता था और इसी कारण वह लोहापांगल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2] वह अपने को तंत्र—मंत्र, नाटक—चेटक आदि साधानाओं में निपुण समझता था। "जंभसार" में इसके कई कथा—रूप मिलते हैं।

वह उस समय के प्रसिद्ध सिद्ध जसनाथजी के पास भी आया था। जसनाथजी के एक सबद में इसका नामोल्लेख हुआ है।[3] कहा तो यहां तक जाता है कि सिद्ध जसनाथजी ने ही इसे अपनी आत्मा के कल्याण के लिये जांभोजी के पास भेजा था। जसनाथजी ने उसे यह कहा था कि जब तुम्हारे कमर में बंधे लोह—कच्छ की कडियां स्वत. झड जायंगी तब तुम समझ लेना कि तुम्हें सतपुरुष मिल गये।[4]

लोहा पांगल ने जांभोजी के पास आकर अपने पूर्व संस्कार के अनुसार काफी वाद—विवाद किया[5] पर अन्तत. उसे जांभोजी के सामने हार माननी पडी।[6] वह अपनी नाथपंथी वेशभूषा का परित्याग कर जांभोजी का शिष्य हो गया तथा[7] विष्णु का उपासक बना। जांभोजी ने उसे अपनी आत्मशुद्धि के लिये 'धनोक" ग्राम की प्याऊ

---

१ स्वामी रामानंद, जंभसागर, पृ. ३५६।

२. यद्यपि विश्नोई पंथ व जसनाथी संप्रदाय में इसके नाम के संबंध मे यह धारणा बनी हुई है पर इस नाम के दूसरे अर्थ होने की संभावना भी हो सकती है.—(१) नाथपंथ में पागलपंथ भी प्रसिद्ध है। (२) पागल—पाँघल—पिघलना। जसनाथजी ने इसके लौह — लगोट को पिघला दिया था इसलिये इसका नाम लोहापांगल पड़ा।

३ लोहापांगल भरमै भूल्यो, जोग जुगत न जाणी। —सिद्ध चरित्र, पांचवा अध्याय। कहा जाता है कि जांभोजी ने इसे "सप्त पताले तिहूं त्रिलोके" शब्द का कथन किया था।

४. निम्नांकित दोहे से अैसा ध्वनित होता है:—
मेरे सतगुरु यों कह्यो, लोह झड़ै तुम तात।
सोवन नगरी प्रगट पुरुष, तब आवै तिहिं साथ।।
—जभसागर, पृ. ३६४, जभसार नवां प्रकरण।

५ लोहापांगल बाद कर, आवहिं गुरु दरबार।
प्रष्ण ही लोहा झड़ै, बोले गुरु आचार।।

६. लोहापांगल मानीहार, लोहा झड़ा सतगुरु की लार।

७. लोहापांगल भेंट कर, रूपो दीन्हो नाम।
मुद्रा जटा उतार कर, जप्यो विष्णु को नाम।
—जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र, पृ १७।

पर पानी पिलाने का सेवाकार्य सौंपा[1] तथा कुछ समय बाद "खिदासर" ग्राम के अन्न क्षेत्र का भंडारी नियुक्त किया।[2] वह विश्नोई बनने के उपरांत "रूपा" के नाम से पुकारा जाने लगा।[3]

आलम

आलम जांभोजी का परम श्रद्धालु भक्त था। जांभाणी–ऐतिह्यों से ऐसा ज्ञात होता है कि वह जांभोजी के साथ ही रहता था तथा अपने सुमधुर कंठों से उनके शब्दों को गाता था। सुंदर गायकी के लिये उसकी राजघरानों में भी प्रसिद्धि थी।

वह जाति से भाट था। उसने "वीकूंकोर" नाम के ग्राम में समाधी ली।[4]

सालू

आलम की भांति सालू भी सुंदर गायक एवं जांभोजी का कृपा–पात्र और शिष्य था। यह भी आलम की ही जाति का था। यह भी गायक था।

झाली रानी·

झाली रानी राजस्थान की प्रसिद्ध नारी पात्र है। अनेक महात्माओं से इसका संबंध जुडा मिलता है। राजस्थानी गीतों में भी झाली रानी आती है। "वीर–विनोद" में[5] लिखे अनुसार यह राणा सांगा की माता थी पर कहीं–कहीं इसे सांगा की रानी होना भी लिखा है।[6] "रैदास की परची" में वह रैदास की शिष्या मानी गई है।[7] यह "बाईजी राज झालीजी" के नाम से भी पुकारी जाती रही है।[8] जभसार व विश्नोई पथ के अैतिह्यों के आधार से यह जांभोजी की शिष्या एवं उनकी भक्त थी।[9] जांभोजी द्वारा उत्खनित "जांभोलाव" की पौड़िया बंधवाने में इसने काफी द्रव्य लगाया था।

---

१ ग्राम बसो धनोक मे, पोह प्यावो नीर।
जाप जपो निज तत्व को, पावन होय शरीर।। –जंभसार, नवां प्रकरण, पृ २५४।

२ रूपै को भंडारा सोंपियो, खिंदासर के मांय।
जियै पै जुगती भली, मरै मुक्ति ही पाय।।
–जंभसागर, पृ. ३६४।

३ नाम जु सतगुरु फेरियो, "रूपा" सही प्रभाव।
टहल करो निज संत की, शुद्ध होय के तांव।। जंभसार, नवा प्रकरण।

४ बीकूकोर धर्म की गादी, जहां आलम लीवी समाधि।
–पं राजूराम भजनावली, पृ ६।

५ कविराजा श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. ३६१।

६ डॉ त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ ४३।

७ अनंतदास द्वारा रचित रैदास की परची।

८. वीर विनोद, पृ ३६१।

६ जंभगुरू को भेंट जु करी, द्रव्य लगायो सगलो हरी।
धर्म मर्यादा की स्थापना करे, सब जीवन के पातक हरे।
झाली रानी मेलै आई, जांभोलाव की पैड़ी बंधवाई।
–जंभसार, अेकोविंशति प्र पृ ९६।

कहा जाता है कि जांभोजी ने एक सौ ग्यारह की सख्या वाला शब्द झाली रानी के प्रति कथन किया था।[1]

सिकंदर लोदी

दिल्ली के सुल्तान सिकंदर लोदी और जांभोजी की भेंट होने के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। स्वयं जांभोजी ने अपने शब्द "इलोलसागर" में सिकंदर को चेताने का उल्लेख किया है जो उन द्वारा चेताने के पश्चात क्रूरताओं का परित्याग कर शील-धर्म के पालन एवं "हक" की "कमाई" में प्रवृत्त हुआ। इसके अतिरिक्त जंभसार में ऐसी अनेक कथाओं का उल्लेख हुआ है जिनमें जांभोजी और सिकंदर लोदी संबंधी विस्तृत विवरण मिलता है। विश्नोई पथ के साखीकारों ने भी स्थान-स्थान पर जांभोजी की महानता प्रदर्शन में सिकंदर के पूर्ण प्रभावित होने का उल्लेख किया है।[2]

नागौर शासक मुहम्मद खान

जांभोजी और नागौर के शासक मुहम्मद खान[3] की भेंट का उल्लेख जाभाणी साहित्य में विस्तार के साथ मिलता है। वहां इसको जांभोजी से प्रभावित होकर उनका शिष्य होना लिखा है। इसी प्रसग में शेख मनोहर (मनत्वर) का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है[4] जो संभवत. मुहम्मद खान का काजी था।[5]

जंभसार की कथाओं में जांभोजी को लेकर बीकानेर राव लूणकरण एवं मुहम्मद खान का कई बातों में विवाद हुआ था जिसका स्पष्टीकरण लूणकरण के प्रसंग में किया जा चुका है।

जांभोजी ने वेद और गीता की गरिमा को स्वीकारा है। पुनर्जन्म, लोक-परलोक, प्रारब्ध-शुभाशुभकर्म, अग्निपूजा, होम, विष्णु की आराधना, अवतारवाद आदि जिसमें धर्माधार हों, उसके लिये यह कहना कि उन्होंने मुसलमानी धर्म की बातों को अपने धर्म में मिलाया, नितांत अनिष्टकारी एवं भ्रामक धारणा है।

---

१. झाली रानी पूछियो देव तणै दरबार।
अयुध्या में आनंद घणा, सुखी किसो किरतार। -जंभसागर, पृ ५६६।

२. विश्नोई पथ की प्रायः प्रकाशित पुस्तकों में सिकंदर का जांभोजी द्वारा प्रभावित होने का उल्लेख मिलता है।

३ यह वि.स. १५७० के समय नागौर का स्वामी था।
-डॉ. ओझा, बीकानेर रा. का इति., पृ. १४४।
पृथ्वीपति सिकंदर कहियै, 'दिलीराज थान सो लहियै।
सूबैदार जेहि महम्मद खाना, रहै नागौर हिंद अस्थाना।जंभसार, सप्तम प्र पृ १४६।

४ सेख मनोहर बोलियो, जंभ तणै दरबार।
रूह मे रूह ऊपजै, ताका कहो विचार।

५ मुहम्मद खान गयो शेख पै, हमरे तो गुर पीर।
शब्द सुणायो कोपकर, तुम चालो घर धीर।। वही, आठवां प्र.।

विश्नोई पंथ के २६ धर्म नियमों में मुसलमानी धर्म की एक भी बात नहीं है। विश्नोई पंथ मे भू–समाधि लेना, शिखा न रखना, तथा दाढी रखना आदि कुछ ऐसी बाते हैं जिनको हम मुसलमानी धर्म की बातें नहीं कह सकते। उदाहरणार्थ–

(१) संतमत जातियां अपने संन्यासी गुरु के अनुकरण पर भू–खनन समाधियां लेती हैं। दशनामी संन्यासियों एवं योगियों में भी यही प्रथा प्रचलित है, जो भारत में मुसलमानी धर्म के उदयकाल के पहले के संप्रदाय हैं। विद्वानों ने वेदों में भी भू–समाधि लेने के संकेतों को ढूंढने का प्रयास किया है।[1]

(२) गुरु–दीक्षित जातियां अपना शिखा–सूत्र अपने गुरु के भेंट कर देती हैं।[2] ऐसा ही विश्नोई समाज में हुआ होगा। आज तो उनके अनुयायियों को शिखा धारण किये हुए देखा गया है।

(३) राजस्थान के गांवों में प्राय: सभी वर्गों के लोग दाढी रखते हैं। हो सकता है कि दाढी में कुछ मुसलमानी फैशन चल पडा हो। आज भी हम अनेक पाश्चात्य फैशन अपनाने को आतुर हैं। सभ्यता बदलती रहती है, इस बात को ध्यान में रखते हुए हमें ऐसी बातों पर विचार करना चाहिये। पर मूल संस्कृति के तत्व में जांभोजी के मत में किसी प्रकार के अभारतीय तत्व दृष्टिगोचर नहीं होते।

रावण-गोयंद

रावण और गोयंद दोनों सगे भाई थे। ये झोरड़ जाति के सोतर ग्राम के निवासी थे। ये दोनो ही भयंकर डाकू थे।[3] इस संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है–

रावण गोयंद सोत्रका, किया करम अखूट।
चवदैबीसी चोरियां, घोड़ा घोडी ऊंट।।

कालान्तर में इन्होंने जांभोजी के प्रभाव में आकर समस्त कुकृत्यों का परित्याग कर सात्विक जीवन–यापन किया।[4]

---

१ डॉ लोहा के अेक लेख के अनुसार अथर्ववेद (१८/२/३४) में मुर्दों को गाडने का उल्लेख है।

२ रामदेवजी के अनुयायी, जसनाथी सिद्ध आदि में भी चोटी न रखने की प्रथा है। जिसका एकमात्र कारण उनकी श्रद्धा में उनका "चोटीकटिया" होना है। चोटी न रखना गुरु–समर्पण की भावना का प्रतीक है। राजस्थानी मे "चोटीकटियो" मुहावरा प्रचलित है। जिसका आशय आधिपत्य स्वीकार करने से है। मिलाइये–चोटिकटिया ब्रह्म का सायब का नाती–जीव समझोतरी।

३ रावण गोयंद सोतरका, झोरड जाकी जात।
गावज जाको झोरडो, चोरी कर कर खात।।
–स्वामी वील्होजी, रावण गोयद का जीवन चरित्र, पृ ६।

४. करू जंभ गुरु वंदना, मिटै अघ अपराध।
मध्यम तो उत्तम किया, चौरा हूंता साध।।
कही भवत गुण किया, साधां सूं उपकार।
इण भव मेद्यो सहज सूं, जभ गुरु दीदार।। –वही, पृ १०।

लूंका तथा खैराज

रावण–गोयंद की भाति फलौदी के ठाकुर लूंका एव खैराज भी डाकू सरदार थे। ये अनर्थक कर्म करने में ही अपना गौरव समझते थे। जांभोजी ने इन्हें अपने प्रभाव में लेकर पूर्ण नैतिक एवं सदाचारी बनाया। आगे जाकर ये जांभोजी के संसर्ग से बडे ही यशस्वी हुए। यहां तक कि लोग इन्हें जीवनमुक्त कहने लगे।

खैराज ने गो रक्षा में अपना प्राणोत्सर्ग किया था। अभी तक मारवाड़ के विश्नोई इनकी पूजा करते हैं। इनकी पूजा कुचोर (बीकानेर) में फाल्गुन कृष्णा १२–१३ को खैराज भोमियां के नाम से होती है।

साणियां सिद्ध[1]

"पेदड़" गोत्री साणियां सिद्ध रोटू[2] (नागौर) ग्राम के पास एक धोरे पर रहता था। साणियां अपने को अघोरी तांत्रिक एवं भूतवश सिद्ध कहता था। वह जनता में जांभोजी के बताये धर्म नियमों के विपरीत प्रचार करता था तथा विविध पाखण्डों को अवलम्बन बना कर भोली–भाली ग्रामवासी जनता को धोखे में डालने का प्रयत्न करता रहता था। "चिहमे चिहमे" यह उसके जपने और दूसरों को जप कराने का परम मंत्र था। चोरी गई वस्तु को बताने, मन की बात जानने, रोग मुक्त करने तथा पहाडी को हिलाने आदि बातों के लिये वह बडा प्रसिद्ध था। उसके इस प्रकार के कुचक्र में अनेक लोग फंसे हुअे थे।

रोटू ग्राम जांभोजी का भी अपने धर्म प्रचार का केन्द्र था। जब उन्हें इस प्रकार की विचित्र गतिविधि वाले सिद्ध के बारे में पता लगा तो वे रोटू से साणियां को इस प्रकार के विचित्र और आत्मघाती कर्मों से मुक्त करने के लिये, उसके स्थान पर गये तथा उसे सदाचार अपनाने की सलाह दी। पर, मूर्ख साणियां ने इसका महत्व नहीं समझा। उलटा वह उनसे विवाद करने लगा। तब जांभोजी को भी उसे योग–सिद्धि दिखाने को बाध्य होना पडा। अंत में वह जांभोजी की सिद्धियों के सामने पराभूत हुआ और उनका शिष्य बनकर जीवन जीने की वास्तविक विधि उनसे प्राप्त की।

---

१ विस्तृत कथा के लिये दृष्टव्य है "श्री जम्भदेव चरित्र भानु" जभगीता तथा जभसागर।

२ रोटू ग्राम के विश्नोई मंदिर में एक शिला रखी हुई है जिस पर जांभोजी के पवित्र चरण टिके थे और उनके चरण–चिह्न इस शिला पर अंकित हो गये थे। लोग आज भी उस शिला को पूजते हैं। रोटू के मंदिर में एक तलवार भी रखी हुई है जिसे लोग जांभोजी की बतलाते हैं पर स्वामी ब्रह्मानंदजी के मतानुसार यह तलवार केशोदासजी की है। –श्री जम्भदेव चरित्र भानु।

साणियां के जीवन का अंत संभेला (भीलवाडा) में हुआ। आज भी संभेला ग्राम मे साणियां द्वारा निर्मित "हवन मंदिर" में प्रति अमावस्या को हवन होता है।

जैतसी

जैसलमेर रावल मालदेव का पुत्र जैतसी[२] जांभोजी का परम भक्त और शिष्य था।[३] उसने किसी धार्मिक व्रत आदि के उद्यापन पर यज्ञ का आयोजन किया था। जैतसी ने जांभोजी को यज्ञ में पधारने की प्रार्थना की।[४] उसकी प्रार्थना पर जांभोजी चैत्र बदी अमावस्या संवत् १५७० के आस-पास जैसलमेर पधारे और उनकी देख-रेख में यज्ञ संपन्न करवाया।

जांभोजी जब जैसलमेर पधारे थे तब स्वयं जैतसी अपने उच्च अधिकारियों सहित उनके स्वागतार्थ वासणी[५] ग्राम तक पैदल चलकर उनके सामने आये थे।

कहा जाता है कि जब जैतसी ने जांभोजी से अपने लिये आदेश-उपदेश की प्रार्थना की तब उन्होंने निम्न उपदेश दिये-

---

१ साणियां के सबध मे बिश्नोई पंथ मे निम्न दोहे प्रचलित हैं-
साणियों पेदड जात को, अेक थली जु बैठो तेव।
लोग कहै तूं कौन है, साणियो कहै मैं हूं देव।।
पूरब गगा पार की, लीवी जमात तुडाय।
परदेश खेत घरो की, सब ही देय बताय।।
तरवर अेक रोदू गई, लोगे पूछी आय।
चोर बतावो साणिये, तरवारहू दई बताय।।
दो पथ चला वही, पहले पावै पान। पीछे स्नान कराय कै, "चिहमै चिहमै" ध्यान।
साणिये दोला आय कै, हुवा गागरत जमात। सांथरिया कहैं देवजी, अेक देव प्रगटा हात
देव दुवागर मेल्हियो जाय र लावो बुलाय। सांथरिया रोदू गयो, ना चालू र न आय।।
--जंभगीता पृ ३२७ के अनुसार जांभोजी इस समय रोदू ग्राम मे निवास कर रहे।

२. स्वामी सच्चिदानद, जभगीता, पृ २२७।

३ द्रष्टव्य है-श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ १००-११७ पर लिखा है कि यह पहले कु रोग से पीडित था पर जांभोजी की कृपा से इसका रोग शांत हो गया।
--जभसागर, पृ ५०४, जंभसार द्वादश प्र पृ ६

४. (क) राव कियो उजीवणो, जैसलमेर सुथान।
जाभोजी कू ल्यावस्यां, लेस्यां कछु गुरु ज्ञान।।
उजीवणो के जीवंत जिगडी, वृहद् यज्ञ, व्रतोद्यापन आदि अर्थ होते हैं।
--जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र, पृ २
(ख) डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, वील्होजी की वाणी, कथा जैसलमेर की, पृ १९१ सन् १९९३

५. (क) डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, वील्होजी की वाणी, पृ १९१, सन् १९९३।
(ख) जंभसार द्वादश प्र पृ ३२।

६. जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र, पृ २८।

(१) विश्नोइयों से "दाण" मत लेना (२) कृषिकर पंचमांश से अधिक मत लेना। (३) विश्नोई गांवों की कांकड (सीमा) में हरा वृक्ष न काटना, (४) किसी जीव की शिकार न करना। (५) तालाब पर पानी पीने से किसी दूसरे ग्राम के पशु को भी मत रोकना (६) अपने राज्य मे शिकारियो को "बावर" मत रोपने देना आदि[१]।

जैतसी ने जांभोजी के इन सभी आदेश–उपदेशों को सहर्ष स्वीकार किया एवं ऐसा कर उसने अपने को कृतकृत्य समझा।[२] रावल जैतसी ने विश्नोई पंथ को विशेष रूप से सम्मानित करने हेतु "थापन पांडू गोदारा" को अपने राज्य में आबाद किया।[३]

दर्जी हासम-कासम

हासम और कासम जांभोजी के परम भक्त और शिष्य थे। जांभाणी साहित्य में हासम–कासम विषयक उल्लेख बहुलता से प्राप्त होते हैं।[४] ये दोनों सगे भाई, जाति के मुसलमान दर्जी और दिल्ली के निवासी थे। इन्होंने जांभोजी के दर्शनार्थ जाने वाली विश्नोई जमात से प्रभावित होकर जांभोजी को अपना गुरु मान लिया था।[५] ये जाभोजी के दर्शनार्थ समराथल भी आये थे। इन्होंने जांभोजी से प्रभावित होकर अपना आचरण एवं रहन–सहन जांभोजी द्वारा उपदिष्ट विश्नोई मतानुयायियो की भाति बना लिया था।[६] इन्होंने अपनी जाति के लोगों के हाथ का भोजन खाना छोड दिया था तथा पूर्णरूपेण निरामिष भोजी बन गये थे।

---

१ जमसार, द्वादश प्रकरण, पृ. ४४–४५।

२ सतगुरु आगे आय, राव नुय पाये लागौ। तो आया भगवंत, जीव रो सासो भागौ।
हूं ज करतो वरि पाप, अज्ञान अंधेरो बाद्यौ।
हूं ज करतो बहू पाप, (थे) पाप सूं कलतो काढ्यौ।
भाग भलो छै म्हारो, औगण लाण नहीं दियौ।
तुम साहिब हूं सेवग थारो, मो सू गुण मोटो कियौ।–जंभसार, द्वादश प्र पृ ४८।

३ जांभोजी महाराज का जीवन चरित्र, पृ २६।

४ (क) हासम कासम है दोय दरजी, कन का सत ज्ञान के गरजी।
–जभसार, सप्तम प्र पृ. १६४।
(ख) दरजी हासम कासम भाई, नित कपडे सीवहिं पतस्याही
उन्हीं जंभ गुरु मत लीनौ। –वही, अेकोनविंशति प्र. ।

५ स्वामी ब्रह्मानन्द, श्री जम्भदेव चरित्र भानु।

६. हासम कासम करणी करिहैं, पाप दम्भ दोनो परिहरिहैं।
पाणी छाण अरु सहज सिनाना, लागत गुण ह्रदै निज ज्ञाना।
टालहु कपडो जो रंग लीला, सैज संयम अग रहै सुचिता।
आन जात सूं अंतर होई, भींटण देवै नहीं रसोई।
हिन्दू तुरक दोनां सू जूवा, सुणकर लोग अचंभे हूवा।
अेहि विधि कृत करै सिर धुणिहैं, आसपास चोगड़दै सुणिहैं।
सुणी सरीकत गयी न सही, इस कद्र बादशाह सूं कही।
दर्जी दोय चलावै राह, काने बात सुणी बादशाह।–वही, सप्तम प्र., पृ १८६।

किसी ने बादशाह सिकंदर लोदी से इनकी शिकायत करदी, जिसके फलस्वरू बादशाह ने इन्हें पकडकर जेल में डाल दिया और खाने के लिये अन्न न देकर मांर ही दिया परन्तु इन्होंने मांस भक्षण नहीं किया।

कहा जाता है कि जांभोजी ने दिल्ली पहुंचकर अपने सिद्धि–चमत्कार से इन्हें जे से मुक्त किया। इसी प्रसंग में बादशाह सिकंदर की भेंट जांभोजी से हुई थी।[1]

योगी चन्दपाल-

योगी चन्द्रपाल जैसलमेर के समीपवर्ती ग्राम "खरीगा" की पर्वत कन्दरा निवास करता था। भ्रमण काल में जांभोजी उसके पास गये थे और उसे नास्ति से आस्तिक बना कर अपने प्रभाव में ले लिया था। इसकी स्मृति मे आज वह कंद जांभोजी के नाम से प्रसिद्ध है। आसपास के विश्नोई पंथ के मतानुयायी यथाव यहां हवन तथा कदरा के दर्शन करते हैं।

❖❖❖

---

१ इसकंद्र यूं बोलियो, बात कही समुझाय।
जिन या करणी दाखवी, सो जन हमें बताय।।   –वही।

जांभोजी की यात्राएं

जाभोजी का प्रमुख कार्यक्षेत्र यद्यपि राजस्थान ही रहा तदपि उन्होंने बाहर भी देश–विदेशों में भ्रमण कर, अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। जांभोजी के शुक्लहंस शब्द[१] से उनके विभिन्न स्थानों की यात्रा करने का पता चलता है। इसके अतिरिक्त जमसार आदि ग्रंथों में उनके देश–देशान्तरों की यात्रा करने का विस्तृत वर्णन हुआ है। उदाहरणार्थ–

(क) सतगुरु समरथ साथरिये, अेक समय मन में अैसे धरिये।
कही मतै जग जीवण जाणेऊ, रथ जोत्यो पुहण पलाणेऊ।
रथ पर जंभ गुरु बैठ्या सही, दया सरूपी दीठा दई।
घालण की गुरु करै तियारी, साध धाररी ल्याया लारी।[२]

(ख) जंभेश्वर गुरु ज्ञान निधाना, देश भ्रमण जय करहि सुजाना।
जिहिं जिहिं गांव जाय महाराजा, साथ रहै बहु संत समाजा।[३]

(ग) रमणी में राजत भये, सघे गुरु दयाल।
जेहि जेहि गांवां संचरै, तेहि तेहि करत निहाल।।[४]

(घ) वाल्याद्धिव वनान्तरेषु याम्योत्तर पूर्व देशान्
सुदृष्टि हीनाय ददौ सुनेत्रमारोग्यमार्ताय ददौ स्वसिद्धया।[५]

इन संक्षिप्त उद्धरणों से जांभोजी की देशाटन–प्रियता का परिचय मिलता है। जाभोजी जहां पदार्पण करते, वहीं अनेक श्रद्धालु लोग उनकी अगवानी करने को तत्पर रहते–

(क) जंभगुरु जहां ध्यान लगायो।
पूण छतीसों मेलै आयो।
संग सारो ताहां मेलो भयो।
ताते गांव सम्हेलो कह्यो।[६]

(ख) परसण दरसण करै, आवत बहुत जमात।
गांव-गांव ते ऊमग्या, प्रीत करै प्रभात।।[७]

---

१ जाभोजी री वाणी, शब्द सं ६७।
२ जंभसार, नवा प्र पृ २८०।
३ वही, अेकोनविंशति प्र पृ १७।
४ वही।
५.जंभसागर में प्रकाशित श्लोक।
६.वही, अेकोनविंशति प्र पृ. १६।
७.वही, नवां प्र पृ २८५।

सत्य–स्वरुप जांभोजी अपनी शिष्य–मंडली सहित मार्ग में भक्ति–राज्य के बड़े भूप के समान आते हुअे लग रहे हैं–

झांझा झूलर झूलरा, सुरनर सत सरूप।
मारग आवै घालता, भक्तिराज बड़ भूप।।
दर्शन आवै देवकै, धन भक्तां रो भाग।
गुण आवै गेहकां करै, शाख-शब्द धुन-राग।।
उरै विराजै बालला, सझ आवै सिणगार।
शीस निवावै श्यामनै, कर कर प्रेम पियार।।[1]

स्वामी ब्रह्मानंदजी ने जांभोजी के तीन बार देशाटन करने का उल्लेख किया है।[2] पंजाब, हासी, हिसार, मलेर कोटला, लाहौर, मुलतान, अफगानिस्तान, असम कर्णाटक[3], बंगाल, काशी[4], नगीना[5], कश्मीर[6], गोरखहटडी, बराड[7], कन्नौज, आगरा, अवध, रुहेलखंड, आंवला, लोदीपुर (मुरादाबाद), सलेमपुर, शिवहरे, खरड, सरधना, सौंहजनी आदि स्थानो के अतिरिक्त दिल्ली, अलवर, आमेर, जोधपुर, जैसलमेर, चित्तौड, अजमेर आदि स्थानों की यात्रा करने का विस्तृत वर्णन मिलता है। स्वामी ब्रह्मानंदजी ने जांभोजी के भारत–भ्रमण के अतिरिक्त इटली, फ्रांस, सिहलद्वीप आदि विदेशों के भ्रमण का भी उल्लेख किया है[8]। जांभाणी साहित्य में उनके काबुल एवं ईरान जाने के उल्लेख हुए हैं –

(क) अेक समय गुरु गये, हज काबे मुलतान।
काबल नगर डेढसौ, परचे बहुत पठान।।[9]
(ख) मक्कै अरु काबुल में, दीन्हो धर्म बताय।[10]
(ग) अेक समय गुरु जिंदा भेशा, हज काबे किया प्रवेशा।[11]
(घ) हज काबे को घाट सुहायो, जंभ गुरु तहां आसण लायो।[12]

"विश्नोई पथ" में जांभोजी की दिल्ली यात्रा का बडा महत्व है। दिल्ली के

---

१. जंभसार, नवां प्रकरण, पृ २८४।
२. श्री जम्भदेव चरित्र भानु।
३ शेख सद्दू कर्णाटक माहि, सत गुरु आप छुड़ाई गाई। –सुरजनदासजी।
४. काशी मे खेमजी नाम के पंडित के साथ शास्त्रार्थ हुआ। –श्रीजम्भदेव चरित्र भानु।
५ चार मास प्रभु रहे नगीना। –जंभसार, अेकोनविंशति, प्र., पृ १३।
६ कासमेर भाखरी करि मानो, गोरख हटडी साथरी जानो।
७. जभगुरु आगे चले, कियो बराड़ प्रवेश। –वही, पृ. २।
८. श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ १६६।
९. जंभसार, सप्तदश प्रकरण, पृ २३।
१०. वही, पृ २३।
११. वही, सप्तदश प्रकरण, पृ २१।
१२. वही, सप्तदश प्रकरण, पृ २१।

हासम–कासम दर्जी जांभोजी के परम भक्त थे। दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी इन्हीं दर्जियों से जाभोजी का परिचय पाकर उनका भक्त बन गया था।[1] दिल्ली यात्रा सबधी निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है–

(क) चलत चलत दिल्ली आय रहेउ।
जमना पर डेरा तिन दयेउ[2]।

(ख) बीच बीच कर वास, दिल्ली जहां उतरत भये।
हासम कासम आय घरन पकरत पूछत भये।[3]

(ग) साह सिकंदर के गुरु आये।[4]

(घ) दिल्ली आये गुरु जंभराई।[5]

जैसा कि बताया जा चुका है जांभोजी ने देशाटन के लिये तीन बार यात्राए की। वि सं. १५६० में उनका नगीना जाने का उल्लेख मिलता है।[6] संभवत. यह उनका तीसरा भ्रमणकाल था। पर उनका सर्वप्रथम देश का पर्यटन वि.सं. १५४२ के पश्चात ही माना जा सकता है। उस समय तक विश्नोई पंथ की स्थापना हो चुकी थी। शिष्यों, भक्तों एवं अनुयायियों की संख्या बढ चुकी थी और तभी से उनकी यात्रा का शुभारंभ हुआ होगा।

जांभोजी ने सर्वप्रथम मारवाड प्रदेश की यात्रा की। उन्होंने जिन–जिन गांवों की यात्रा की उनकी जंभसार में एक लम्बी सूची दी है जिसमें जोधपुर, बीकानेर अेवं जैसलमेर के अधिकाश गांवों का उल्लेख हुआ है। इनमें से कुछ गांवों का विशेष महत्व है। जांभोजी ने अपने यात्रा काल में रोटू (मारवाड़) तथा लोदीपुर (मुरादाबाद) में भक्तों की प्रार्थना पर खेजडी के वृक्ष उगा दिये थे। वे वृक्ष आज भी हवा मे लहलहाते हुए जांभोजी की सामर्थ्य एवं इस क्षेत्र के पर्यटन की साक्षी भर रहे हैं।

जसनाथी साहित्य में जांभोजी एवं जसनाथजी की भेंट करने की बात प्रसिद्ध है लेकिन विश्नोई सात्यि में इसका उल्लेख नहीं है। यह कथन एकाकी मात्र है। कुछ लोग रामदेवजी तंवर से जांभोजी की भेंट होना मानते हैं पर यह असंभव सा ही है। जाभोजी के जन्म से पूर्व रामदेवजी अपनी जीवनलीला (वि.सं. १४४२ में) समाप्त कर चुके थे।[7]

जांभोजी की वाणी की भाषा, जिसमें कई प्रांतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है तथा अनेक व्यक्तियों से मिलने के संबंध में प्रचलित अैतिह्य कुछ ऐसे आधार हैं जिनसे उनका विस्तृत देशाटन करना सिद्ध होता है।

---

१ जाभोजी की वाणी के अंतर्साक्ष्य से भी उनके द्वारा सिकदर को चेताया जाना सिद्ध है। २. जंभसार, सप्तम प्रकरण, पृ १६४। ३. वही, अेकोनविंशति प्रकरण, पृ ३। ४. वही, पृ. ४। ५ वही, पृ ३। ६. स्वामी ब्रह्मानंदजी, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ २१०। ७. डॉ सोनाराम बिश्नोई, बाबा रामदेव : इतिहास एवं साहित्य, पृ ६३, सन् १९८९।

जांभोजी के औपकारिक कार्य

जांभोजी का समस्त जीवन लोक–उपकार में लगा रहा। उनके उपकारों है संख्या में बांधना अथवा गिनाना सरल भी नहीं है। वे स्वयं उपकार रूप थे। उन्हें जीवन का समस्त कार्य–व्यापार प्राणियों के हितार्थ एवं परमार्थ की साधना में सतत था। उन्होने उपकार की महिमा में कहा है:–

"संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं धण बरसंता नीरूं।
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं रूही मध्ये खीरूं।"[1]

उपकारो की इसी महत्ता में यहां जांभोजी के कतिपय औपकारिक कार्यों क दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है:–

(१) तालाब का उत्खनन एवं निर्माण.–जांभोजी ने जैसलमेर जाते समय "नदेऊ ग्राम से कुछ आगे एक "ताल" (पक्की समतल भूमि) देखा था। उन्हें यह भूमि तालाब बनाने के बहुत ही उपयुक्त जान पडी। इसी स्थान पर उन्होंने तालाब बनवाना आर किया जो वि सं. १५६६ में संपूर्ण हुआ और वह "जंभसर" अथवा "जांभोलाव" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2]

यह तालाब फलौदी (जोधपुर) से आठ कोस की दूरी पर है।[3] तालाब निर्माण के पूर्व इस स्थान की "लोहावट के जंगल" के नाम से प्रसिद्धि थी। विश्नोई पंथ मे इस तालाब का माहात्म्य गंगादि तीर्थों के समान माना गया है।[4]

जांभोजी का इस स्थान से समराथल के समान ही लगाव था। उन्होंने इस स्थान पर काफी समय तक निवास किया। कहा जाता है कि राणा सागा ने इसी स्थान पर जांभोजी से भेट की थी।[5] जांभोलाव से थोडी दूरी पर "जांभा" नामक गांव भी जांभोजी के नाम पर बसा हुआ है।[6]

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ६६।

२. स्वामी ब्रह्मानद, श्री जम्भदेव चरित्र भानु। कहा जाता है कि जाभोजी ने अपने है शिष्यो से कहा था कि जो व्यक्ति धन अथवा शारीरिक श्रम से इस तालाब की मिट्टी निकालेगा यह स्वर्ग–सुख को प्राप्त करेगा।

३ इसी तालाब पर फलौदी का सेठ हीरानंद अपने परिवार सहित जाभोजी के दर्शनार्थ आया था और उनका शिष्य बना तथा "पौहल" पान कर विश्नोई पंथ में दीक्षित हुआ। ४ द्रष्टव्य है–जंभसार व जंभसार साखी संग्रह। जांभोलाव पर प्रतिवर्ष चैत्र अमावस्या को मेला लगता है जिसका श्री गणेश १६४८ चैत्र की अमावस्या को हुआ था दूसरा मेला भादवा की पूर्णमासी को लगता है जिसका श्रीगणेश वि सं १६((को हुआ था। जंभसार साखी, संग्रह प्र १८। ५ श्री जम्भदेव चरित्र भानु।

६. यह जांभा ग्राम जांभोजी के स्मारक रूप में जोधपुर नरेश राव मालदेव ने बसाया था। एक मत के अनुसार तो यह ग्राम जांभोजी के अंतर्धान होने के एकसौ वर्ष पश्चात बसा। इसके बसने के समय नेतरामजी विश्नोई साधु यहां रहते थे।

(२) सौहजनी (मुजफ्फरगनर) नाम के ग्रम में भी जांभोजी ने एक तालाब बनवाया था।
(३) इसके अतिरिक्त जांभोजी द्वारा मीठे पानी के कूप निर्माण के लिये उपयुक्त भूमि बताना, पुराने कुओं का पुनर्निर्माण करवाना आदि उपकार भी लोक प्रसिद्ध हैं।[१]
(४) जामोजी जिस प्रकार अपने सदुपदेश, जीवनादर्श तथा विविध यौगिक सिद्धि–परिचय द्वारा जन समुदाय को धर्म मार्ग पर स्थित करते थे उसी प्रकार से समय–समय पर भक्ति का प्रभाव दिखाकर भक्तों की कामना पूरी करने का भी प्रयत्न करते थे।

उमां[२] अथवा नौरंगी[३], अतली[४] आदि के ऐसे कई उदाहरण संलब्ध होते हैं जिन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने नरसी भक्त के सांवलिया सेठ की भाति भ्रातृविहीन तथा धनविहीन भक्त महिलाओं का माहेरा भरा था।

खेजड़ी वृक्ष लगानाः-

(५) जांभोजी ने वैसे तो वनस्पति रक्षा पर अधिक बल दिया ही है पर खेजडी को उन्होंने अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। यही कारण है कि विश्नोई पंथ में खेजड़ी वृक्ष कलियुग की तुलसी मानी जाती है।

अक्षय तृतीया वि. सं. १५७२ को रोटू ग्राम के लोगों ने जांभोजी से प्रार्थना की कि हमें आपकी कृपा से सभी बातों का आराम है, यदि दुःख है तो इस बात का है कि हमारे गांव में वृक्षों का नितान्त अभाव है। कहा जाता है कि इस प्रार्थना को मानकर जांभोजी ने जनता के कष्ट निवारण के लिये रोटू में खेजडी वृक्षों का एक बाग ही लगा दिया।[५]
(६) इसी प्रकार लोदीपुर वासियों की प्रार्थना पर वहां भी जांभोजी ने खेजडी का पेड लगाया। आज भी यह खेजडी वृक्ष इस अैतिह्य के साक्षी रूप में मौजूद है।[६] मीरपुर, मौहम्मदपुर देवमल और खरड मे भी खेजडी के वृक्ष लगाये जो अब तक मौजूद है।

❖❖❖❖

---

१. पारवा ग्राम में एक कुअे का गोला खंड–खंड होकर गिरनेवाला था, लोगों की प्रार्थना पर जांभोजी ने कहा कि "अब नहीं गिरेगा" तबसे आज तक वह कूआ नहीं गिरा।
२. यह भादू गोत्री जोखा जो रोटू का निवासी था, की पुत्री थी तथा जोधकण गोत्री धर्मदास को ब्याही थी।
३ यह नौरंगी के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका हजूरीनामावली में उल्लेख हुआ है।
४. यह जंभसार की ऊदा–अतली की प्रसिद्ध कथापात्र है।
५ खेजड़ी वृक्ष के बाग को देखकर किसी ने जांभोजी से कहा बताते हैं कि इन खेजड़ियों के कारण चिडियां अधिक बैठेंगी जिससे हमारी खेती को हानि पहुचेगी। इस पर जांभोजी ने कहा बताते हैं कि "चिडियां अन्यत्र चुग्गा पानी करके रात्रि में ही यहां आकर बैठा करेंगी।" एक घटना वि सं १६६१ ज्येष्ठ कृष्णा २ शनिवार को रेवासड़ी ग्राम में घटित हुई थी जिसमें करमां तथा गौरां नामक महिलायें धर्म के लिये उत्सर्गित हुई थी। –जंभसार साखी, पृ ११। ६ स्वामी ब्रह्मानद, श्री जम्भदेव चरित्र भानु।
वि स. १७८७ भाद्र शु १० मंगलवार को खेजड़ली ग्राम में विश्नोई लोगों ने राजकीय कर्मचारियों द्वारा खेजड़ी वृक्ष काटने का घोर विरोध किया था तथा ३६३ व्यक्तियों ने इसके विरोध में अपने प्राणोत्सर्ग किये। इस सबध में द्रष्टव्य है–जभसार साखी, पृ ३६।

जांभोजी के जीवन के विविध प्रसंग

महापुरुषों, सिद्धों एवं सन्तों का जीवन विविध विचित्रताओं से आवेष्टित रहता है। कहीं वे जन–जन द्वारा आदरणीय एवं संपूज्य होते हैं तो कहीं उनके विरुद्ध विरोधी छद्म रूप से उनका अनिष्ट करने की सोचते हैं।

जांभोजी को भी अपने जीवन में, अनेक स्थलों पर विरोधों का सामना करना पड़ा है। परन्तु संतों तथा धर्म–प्रचारकों ने आपत्ति में एवं किसी की ओर से अत्याचार होने पर, उसका निर्भीकता से सामना किया है। वे किसी भी स्थिति में अपने कर्त्तव्य–कर्म से विचलित नहीं हुए। उनकी कर्त्तव्य–दृढ़ता के सामने अन्याय करनेवाली शक्तियां स्वत: ही नष्ट हो जाती हैं।

जाभोजी भी यदि अपने योगबल तथा आत्मज्ञान से निर्भीक न बन गये होते तो निश्चय ही विरोधी शक्तियां अपने कार्य में सफल होती किन्तु योगबल एवं आत्मज्ञान की बदौलत वे अतीव निर्भीक बने रहे। उन्होंने दुष्टों को सन्मार्ग पर लगाया एवं लोकैषणाओं का वास्तविक बोध करवाकर सच्चे मार्ग का पथिक बनाया।

जांभोजी के जीवन के कुछ एतद्विषयक प्रसंग यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:–

सैंसा की दानशीलता की परीक्षा:-

(१) सैंसा नाथूसर (बीकानेर) ग्राम का निवासी था। वह जांभोजी का मतानुयायी था। लोक में इसकी दानी के रूप मे प्रसिद्धि थी। यह जब कभी जांभोजी के पास आता अपनी दानशीलता का वर्णन करता। एक दिन जांभोजी वेष बदलकर इसकी परीक्षा करने इसके घर गये। वह शीतकाल का समय था तथा उस समय मंद–मंद वर्षा भी हो रही थी।

जाभोजी ने सैंसा के घर पहुचकर अलख–अलख की आवाज लगाई पर किसी ने उनकी अलख पर ध्यान नहीं दिया। परंतु जाभोजी भिक्षा प्राप्ति के लिये बार–बार अलख–अलख की रट लगाते रहे।

निदान जांभोजी के बार–बार भीक्षा देने की मांग करने पर "बासी दलिया" उन्हें दिया गया तथा वस्त्र मांगने पर घर के किसी सदस्य ने उन्हें एक जोरों का धक्का दिया जिससे उनके भींत से टकराने पर उनका भिक्षापात्र खंडित हो गया। जांभोजी को आज सैंसा की पूर्ण परीक्षा करनी थी अत वे तिरस्कृत होने पर भी "छोटा–मोटा वस्त्र दे" की मांग करते ही रहे। अंत मे सैंसा ने भिखारी से तंग आकर एक जीर्ण–शीर्ण वस्त्र उसे दिया। इस प्रकार सैंसा की परीक्षा कर जांभोजी अपने आसन बगरा वाले धोरा पर आ गये।

दूसरे दिन जब सैंसा जांभोजी के पास आये तो उन्होने वह वस्त्र और धक्का

ो से टूटे हुए उस पात्र को दिखाया।[1] ऐसा कर जांभोजी ने उसके घमंड को चूर
ग्या और उसे सही मार्ग पर अग्रसर किया।

जा को उपदेश:-

(२) बाजा भी सैंसा की भांति जांभोजी का भक्त था। वह जसरासर (बीकानेर) निवासी था तथा तरड गोत्री जाट था। उसने अपनी जाति में प्रचलित पद्धति अनुसार न्याति भोज किया। न्याति भोज के पश्चात वह जांभोजी के पास आकर ने लगा कि उनकी सम्मति में उसका यह कार्य कैसा रहा।

जांभोजी की दृष्टि में ऐसे दिखावेपूर्ण कार्यों का कोई महत्व नहीं था। जिस काम वनस्पति का संहार हो तथा पात्र–अपात्र का विचार किये बिना दान दिया गया ऐसे कार्यों की जांभोजी प्रशंसा करने वाले नहीं थे।

जांभोजी ने उसके न्याति भोज को दोषपूर्ण ही बतलाया जिससे उसको पहले बड़ी खिन्नता हुई[2] पर शीघ्र ही वह उनके आशय को समझ गया। उसने एक रे यज्ञ का आयोजन किया जिसमें उसने जांभोजी को सादर आमंत्रित किया तथा नके आदेशानुसार ही सब कार्यों को संपन्न करने का निश्चय किया।[3]

दा-अतली:-

(३) जाभोजी ने जिस प्रकार सैंसा आदि भक्तों की परीक्षा ली थी उसी प्रकार न्होंने अपने भक्त "उदा–अतली" की भी परीक्षा ली थी। इस विषय में जंभसार[4] । यह दोहा द्रष्टव्य है:–

(क) भिखारी को रूप धर काया पलट किरतार।
अतली की परसण भगत, आयो सिरजण हार।।
(ख) पनरासी पच्यासिये साला। बदी मिंगसर कम रवि काला।
जंभगुरु कृपा जय करीउ। उदैकै घर आये हरीउ।

पर ये दोनों दम्पति महाभाग बडे ही भक्त पुरुष थे अतः वे परीक्षा में भी सफल । हुए।

जाभोजी का यह खंडित भीक्षा पात्र "जांगलू की साथरी" मे रखा हुआ है। यहा एक जीर्ण कुर्ता भी रखा हुआ है जो जांभोजी का है।
इस संबंध में द्रष्टव्य है जंभगीता, पृ ३२३।
तहा बाजो जद चेतियो, अरज करी उठ ताम।
यज्ञ करू एक देवजी, जो तुम आवो श्याम।
देव कह जो कह्यो करो, तो आवां यज्ञ मांह।
कह्यो जो मानो और को, तो हम आवां नाह।
कहियो मानूं देव को, और न मानूं काय।
देव पधारो यज्ञ में, सतगुरु आयो भाव। –जंभगीता, पृ ३२३।
जंभसार, अष्टादश प्रकरण, पृ. १५।

मुसलमानों का हमला:-

(४) यह सर्वविदित है कि संत खरी और सच्ची बात कहने से कभी नहीं चूके जांभोजी भी मुसलमान हो चाहे हिन्दू, उनके विपरीत आचरणों को देखकर फटकार दिया करते थे। छोटे हृदयवाले मीठी बातों से ही राजी होते हैं चाहे मिथ्या बात ही हो। कहा जाता है कि एक बार ऐसे ही कुछ कारणों से क्षुब्ध हो रोल के कुछ मुसलमानों ने रात्रि में जांभोजी पर कातिलाना हमला बोल दिया समराथल के पास आते ही जांभोजी के सिद्धि–योग–बल से वे अंधे हो गये। एक जाट ने उनको देखा तथा ठीक होने के लिये जांभोजी से प्रार्थना करने की सलाह दी। मुसलमानों के क्षमायाचना करने पर उन्हें पुन. दिखने लगा।

ब्राह्मणों की चिढ

(५) श्री जम्भदेव चरित्रभानु में लिखा है "जांभोजी के मत से प्राय ब्राह्मण ही चिढते थे।" उन्होंने तात्कालिक राजाओं से भी इस बात की शिकायत की थी "जांभोजी अपना नया पंथ चला रहे हैं। वे देवी–देवताओं की अवमानना तथा उनकी पूजा का निषेध करते हैं। समय रहते कोई उपाय नहीं किया गया तो सब लोग उनके अनुयायी हो जायेंगे।" ब्राह्मणों को उनके नया पंथ चलाने के कारण उनसे चिढ थी।

चारणी का प्रसंग

(६) एक चारण जाति की स्त्री जांभोजी के सामने उपस्थित होकर कहने लगी कि आप मुझे एक ऊंट दिलवादें, मैं आपके यश का बाजा दूर–दूर तक बजा दूंगी। उसने थोडा देकर बहुत लेने की कामना से अपने गले की "हंसली" (आभूषण विशेष) भी जांभोजी को भेट की। इस प्रसग में निम्नांकित दोहे प्रसिद्ध हैं.–

(१) देव चारणी चलके आई, कै आई अेक,
बाल लो चाड्यो गलै को, लियो नहीं अलेख

(२) देव कहै सुण चारणी, मेरै पहरै कोस,
बेटा बहु मेरै न कछु, बाल लो पहरै कोय

(३) चारणी कहै सुणो देवजी, ऊंठ दरावो मोहि
घणी दूर मै नांव कौ, प्रगट करस्यो तोहि

(४) बाजा खूब बजाय कै, कहूं तुम्हारो जस
मोदी नेवउ पण मिले, मित्र मिले अजस

(५) किती अेक दूर प्रगटै करै, कहि समझावो भेव
आठ कोटड़ी मैं फिरौ, सब जाणैं गुर देव।[1]

कहा जाता है कि इस प्रसंग में जांभोजी ने चारणी के प्रति इक्कीस की रकम वाला शब्द कहा था।

---

१. इस सबंध में यह पक्तियां द्रष्टव्य हैं –
पढ्या पडित पुरेग्वार, निन्दा करत न आवे पार।
–जंभेश्वरी भजनमाला, पृ १०

जांभोजी का निर्वाण

जाभोजी का महापरिनिर्वाण वि.सं. १५६३ मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को ८५ वर्ष ३ ...
१० दिन की अवस्था में हुआ।[१] जांभाणी साहित्य में इसी निर्वाण तिथि का ...
उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ.–

(क) पनरासै अरु तिराणवै, वद मिंगसर बभेख।
तिथि नव निरपी निरमलि, ओलै हुवा अलेख।।[२]

(ख) पनरासै तिराणवैं साला, तिथि नौमी मिंगसर बदि ...
जंभ गुरु सतलोक सिघाये।[३]

(ग) पनरासै तेराणवैं, वदी मंगसर आगले पालटियो।
रूप रहिया ध्रुव अडिग, ज्योति समरायले।।[४]

(घ) पनरासो तेराणवें, वद पख मिंगसर मास।
जंभदेव नवमी दिवस, किये वैकुंठ निवास।।[५]

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इनका निर्वाण वि.सं. १५८० के लगभग एवं श्री ओझा ने संवत् १५८३ लिखा है जो गलत है।[६] जंभसार में लिखा है.–ब्रह्म स्वरूप जंभ वही हैं जिन्होने पच्चासी वर्ष तक अपने शरीर को अन्नजल के बिना रखा।[७]

इस संबंध मे एक संस्कृत कवि ने लिखा है–

अंके सुचन्द्र प्रमितेसु वर्षे कृष्णदले मार्गशीर्ष नवम्यां
सुशिक्षया द्वादश कोटिजीवानुद्धत्ययोगात्स्वपदं जगाम।[८]

जभसार में एक दूसरे स्थल पर लिखा, है "जाभोजी जब पच्चासी वर्ष के हु... तब वे अपनी शिष्य मंडली सहित लालासर आये और वहां एक धोरे पर बैठ गये...

---

१ श्रीरामदासजी गुटका शब्दवाणी, पृ १६। जंभसागर, पृ ड और विश्नोई धर्म विवे... पृ १८१।

२. जंभसार, द्विविंशती प्र. पृ १३। ३. वही, पृ १६।

४. वील्होजी का छप्पय।

५. श्रीरामदासजी, जंभेश्वर धर्म दिवाकर, पृ २।

६ (क) श्री गोरीशकर हीराचंद ओझा (१) बीकानेर राज्य का इतिहास, पहला भाग, ... २० की टिप्पणी (२) जोधपुर राज्य का इतिहास प्र सं, पृ २५।

७. सोई ब्रह्म गुरु जभ है, यामे शसय नाहिं।
ब्रख पचासी एक पत्र, जल अन बिना रहा हि।। –जभसार, आठवां प्रकरण पृ ...

८. जभसार (हिसार), श्लोक ७।

यर्प पच्चारसी के ढिग आये, अेक दिवस लालासर ध्याये।
साध संत सब साथ गयेऊ, लालासर थल बैठत भयेऊ।[1]

जाभाणी ग्रंथों में प्राय ऐसा लिखा हुआ मिलता है कि निर्वाण से पूर्व, जांभोजी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि जिस सद्धर्म प्रचार हेतु इस शरीर को धारण किया था उन सबके संपन्न होने के पश्चात अब इस शरीर की कोई सार्थकता नहीं।

देह धारै निज कार ताईं।
कारज भये पिरोजन नाहीं।[2]

इस संकल्प के साथ ही उनकी इहलीला संवरण की स्फुरणा हुई और वे बीकानेर प्रदेश के लालासर ग्राम के जंगल में एक स्वच्छ "धोरे" पर कंकेडी वृक्ष के नीचे समाधिस्थ हो, ब्रह्मलीन हो गये।[3]

जिस समय जांभोजी का निर्वाण हुआ था, उस समय उनके अधिकारी शिष्य रणधीरजी, रेडाजी, न्ह्यालदासजी आदि "हजूरी संत" भक्त एवं अनेक अनुयायी उनके पास उपस्थित थे। उस समय कालपी से भी अनेक भक्तो तथा अनुयायियों के आने का उल्लेख मिलता है। जिनमें से अनेक भक्त, भक्ति–विह्वल होकर जाभोजी के साथ स्वर्गारोहण कर गये।[4] साखीकार कहता है कि जिस समय जांभोजी का तिरोधान हुआ था उस समय चारों ओर अंधेरा छा गया।[5]

जांभोजी का आदेश (वसीयत) था कि उनका अत्येष्टि संस्कार "जांभोलाव" (फलोदी–जोधपुर) पर किया जावे। इसके लिये पूर्व से ही वहां "समाधि–कुंड" बनवा लिया गया था।

वसीयत के अनुसार जाभोजी के साधु–शिष्य रणधीरजी, रेडाजी आदि जांभोजी की समाधि "जांभोलाव" पर देना चाहते थे, अतएव वे जांभोजी के पार्थिव शरीर को लालासर से लेकर चले तथा तालवे ग्राम तक आ भी गये, पर अनेक कारणों से वे जांभोजी के पार्थिव शरीर को जाभोलाव न ला सके। निदान उनकी समाधि मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी के दिन बीकानेर राज्य के ग्राम "तालवे" में दे दी गयी। जांभोजी का प्रमुख तपस्थान समराथल भी इस ग्राम के पास ही है। जाभोजी का अंतिम विश्राम यहां होने के कारण आगे चल कर इस स्थान का नाम "मुकाम" पडा जहां जाभोजी का विशाल एवं भव्य समाधि–मदिर बना हुआ है तथा वहां वर्ष में दो मेले, प्रमुख फाल्गुन की अमावस्या और दूसरा आश्विन की अमावस्या को लगते हैं।

❖❖❖❖

---

१. जंभसार, द्विविंशति प्र, पृ ६।
२. जंभसार, द्विविंशति प्र, पृ ५।
३ स्वामी ब्रह्मानदजी, श्री जम्भदेव चरित्र भानु।
४ श्री जम्भदेव चरित्र भानु एव जभसार आदि ग्रंथ।
५. जमसार साखी पृ १६, साखी २१।

विश्नोई पंथ की प्रमुख साथरी

महापुरुष जिन स्थानो पर अपने पावन चरण रखते हैं वे तीर्थ सदृश पवित्र हो जाते हैं एवं उनका गौरव "धरा–धाम" के रूप में आंका जाता है। ऐसे धाम भारतीय सस्कृति में नैतिक प्रेरणा के प्रतीक माने जाते हैं। वे मानव–मिलन की सहज भूमिका का निर्वाह करते हैं, जैसा कि "तीरथ धाम रच्या जुग मेला" की उक्ति है। ऐसे तीर्थ एवं धामो के साथ अपनी–अपनी सुंदर तथा विशिष्ट परम्पराओं का अविच्छिन्न संबंध जुडा हुआ रहता है। मानव–मानस मे, इन स्थानों को देखकर अतीत की पावन स्मृतिया एक नूतनता धारण कर लेती हैं। वहां पर लगने वाले मेले तथा उनसे निष्पन्न विविध धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम मानव के हृदयाकाश में ज्ञान की शुभ्र ज्योत्स्ना भर देते हैं।

भारतीय आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत मे "चार धाम", "अष्टपुरी" तथा "अडसठ तीर्थ" का चिरंतन काल से महत्व स्वीकार्य है। अन्त करण शुद्धि के वे तीर्थ–धाम प्रथम सोपान माने जाते हैं। इनके परिभ्रमण से यात्री को एक ताजगी, नैतिक सबलता तथा धार्मिक भावना की प्राप्ति के साथ राष्ट्रीय भावना का विकास भी उसमें होता है। धर्म–प्रचार के तो ये मुख्य केन्द्र माने ही जाते रहे हैं।

विश्नोई पंथ में भी अपने तीर्थ धाम अथवा गुरुद्वारों का महत्वपूर्ण स्थान है। जंभगीता मे इनकी संख्या आठ, जंभसागर मे सात पर शब्दवाणी गुटके में श्री रामदासजी ने इनकी सख्या नौ बताई है:–

(१) पीपासर, (२) समराथल, (३) जांभोलाव (तालाब–जंभ सरोवर), (४) जांगलू साथरी, (५) रोटू, (६) लोधीपुर, (७) लालासर साथरी, (८) मुकाम (मुक्तिधाम)। उक्त धामों में स्वामी सच्चिदानंद ने जागलू की साथरी को न गिनकर लोदीपुर (मुरादाबाद) की गणना की है और स्वामी रामानंद गिरि ने जांगलू की साथरी के अतिरिक्त रामडावास की गिनती नहीं की हैं। पर विश्नोई पंथ मे उपर्युक्त नौ धामों के अतिरिक्त "गुड़े की साथरी" और "लोहावट की साथरी" का भी पूज्य, एवं महत्वपूर्ण स्थान है। उक्तांकित धामो का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है:–

(१) पीपासर[1]:- (१५०८ वि. सं., जन्म स्थान)

पीपासर ग्राम जांभोजी का जन्म–स्थान होने के कारण संपूजित है।

(२) समराथलः- (वि. सं. १५४० निवास, वि. सं. १५४२ धर्म स्थापना)

विश्नोई पंथ में आदि आसन समराथल का महत्व सर्वोपरि है।[2] पथ की प्रमुख साथरी में इसकी गणना की जाती है। यह स्थान जांभोजी के समाधि– स्थल मुकाम

---

१. यह नागौर शहर से डामर रोड़ से ७५ कि.मी. पूर्व उत्तर में स्थित है।

२ (क) उदक भोम समराथल आसन (राजाराम)

(ख) शील–सयम थभे रोपे, सम्राथल पे स्वामी।

। दक्षिण दिशा में लगभग दो कि.मी. के फासले पर स्थित है। यहां जांभोजी ने क्कावन वर्ष तक धर्म प्रचार एवं इस अवधि में उन्होंने यहां अपरिमित घृतादि पदार्थों ग हवन किया था। जांभोजी ने इसी महनीय स्थान पर वि.सं. १५४२ में अकाल ाडितों की सहायता कर उन्हें बुभुक्षा की विभीषिका से बचाया था तथा तदुपरान्त न्होंने विश्नोई पंथ की स्थापना भी इसी स्थान पर की थी। जांभाणी साहित्य में इस थान की स्थान–स्थान पर महिमा गाई गई है।[1]

यहा जांभोजी महाराज का "दरबार"[2] लगता था, जहां वे धर्म–शासक के रूप विराजमान होते थे। लौकिक प्रदर्शन की एवं लोकैषणा की भावना से नहीं, फिर ो उनके "दरबार" में द्वारपाल (दुवागर), पोलिया, छडीदार, हाजरिया एवं हजूरी ांझक सेवक सतत सावधानी के साथ उनकी सेवा में समुपस्थित रहते थे।

बडे–बडे राजा महाराजा, जोगी, संन्यासी, वैरागी, गुसाईं, पंडित, ब्रह्मचारी, ााट, विश्नोई आदि श्रद्धालु–अश्रद्धालु सभी प्रकार के लोग यहा जांभोजी के दरबार ं अपनी–अपनी भावना के साथ उपस्थित होते थे।[3] साखीकारों ने समराथल पर ाकट जांभोजी को "ज्योतिस्वरूप जग मडनमा", "समराथल हरि आन बिराजे तिमिर ायो सब दूर" आदि स्तवन परक पंक्तियों में स्मरण किया है।

(३) जांभोलावः- (वि. सं. १५६६)

जांभोलाव फलौदी (मारवाड़) के पास बने हुए एक तालाब का नाम है जिसको जाभोजी ने प्राणियों के हितार्थ बनवाया। यहां चैत्र मास की अमावस्या तथा भादवा की पूर्णमासी पर मेले लगते हैं जिसमें श्रद्धालु विश्नोई यात्री दूर–दूर से आते हैं। यह पंथ का तीर्थ शिरोमणि माना जाता है।

(४) जांगलू[4]:-

यहां दो स्थान हैं। प्राचीन साथरी जहां जाम्भोजी वि.सं. १५७० में जैसलमेर जाते समय ठहरे थे तथा दूसरा स्थान गांव में हैं जहां मंदिर है। इस मंदिर को पिछवाडा कहते हैं। जाम्भोजी के आदेश पर वरसिंह जी बणियाल ने तालाब खुदवाया था जो वरसींग नाडी कहलाती है।

---

१. "समराथल" के महत्व प्रकाशन के लिये इसे "सिद्ध–स्थल" की संज्ञा से भी पुकारा जाता है–देवजी समराथल गया, सिध थल आण्यो जिहान।

–जंभसार द्वादश प्र., पृ ६०।

२. संभर नगरी जेहि दरबारा, आवे हंस अनेक प्रकारा।
गंगापार सत बहु राजे, चालेउ गुरु दरसण के काजा।

+ + + +

देयतणै दरबार जमाती यूं कही। –वही, नवां प्र., पृ २४६।

३ (क) संभल सेती चली जमाता, जहां सिद्धेश्वर रहहिं जग त्राता।
(ख) सतगुरु जंभेश्वर जिहिं नामा, समराथल है तिहिं का धामा।
(ग) जंभेश्वर बैठे सही, संत सभा के मांय।
जाट आय ऐसे कही, सतगुरु कहो समझाय।

४. यह बीकानेर से दक्षिण–पश्चिम दिशा में लगभग १६ कोस की दूरी पर है।

यहां जांभोजी ने अपने जीवन काल में कई बार पदार्पण किया था। यहां के विश्नोई मंदिर मे उनका कुर्ता व भिक्षा–पात्र रखा हुआ है।

(५) रोटू:- (वि.सं. १५७२)

यह मारवाड स्थित जांभोजी के धर्म–प्रचार का केन्द्र रहा है। यहा जांभोजी ने अपनी योगसिद्धि से अल्पकाल–एक रात्रि– में ही खेजडी वृक्षों का बाग लगा दिया था। आज भी हजारों खेजडी वृक्षो की पंक्ति रोटू ग्राम के चारों ओर दिखाई पड़ती है। यहां के विश्नोई मंदिर मे एक तलवार रखी हुई है। कुछ लोगों के मतानुसार यह तलवार जांभोजी की बताई जाती है पर स्वामी ब्रह्मानदजी के मतानुसार यह तलवार जाभोजी की न होकर साधु केशोदासजी की है। जांभोजी ने कभी अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं किया। यहा एक ऐसा पत्थर भी है जिस पर "चरण चिह्न" अंकित है जिसको जांभोजी का चरण चिह्न बतलाया जाता है।

(६) लोधीपुर (मुरादाबाद) वि. सं. १५८३-१५९० के मध्य

यहां जाम्भोजी ने खेजडी का वृक्ष लगाया था। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्र की अमावस्या से मेला लगता है।

(७) लालासर[1]:-

लालासर के जगल में जांभोजी अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर परम धाम को सिधारे थे इसलिये इस ग्राम का महत्व प्रमुख साथरी के रूप में स्वीकार्य है।

(८) मुकाम[2]:- (मिंगसर बदी ग्यारस वि. सं. १५९३ समाधिस्थ)

यहा जांभोजी की पवित्र समाधि है तथा उस पर अतिरमणीय विशाल मंदिर बना हुआ है। यह मंदिर स्वामी रणधीरजी ने जांगलू के सेना विश्नोई के सहयोग से बनवाया था, जिसका शिलान्यास बीकानेर राव जैतसी के हाथ से हुआ बताया जाता है। वह वि सं १६०० में बनकर पूर्ण हुआ। यहां प्रतिवर्ष दो बडे मेले लगते हैं। प्रथम फाल्गुन कृष्णा अमावस्या और द्वितीय आश्विन की अमावस्या को। ये मेले उक्त महीनो की कृष्णा त्रयोदशी से आयोजित होकर उस मास की शुक्ला तृतीया तक चलते हैं, परन्तु मेले की प्रमुख तिथि अमावस्या ही मानी गई है। अमावस्या को यहां वृहद् होम होता है तथा हजारों की संख्या मे दूर–दूर से यात्री आते हैं।

इनके अतिरिक्त जैसा कि बताया जा चुका है गुडा विश्नोइयान की साथरी, लोहावट की साथरी, भींयासर की साथरी रामडावास आदि का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

❖❖❖

---

१ यह धाम जांभोजी की समाधि मुकाम से उत्तर दिशा की ओर लगभग २५ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

भंडारे

जांभोजी के लोकोपकारी कार्यों में "अन्नदान" उनका एक महत्वपूर्ण कार्य था। उन्होंने १५४२ के अकाल में लोगों के लिये सामूहिक रूप से समानान्तर अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त देश के अनेक भागों मे सदाव्रतों की स्थापना की थी। ये सदाव्रत "भडारे" कहलाते थे, और ये जमाती, साधु एवं अनाथ–अपाहिजों के लिये नि शुल्क भोजन वितरण करते थे। विश्नोई धर्म विवेक[1] में ३७५ सदाव्रतो का उल्लेख हुआ है। पर निम्न दोहले में चौबीस भडारे का स्पष्ट उल्लेख है–

प्रथम इस पंथ में, जांभोलाव मुकाम।
भंडारे चौबीस थे, गुरु किया विश्राम।।[2]

जाभोजी के इन भडारों के अन्न को भूत भी समाप्त नहीं कर सकते, क्योंकि ये तो उनकी "संकलाई" से चलते थे–

भंडारे बुध तणै, भंज न सकै भूत।
जोगी जीम्या जुगत सूं, संकलाई सहैं सूत[3]।

सम्भराथल पर आगन्तुक नाथ–योगियों ने जांभोजी की परीक्षा करने की दृष्टि से एक बार उनके भडारे में बने प्रसाद को अपने उदरस्थ कर समाप्त कर देना चाहा, पर उनके भोजनोपरान्त भी भंडार तो भरा ही रहा–

जीमणनै जोगी लग्या, धाया कियौ हारा।
आयस कह आरात घणी, छलिया रह्या भंडारा।।[4]

भंडारे की सुदर व्यवस्था के लिये जाभोजी के शिष्य भडारी के रूप में कार्य करते थे। ये भंडारी अधिकांश वे व्यक्ति होते थे जिन्हें विशेष सेवाभाव से अपने अंत करण–शुद्धि की आवश्यकता थी। इस प्रसग में ऐसे ही व्यक्तियों के नाम आये हैं जो पहले किसी साधु–संप्रदाय में दीक्षित थे, पर पहले वे उन संप्रदायो मे पाखंड–प्रपच से ग्रसित थे, ऐसे लोगो ने जाभोजी के उपदेश से प्रमादी जीवन को त्यागा और भंडारे तथा प्याऊ में सेवाकार्य कर परमार्थ–लाभ की ओर अग्रसर हुए। कुछ उदाहरण देखिये–

गुरुपै आया द्रसणी, गुरु जंगल थल धाम।
मुदराला सब सिद्ध हुवा, करै भंडारे काम।।[5]

---

१ वही, पृ २५।
२. जंभसार, सत्रहवा प्र, पृ ५६।
३ वही।
४. वही।
५. जंभसार, सप्तदश प्र, पृ ६४।

मोहटि कहिये भंडारो, मृधीनाथ जाणै जग सारो[1]

\+ + + +

लालादास कूं लालासर को, दियो भंडारी जोय[2]

\+ + + +

केइ तो भंडारी भये, केई यह यह साध[3]

उक्त उद्धरणों से विश्नोई पंथ मे चलने वाले भंडारों एवं उनके व्यवस्थापकों के संबंध मे अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। जांभोजी के प्रमुख शिष्य रणधीरजी प्रमुख भडारी के रूप में प्रसिद्ध हैं। विस्तृत विवरण के लिये जंभसार ग्रंथ द्रष्टव्य है।

❖❖❖

1. वहीं, द्विविंशति प्र., पृ २।
2. वही, सप्तदश प्र., पृ ३०।
3. वही।

द्धर्म प्रचार में सदाचार एवं शीलाचरण को विशेष महत्व देकर नैतिक सिद्धातों को
-सिद्धांत में स्थिर कर एक बड़े समुदाय की जीवनपद्धति मे परिवर्तन किया।
द्यपि उन्होंने कतिपय पापी और धर्मरहित प्राणियो को सद्धर्म की ओर प्रवृत्त किया,
न्तु जो कुजीव थे, वे उनसे उपदिष्ट नहीं हुए या उपदिष्ट होने के लिये उन्होंने
पनी तैयारी नहीं की। वे उनके उपदेश से अपरिचित ही रहे।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, जांभोजी ने "असम्य" कहे जाने वाले वर्गों
स्नेहासिक्त संबंध स्थापित किया और उनके विश्वास को जीत कर उन्हे अपनी
ात्मीयताक्रोड में आबद्ध कर लिया। वे मानवता के प्रबल समर्थक थे। वहा ऊच
ौर नीच तथा वर्ग और वर्ण को कोई स्थान नहीं था। उन्होने ऐसी भावनाओं को
हं की संज्ञा दी है। उन्होंने बहुत सीधे और सरल धर्म-नियमों का प्रतिपादन कर
न-साधारण के भाव और विचारों को ऊंचा उठाकर समाज की अतर्बाह्य स्थितियों
ा निर्माण किया। वे जन्मपर्यन्त पाप और पाखंड से लोहा लेते रहे। वे सच्चे अर्थ
कर्मयोगी थे। वे ऐसी साधना और प्रवृत्ति के हामी नहीं थे जो अकर्मण्य होकर
थवा एकान्त में बैठकर ही साधी जा सके। वे ऐसी निष्क्रिय साधना एवं प्रवृत्ति के
ोर विरोधी थे जो पापजन्य, अधोपतनकारी तथा व्यक्तिगत स्वार्थों को ही संपन्न
करने वाली हो। वरंच वे ऐसी महान साधना और धर्म के निरूपक थे जिसमें
नेष्क्रियता, पाप, प्रमाद एवं पाखण्ड को सर्वथा स्थान नहीं था। वे एकमात्र सदाचार
की कठोर किन्तु सुदृढ भित्ति पर मानव का निर्माण चाहते थे। उन्होंने प्रत्येक मनुष्य
के सदाचारपूर्ण जीवनयापन पर जोर दिया है। सदाचार और ईश्वराराधन दो ऐसे
महान सोपान हैं जो मनुष्य के लिये इहलोक और परलोक दोनों के लिये पूर्ण
सहायक हैं।

एक और वे अपने स्वरूप में निरंतर निरत रह कर अपनी सुखद स्वानुभूति का
आस्वादन करते रहते थे तो दूसरी ओर उन्होने अपनी निश्छल, अकृत्रिम तथा
ओजस्विनी वाणी के सुंदर माध्यम से प्रवृत्ति और निवृत्ति की भ्रांतिमूलक धारणाओ
को मिटाकर एक आदर्शपूर्ण जीवनदर्शन दिया। उन्होने सहस्रों लोगो के साथ, जो
अधिकांशतः देश और काल के प्रभाव से अज्ञानी, पीडित, संत्रस्त, अभावग्रस्त एवं
जीवन के साधारण से साधारण मूल्यों से भी अपरिचित थे, समग्र मानवता के स्तर
का संबंध जोडा और उन्हें उन्नत बनाया। इसी अप्रतिहत प्रभाव के परिणामस्वरूप
वे सबको अपने आत्मीय लगने लगे। वे सबको अपने अत्यन्त समीप और निकट के
दृष्टिगोचर होने लगे। उन्होंने जन साधारण का ही तानाबाना धारण किया था।
उनकी अंतरात्मा पशुवत् मानव को भी उच्चस्तरीय मानवरूप देना चाहती थी और
वैसा ही उन्होने किया भी।

जांभोजी को उनके भक्त कवियों एवं साखीकारों ने परम आदर के साथ भगवान
के रूप में देखा है। उन्होंने अपनी वाणी मे उनका अतिशय यश कीर्तन किया है।
यही कारण है कि विश्नोई पंथ में आदि गुरु जांभोजी की परमेश्वर के रूप में
आराधना होती है।

विश्नोई पंथ के संतों, भक्तों एवं कवियों की जांभोजी के प्रति इस प्रकार
अभिव्यक्ति हुई है जिससे उनका स्थान आचार में ब्राह्मण और आत्मतत्व में
के समान स्थित होता है:–

आचारे ब्रह्मा सही योगी आतम सार।
जंभेश्वर महोड़ा सही, दोय आचार विचार।

वे उसी श्रेणी के सिद्ध हैं जिस श्रेणी के कपिल, गोरखनाथ तथा अगस्त्य
महादेवजी हैं:–

सिद्ध जेते संसार में कपिल अरु गोरख जाण,
अगस्त्य महादेवजी सोई जंभेश्वर जाण।

वे समुद्र के समान अथाह, आकाश के समान उन्नत, अमृत से अधिक म
दिशाओं के समान विस्तृत और गुरुत्व में सुमेरु के समान हैं। वे ही माता है
वे ही पिता। उनका कोई तोल और माप नहीं है। जांभोजी तो एक अचंभा है
उनको भक्तों ने आदि विष्णु, साचो धणी और सही सौदागर बतलाया है, जि
जंबूद्वीप में आकर वास्तविक लाभ प्राप्ति के लिये लोगों को जगाया –

जागो जागो जंबूद्वीप हुई छै आवाज, सही सौदागर जंभराज आवीयो
(जंभसार, साखी पृ

जांभोजी को निर्विकार बतलाया गया है। क्षुधा, तृषा, निद्रा, संताप, छाया
किसी प्रकार की आपदा उनमे नहीं है:–

आवीयो हरि आप खुध्या तिसना नींद नाहीं।
सोक न संताप छाया खोज न आपदा (जंभसार साखी पृ
गुरु सा गहरा कवन, समद ज्यूं थाह न होई
ऊंचो जाण आकाश, पार पावै नहीं कोई
मीठो सकर समान, इमरत सूं इदकेरो
चौडो चारूं खूंट, भारी सुमेरु सुमेरो
जिण हरजी अधिक, तोल माप आयो नहीं
श्री गुरु जंभ अचंभ, गुरुदेव को पार पायो नहीं
विमोच्यदीनान् दृढवन्धनेभ्यो राज्येसमारोप्य बहून् स्व भक्तान्
संस्थापयामास हुताशनार्चा लोकोपकाराय सुगन्धद्रव्यैः॥
(जंभसार, श्लोक

जांभोजी की वाणी
(द्वितीय खंड)

जांभोजी : विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य

जांभोजी की वाणी : महत्व एवं प्रतिपाद्य

चिरकाल से ही भारतीय जन–जीवन में संतों का महत्व रहा है। उपनिषदों के तत्वज्ञ, साधक, उदारचेता एवं मनस्वी ऋषियों की निर्गुण, योग तथा आत्मपरक विचारधारा शतशः वर्षों से भारतीय जनमानस को प्रभावित करती आ रही है।

संतों ने अपने उच्च आचरणों और सदुपदेशों से मानव को सदैव ही ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। उसे निराशा में आशा, विफलता मे धीरज तथा संकट के समय आगे बढने की प्रेरणा दी है।

संतों ने निःस्पृह भाव एव लोककल्याण की महती भावना से मानव जीवन को आध्यात्मिक आधार पर पुनर्गठित कर, उसे समुचित महत्व प्रदान किया है। जीवन में जीवन–मुक्ति का आनन्द प्राप्त करवाया है।

इसी प्रकार संत–वाणी का सारा व्यापार मानव जीवन को ऊँचा उठाने में रहा है।

संत–वाणी कल्मषनाशनी गगा के समान पवित्र और प्रवहमान है। उसमें निर्दिष्ट जीवन–पद्धति एवं साधना मानव के लिये कल्याणकारी है। आदि से आज पर्यन्त संत–वाणी के सारगर्भित उपदेशों से अनेकानेक मुमुक्षु जनो ने अपने जीवन को सफल बनाया है तथा अनेकों ने आत्म–सबल, प्रेरणा और स्पदन प्राप्त किया है।

संत–वाणी मानव हित के लिये ज्ञान का भंडार है। जो वेद और शास्त्रो में है, वह तो संत वाणी में है ही इसके अतिरिक्त उसमें जैसा कि विद्वानों ने संत–वाणी के, दो प्रमुख उद्देश्य बतलाये हैं, स्वानुभूति की अभिव्यक्ति और आत्म–ज्ञान की प्रेरणा भी है। संत–वाणी की यह अपनी विशेषता है। संतों के कथन में सच्चाई है और उसका असर अचूक है।

संत–वाणी की परम्परा आदि काल से ही अविच्छिन्न रूप में चली आ रही है।

आचार्य विनोबा के शब्दों में "संतों की वाणी का नमूना हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद में कुछ कथानकों को छोड़ दें तो बाकी सारा ऋग्वेद संतों की वाणी ही है।"[1] वे भारतीय संत–वाणी का मूल उद्‌गम "वेदवाणी", "बुद्धवाणी" और "तमिल भक्तवाणी" को मानते हैं।[2] वस्तुत. विनोबाजी का उक्त कथन सारयुक्त है। इन्हीं मूल स्रोतों से प्रवाहित संत–वाणी आज मानव को उसकी सर्वांगीण उन्नति का संदेश दे रही है।

१. संत–सुधा–सार (श्री वियोगी हरि द्वारा संपादित) प्रस्तावना पृ १।
२ वही, पृ० ११।

सिद्धों एवं संतों के साहित्य–निर्माणकाल से पूर्व हिन्दुओं के समस्त ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में थी। अत. उनका अध्ययन ब्राह्मण पंडितों तक ही सीमित था अथवा ऐसे व्यक्तियों तक ही सीमित था जो किसी प्रकार से चेष्टा करके अध्ययन में समर्थ हो सकते थे। साधारण जनता धर्म के शास्त्रीय ज्ञान से संपर्क रखने में स्वयं को असमर्थ पाती थी। अत. धार्मिक सिद्धान्तों को साधारण ग्राम–वासिनी जनता तक उन्हीं की भाषा में पहुंचाने का श्रेय संतों को है।[1]

जांभोजी ने अपनी वाणी के द्वारा अपने देश और अपने युग की जनता को, जो अज्ञानान्धकार से आच्छन्न थी, उन्हीं की भाषा में, धार्मिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तों को अत्यन्त स्पष्ट रूप में सामने रखकर उसे कल्याणकारी ज्योति का दर्शन करवाया तथा अपने धर्म और कर्त्तव्य–पालन का सीधा–सरल पाठ पढ़ाया। एतदर्थ स्वामी रामानन्दजी ने लिखा है कि "भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का अर्जुन के प्रति और वैष्णव धर्म का उद्धव के प्रति कथन किया था, उसे कवियों ने कठिन संस्कृत भाषा में प्रचारित किया, जिससे अल्पबुद्धि वालों को विशेष लाभ नहीं हुआ। अतएव जम्भेश्वर रूप भगवान विष्णु ने अच्छे–अच्छे धर्म और शुद्ध नियमों का प्रतिपादन करने वाली वाणी अथवा शब्दों का निरूपण उस देश की भाषा में किया।

जांभोजी की वाणी द्वारा निश्चय ही मरुभूमि के "उंडेनीरे" धोराळी धरती पर उपदेशरूपी गंगा का अवतरण हुआ तथा उसके प्रभाव से जनमानस में नैतिकता की प्रतिष्ठापना हुई जिससे मरुधरा पर स्वर्ग और सतयुग के समान वातावरण का निर्माण हुआ।

जांभोजी की वाणी में वेद और उपनिषदों का सार सगृहीत है। वाणी में भक्ति, ज्ञान एव कर्म का प्रतिपादन हुआ है। प्रकारान्तर से कहा जाय तो जाभोजी की वाणी में वही तत्व हैं जो "प्रस्थानत्रयी", उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता में हैं।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी के अनुसार "जांभोजी का उपदेश विशेषकर ब्रह्मविद्या से संबंध रखता है।[3] श्री परशुराम चतुर्वेदी[4] और डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने[5] उनकी वाणी मे योग–साधना संबधी बातों की प्रचुरता बताते हुये इनका विषय देह–शुद्धि, योगाभ्यास, घटतत्व, काया–सिद्ध आदि बताया है। परन्तु जांभोजी की वाणी में आराधना, ज्ञान और आत्म–समर्पण की भावनायें भी निहित हैं।

जांभोजी का साधना मार्ग ईश्वरवादी था। इस साधना में ईश्वर का निवास मूर्ति मे न होकर घट मे ही था। इसीलिये जांभोजी की वाणी मे बाह्य विधानों का कोई स्थान नहीं है। उन्होने अंत.साधना पर ही जोर दिया है।

---

१. डॉ रामकुमार वर्मा, सत कबीर, प्रस्तावना, पृ ३०।
२ जंभसागर (हिसार)।
३ श्री जम्भदेव–चरित्र भानु, भूमिका।
४ श्री परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ ३७१।
५ डॉ हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ २७५।

जांभोजी ने परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति की और उसी अनुभूति को उन्होंने कभाषा के माध्यम से अपनी वाणी में अभिव्यक्त किया है।

जाभोजी की वाणी युगान्तरकारी रचना है। इसमें धार्मिक तथा सामाजिक ापात रहित विवेचना है। उन्होंने जीवन के गभीर और जटिल प्रश्नों पर ावहारिक रूप से विचार किया है। वाणी में जीवन को नैतिकता प्रदान करने वाले चेता, स्नान, सत्यभाषण, संयम, समानता, एकता, दान, होम, अहिंसा, शील–पालन, द–विवाद का निषेध आदि लोकव्यवहार को सिद्ध करने वाले कल्याणकारी तत्व नुस्यूत हैं।

कुछ विद्वान "संत कविता" उसे मानते हैं जो हिन्दू वर्णाश्रम, आचारवाद, दभाव तथा मुल्लावाद के विरुद्ध अभियान करती है। पर जांभोजी ने इस प्रकार की तिपय वातों का विरोध करते हुए भी आचार, स्नान, यज्ञ, अमावस्या–व्रत, संध्या ादि को प्रधानता दी है। और ऐसा स्वाभाविक भी था क्योंकि जांनोजो संत एव सिद्ध ने के साथ–साथ समाज–सुधारक तथा समाज के नियामक भी थे। अत. उनका नेक पहलुओं से विचार करना वाछित था।

जांभोजी की वाणी में मूर्तिपूजा आदि की खंडनात्मक प्रवृत्ति देखकर कुछ ोग उनकी वाणी को मुस्लिम धर्म से प्रभावित होने का भ्रामक अनुमान लगा बैठते । परन्तु वाणी मे इस्लाम धर्म का निषेधात्मक रूप ही दृष्टिगोचर होता है। जहां स्लाम धर्म में मूर्ति–पूजा एवं अवतारवाद का खडन मिलता है वहां जाभोजी की ाणी में अवतारवाद का पूर्ण मंडन हुआ है।

डॉ. परमात्माशरण के मतानुसार तो जाभोजी तथा उनकी वाणी ने इस्लाम र्म के ससर्ग दोष से समाज की रक्षा करने में महत्तर कार्य किया।[१]

इस्लाम और भारतीय सतो के सबंध में इतिहासवेत्ता श्री अवनीन्द्रकुमार वेद्यालकार का यह अभिमत पठनीय है, "इस्लाम इस देश को अपने रग में क्यों ाहीं रग सका? इसका उत्तर जानना हो तो संतों की वाणियो को पढना चाहिए।" स्पेन से लेकर पेशावर तक इस्लाम की गति अप्रतिहत रही। इसके बाद उसको पग ग पर, कदम–कदम पर बाधाओं, प्रतिरोध और पराजय का भी सामना करना पडा। इस प्रतिरोध शक्ति को जन्म देने का श्रेय इन सतों को ही है।[२]

जांभोजी ने सिकन्दर लोदी जैसे क्रूर तथा संकीर्ण–हृदय सुलतान के शासनकाल मे, परिस्थितियों के अनुकूल, बड़ी बुद्धिमत्ता से धर्मोपदेश दिया। अतः उनकी वाणी को इस्लाम धर्म से प्रभावित मानना सर्वथा असंगत होगा। जैसा कि बताया जा चुका है कि जांभोजी की वाणी वेद–शास्त्रों का ही सार है। उनकी वाणी में वेद और गीता के उल्लेख इस ओर संकेत करते हैं कि वाणी की विचारधारा को

---

१ विश्नोई धर्म वेदोक्त, भूमिका, पृ १०।

२ श्री रामस्नेही संप्रदाय (सं. श्री अक्षयचन्द्र शर्मा) नामक ग्रथ पर प्रदत्त सम्मति पृ३।

जांभोजी की वाणी : प्रभाव

जाभोजी ने अपनी वाणी के बहुत से शब्द नाथ योगियों के प्रसग में कहे है, इससे लगता है वे नाथ पथ से प्रभावित हैं। "उत्तरी भारत की सत–परम्परा" एवं "हिन्दी सत–साहित्य" ग्रंथों में भी उनको नाथ पंथ से प्रभावित माना है।[1] राजस्थान के लोकजीवन और विचार प्रवाह को नाथ पथ ने बहुत दूर तक प्रभावित किया।[2]

जांभोजी की वाणी में तत्वज्ञान, योग–साधना तथा आध्यात्मिक ज्ञान भरा पडा है। अतएव उनकी वाणी की शब्दावली व वर्णनशैली नाथसिद्धों की वाणियों जैसी है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने तो इनके संबध मे यहां तक कह दिया है कि "इनकी वाणी में भी वही है जो गुरु गोरखनाथ की वाणी में है, पर कहने का ढंग उनका है।"[3] परन्तु यह बात सर्वांश में मान्य नहीं हो सकती। वर्णनशैली तथा यौगिक क्रियाओं के अतिरिक्त जो आदेश–उपदेश में वर्णित हुआ है उनमें तथा उन द्वारा प्रवर्तित पथ व पथ के विधान में उस काल में प्रचलित नाथ पथ की विविध मान्यताओं को कोई स्थान नहीं है। जहां "नाथ पंथ" में भैरव, वैताल एवं शक्ति उपासना आदि का भी विधान है, वहां जांभोजी इनके विरोधी हैं। वे एकमात्र विष्णु की आराधना पर ही जोर देते हैं।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ ३७१ और डॉ त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी संत साहित्य, पृ ५८।
संतों पर नाथपंथ का प्रत्येक दृष्टिकोण से व्यापक प्रभाव पडा है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में संतों का नाथपथियो से सीधा सबंध है। सतों की विचारधारा पर उनका अक्षुण्ण प्रभाव पडा है। मेरी तो अपनी धारणा यहा तक है कि सतमत नाथपथ का ही यत्किंचित विकसित रूप है और परिष्कृत रूप है। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति समकक्ष नाथपंथी प्रवृत्ति की अनुगामिनी है। अंतर केवल इतना है कि संतों की विचारधारा अन्य दर्शनो से भी प्रभावित है जिससे उसका स्वरूप नाथपथ से विलक्षण लगने लगता है।"
इस संबंध मे डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी का अभिमत है कि "विश्लेषणात्मक दृष्टि से पता चलेगा कि संतमत के प्रवर्तक कबीर तथा उनके पीछे होने वाले सतों के अधिकाश मंतव्य – यथा शून्यगगन, सुरति का आरोप और वहां परमानन्द का आस्वादन, योग की क्रियायें और उनका अभ्यास, भक्ति में रहस्य, गुरु का गौरव, जात–पांत, तीर्थ–व्रत, आडम्बरपूर्ण विधि–निषेध आदि पाखंडो का निर्दय खंडन आदि उन्हें गोरखनाथ के दल से पैतृक संपत्ति के रूप में मिले थे। विद्वानों द्वारा जब कबीर आदि पर भी नाथ प्रभाव देखा जाता है तब जांभोजी पर भी उनके प्रभाव की बात सोचना स्वाभाविक हो जाता है।

२ डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ २७४।

३. वही, पृ. २७४।

वास्तव मे जांभोजी स्वतः मौलिक चिन्तक थे।

जाभोजी की वाणी मे वैष्णवी विचारधारा के भी दर्शन होते हैं। वाणी में विष्णु आराधना, अवतार–भावना, अहिंसा, अहंकार का त्याग, विनयशीलता, समानता आदि ऐसे तत्व हैं जो पर्याप्त वैष्णवी विचारधारा को प्रकट करने वाले हैं। विश्नोई धर्म–नियमों मे पर्याप्त रूप से वैष्णवी धारा का प्रभाव देखा जा सकता है।

प्रारभ से ही सिद्धों एव संतो का दृष्टिकोण समन्वयमूलक रहा है। इस दृष्टि से विचार करने पर जांभोजी ने उन सभी बातो को स्वीकार किया है जो मानव समुदाय के लिये सुखद एवं लाभप्रद हो सकती थी। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक दृष्टिकोण से जो बात उनके अनुभव में आई और अच्छी लगी, उन्होने उनको मान्यता दी।

वाणी की विषयवस्तु पर मननपूर्वक विचार करने पर उसमे तीन तत्वों का समावश स्पष्ट लक्षित होता है.–(१) मूलतः वैदिक, (२) रचना प्रबंध तथा भाषागत नाथपथी तथा (३) जीवन को स्वच्छ एवं विशिष्ट बनाने वाली वैष्णवी धारा का प्रभाव समान रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रकारान्तर से अग्निपूजा तथा यज्ञ, वैदिक तत्व, योग, शब्दों की वर्णनात्मकता तथा शैली नाथपंथ और अहिंसा, विनयशीलता आदि उत्तम गुण वैष्णवी धारा के हैं। इसी त्रिगुणात्मक धारा में जांभोजी की वाणी प्रवहमान हुई है।

❖❖❖

वाणी के पाठ की प्रामाणिकता

जांभोजी की वाणी के पाठ की प्रामाणिकता क्या है? इस संबंध मे यहां थोडा विचार करना अवांछित नहीं होगा। भाषा विज्ञान के अनुसार अनेक पीढियों में उच्चारण भेद हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु कुछ ऐसे भी विशेष कारण होते हैं जिनसे किसी विशिष्ट वर्ग की वाणी मे सदैव एकरूपता बनी रहती है। उदाहरणार्थ सिखों के आदि गुरु ग्रंथ साहब में गुरुओं की वाणी देवरूप पूज्य होने के कारण उसके पाठ का स्पर्श करने का साहस किसी को नहीं होता।

ऐसे प्रसंगों में धर्मावलम्बियों का विश्वास होता है कि महान पुरुषों के मुख से नि सृत वाणी दिव्य एवं मत्रवत् होती है। उसके अपरिवर्तित रूप में ही अमोघ शक्ति रहती है और उसके यथावत् उच्चारण तथा पठन से पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। अतएव इन कारणो से सगठित संप्रदायों में पूज्य गुरुओं की वाणी में किसी प्रकार का परिवर्तन करना बडा भारी अपराध समझा जाता है।

वाणी की भाषा और भावों को रूपान्तरित होने से बचाने के लिये दूसरा कारण संप्रदायों की "संघ" और "संगीत" की आयोजना भी पर्याप्त होती है।[1]

ऐसे विश्वासो, धारणाओं और आयोजनो के फलस्वरूप वाणी अपने मूल स्वरूप एवं कलेवर को अपरिवर्तित अवस्था में रखने की क्षमता रख सकती है।

विश्नोई पंथ में वाणी के पाठ के संबंध मे "गुरु ग्रथ साहब" की भाति सदैव से ही दृढ आस्था रही है। "विश्नोई पंथ" मे वाणी संरक्षण का अनिवार्य नियम, सघ और संगीत की आयोजना सदैव से रही है। जागरण, यज्ञ, मेला, सम्मेलनों आदि पर वाणी के समवेत गान की पद्धति रही है। ऐसे अवसरों पर समवेत गान में वाणी का परिवर्तित पाठ परस्पर खटकने लगता है तथा भविष्य में गलत उच्चारण करने वाले को प्रतिबंधित कर दिया जाता है। अत. समवेत गान पद्धति, समान स्वरालाप तथा वाणी की विशिष्ट गेयता उसके पाठ की शुद्धता के हेतु माने जा सकते हैं। इस बात का अनुमान हम इस बात से भी लगा सकते हैं कि यदि वाणी के पाठ मे सहज या उपायेन पाठ–परिवर्तन की चेष्टा की गई होती तो निश्चय ही वाणी मे यथास्थल प्रयुक्त अन्य प्रांतीय भाषाओं के शब्द, प्रयोग आदि का राजस्थानियो के हाथों में पडकर राजस्थानीकरण हो जाता तथा अन्य प्रांत वालो के हाथों में पडकर कोई अन्य रूप। परन्तु ऐसा वाणी मे नहीं हुआ है। आज भी वाणी के वे रूप मौखिक परम्परा तथा प्रकाशित संस्करणो में यथावत् दृष्टिगोचर होते हैं।

वाणी के पाठ की प्रामाणिकता परखने के उपायो के लिये संपूर्ण "जांभाणी साहित्य" हमारे सामने होना चाहिये। उसके अध्ययन से सहज ही वाणी के पाठ की प्रामाणिकता परखी जा सकती है। वाणी में प्रयुक्त शब्दरूप, संबोधन, भाव–गुम्फन

---

१ डॉ. रामकुमार वर्मा, सत कबीर, प्रस्तावना, पृ १६।

तथा जिस प्रकार उनकी अभिव्यक्ति हुई है, उन्हीं की पुनरावृत्ति, अनुवाचन एवं विशद विवेचन विश्नोई पथ के परवर्ती संत कवियो की रचनाओं मे देखे जा सकते हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनसे तुलना करने पर हमें वाणी के पाठ एवं भावों की शुद्धता का ज्ञान होता है –

जांभाजी की वाणी	विश्नोई पंथ के परवर्ती संतों की वाणी
मेरे माय न बाप (शब्द ६७)	न तुम माय न बाप (जंभ. द्वादश प्र)
हिरदै मुक्ता कमल संतोषी (शब्द १५)	हिरदै कवल हरख्यो जपौ (जंभ. द्वादश प्र.)
मेरे गुरु जो दीनी शिक्षा सर्व आलिंगण फेरी दीक्षा(शब्द ६१)	सर्व धर्म संसार प्रगट कियो परम गुरु। पाप धर्म नवेड, न्यारा किया गुरु सुगरनै।
धर्म आचारे शीले संजमे (शब्द २२)	कारण किरिया होम जप, तप सुपह सुमारग दान आन भ्रम कुथान, अतरा सब निवार
शुचि स्नान संजमे चालो पाणी देह पखाली शौच स्नान करो क्यो नाहीं	साच शील सिनान
विष्णु विष्णु तू भणरे प्राणी विष्णु भणता अनंत गुणा (शब्द ६७)	विष्णु जाप रु विष्णु पूजा सरब धर्म संसार
जबू दीप अे सोच र आयो (शब्द २८)	जागो जागो जंबू दीप हुई छै आवाज सही सोदागर जंभराय आवियो, (जंभसार साखी, पृ. २२)
भाग परापति सारु (शब्द ३३)	भाग परापति पावियो (जंभसार साखी, पृ. २१)
जिन चोहचक (शब्द ८५)	चोचक हुई आवाज (जभसार)
बारा काजै पडो बिछोहो (शब्द)	जन बाडा सू बीछड्या, तहा करणी प्रतिपाले (जभसार साखी पृ. ४१)
ऊंडे नीरे अवतार लियो (शब्द ६७)	जा थलियां देवजी ओतर्या, जां थलियां छै गाढो नीर (जभसार साखी, ४६)
नुगरा के मन भयो अंधारो, सुगरा सूर उगाणो (शब्द ६५)	भक्तां रे मन चांदणों दिलमां उगो सूर (बील्होजी)
आसन छोड सुखासन बैठो (शब्द ६६)	आसन मांड बीच गंग जमना (बील्होजी)

इन संक्षिप्त उदाहरणो से वाणी के पाठ के संबंध मे यह विचार स्थिर किया जा सकता है कि वाणी के पाठ परिवर्तन में बाह्य आक्षेप नहीं हुए हैं। यह आगे बताया गया है कि विश्नोई पथ मे जांभोजी की वाणी "पंचमवेद" रूप मानी जाती है और इसका प्रत्येक "शब्द" मंत्र स्वरूप। वाणी की एकरुपता का यही सबसे बडा कारण माना जा सकता है।

वाणी का आदि उद्गान : परम्परा

संतों के लिये यह बात सर्वथा निर्णीत है कि संत जन कवि-कर्म निर्वाह की कोई परवाह नहीं करते। उनका एकमात्र लक्ष्य अपनी सदुपदेशनी वाणी द्वारा मानव-निर्माण का एकान्त प्रयत्न है। इस सिद्धान्त के अनुसार संत कवियों का साधक और उपदेशक रूप कवि के रूप से अधिक मधुर एवं स्वाभाविक प्रकट हुआ है। सहज भावों की स्वाभाविक शैली में अभिव्यक्ति ही उनका काव्यादर्श था। रचना तो उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति का साधन मात्र थी।

यही बात जांभोजी के लिये सर्वथा समीचीन प्रतीत होती है कि वे एकमात्र कवि नहीं, धर्म के प्रतिष्ठापक हैं। जन कल्याण के लिये समाज के नियामक हैं। तदपि राजस्थानी संत-साहित्य के निर्माताओं में उनका स्थान सर्वोपरि है। उस सर्वोपरिता के निम्न कारण माने जा सकते हैं-

(१) जांभोजी राजस्थानी संत साहित्य के आदि निर्माता हैं। सिद्ध जसनाथजी के अतिरिक्त, जो इनके समकालीन थे, इस क्षेत्र में जांभोजी से पूर्व कोई संत व संतवाणी का उद्गाता नहीं हुआ।

(२) इतिहास, ख्यात आदि में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता और न ही लोकश्रुति में प्रचलित किसी ऐतिह्य या कथानक से ऐसा ज्ञात होता है कि इन से पूर्व कोई महत् संत यहां हुआ हो। इस प्रसंग में कबीर साहब के निम्नोद्धृत पद की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं:-

> "बागड़ देश लूवन का घर है,
> तहां जिन जाई, दाझन को डर है (टेक)
> सब जग देखौं कोई न धीरा, परस धूरि कहत अबीरा
> न तहां सरवर न तहां पाणी, न तहां सतगुरु साधू वाणी"

इस पद का चाहे कोई अध्यात्मपरक अर्थ करे, परन्तु मुझे इस पद से ऐसी वस्तु-स्थिति का अनुभव होता है कि जिस समय कबीरजी इस प्रदेश में आये थे, उस समय यहां न कोई समाज को सत्य का मार्ग बताने वाला सतगुरु था और न ही आत्मोन्मुख बनाने वाली साधुवाणी ही प्रचलित थी। अत इस प्रदेश में संतवाणी का सर्वप्रथम उद्घोष करने वाले जांभोजी ही थे।

जांभोजी ने वि.सं. १५४२ से अपने अंतिम समय, १५९३ तक के ५१ वर्षों में "शब्दवाणी" की रचना की। वील्होजी ने अपने छप्पय में जांभोजी के ५१ वर्ष "शब्दवाणी" कथन किये जाने का उल्लेख किया है।[1]

उन्होंने अपना प्रथम शब्द "गुरु चीन्हो गुरु चीन्ह पुरोहित" पुरोहित के प्रति

---

१. देखिये-जीवनी खंड, आविर्भाव के प्रसंग मे उद्धृत छप्पय।

कथन किया। जीवनी प्रसंग मे बताया जा चुका है कि यह पुरोहित अपनी मंत्रादि साधना के द्वारा जाभोजी की मौनावस्था भंग करवाने आया था। इसी प्रसंग मे प्रथम "गुरु चीन्हो" शब्द के साथ उनकी वाणी सर्वप्रथम मुखरित हुई।

जाभोजी के मुख से यही "भलभल" उच्चरित वाणी उनके सहवासी "साल्हिया", "साथरिया", "सुगणा" आदि अधिकारी जनो के कठों मे निरतर मुखरित होती रही। इसी गुरुवाणी को उनके निकटवर्ती एव श्रद्धालु भक्त शालू, आलम, आसना आदि गायक "गायणा" अपने संगीत के मीठे स्वरों में गा–गाकर प्रचारित–प्रसारित करते रहे। समीपवर्ती अनेकानेक जनों ने वाणी को अपने कंठो में प्रतिष्ठित कर परमानन्द का अनुभव किया, जिनमें उनके शिष्य रेडोजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

जाभोजी का अपने ५१ वर्ष के सुदीर्घ काल मे रचना परिमाण कितना रहा, इस सबंध मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संभवतः उन्होने उपदेशात्मक विस्तृत साहित्य का निर्माण किया होगा[1] तथा मुख परम्परा के अतिरिक्त साहित्य–संरक्षण के लिये पत्राकन पद्धति का भी अनुसरण उनके द्वारा किया गया होगा।

एक धारणा के अनुसार जांभोजी के समाधि–स्थल "मुकाम–मदिर" पर किसी कारणवश मुसलमानों का अधिकार हो जाने से उन्होने लिखितरूप विपुल साहित्य सामग्री को नष्ट कर दिया। श्री चन्द्रदान चारण ने "विश्नोई पंथ" नाम के अपने एक लेख में उल्लेख किया है कि, "विश्नोई पंथ में काफी वाणी–साहित्य था पर मुस्लिम काल मे तथा संरक्षण के अभाव में बहुत सा नष्ट हो गया।[2] जिसमें जाभोजी की कितनी रचनायें थी, यह नहीं कहा जा सकता। संप्रति जांभोजी के १२० शब्द मिलते हैं, जो मुस्लिम काल मे जांभोजी के शिष्य रेडोजी को मुखस्थ होने के कारण बच पाये।

जंभसार के अनुसार रेडोजी के यह नित्य का नियम था कि वे एकसौ बीस शब्दों का प्रतिदिन कंठस्थ पाठ करते थे–

रेडाजी के इह नितनेमा, बीसासौ शब्दनि सू प्रेमा।

यही एकसौ बीस शब्द बील्होजी को अपने गुरु (नाथोजी) के गुरु रेडोजी से उत्तराधिकार मे प्राप्त हुए–

रेडैजी कै कंठ जो, रहे शब्द सौ बीस
सुण बील्हो प्रसन भयो, सोला जोजन दीस।।

---

१ जंभसार (द्वादश प्रकरण) और जंभसागर (हिसार) के उल्लेखानुसार जांभोजी ने शब्दों के अतिरिक्त ज्ञानचरी नाम का कोई ग्रंथ लिखा था। इस संबंध में बील्होजी का यह दोहा द्रष्टव्य है–

ग्यानचरी पूर्ण भई, कही ,आप गुरुदेव।
फिर बील्ह वर्णन करि, संता पायो भेव।।

२ राजस्थान भारती, भाग ७, अंक ४।

यही एकसौ बीस शब्द रेडोजी की स्मृति से आज पर्यन्त प्रामाणिक माने जाते रहे हैं। ये एकसौ बीस शब्द जांभोजी की बीज रूप रचना होने के कारण रेडोजी को प्रिय और कंठस्थ थे। यही एकसौ बीस शब्द मौखिक परम्परा मे अथवा लेखबद्ध होते हुए हमारे सामने हैं जो आज मानव–मानव में अपनी समुज्ज्वलता विकीर्णित कर रहे हैं। इन्हीं १२० शब्दों का विश्नाई साधु, "थापन" एव गायणा प्रारंभ से ही आज पर्यन्त पाठ, इनके द्वारा धार्मिक विधियों का संपादन तथा गायन–वाचन करते आ रहे हैं। विश्नोई समाज के अनेकश. व्यक्तियों को आज भी वाणी मुखरथ है। जो अक्षरज्ञान से शून्य हैं वे भी श्रद्धायुक्त हो, वाणी का प्रतिदिन कंठस्थ पाठ करते हैं। वाणी पाठ की यह परम्परा विश्नोई पंथ की अपनी विशेषता है।

इसके अतिरिक्त वाणी पाठ के समवेत गान के साथ विश्नोई पंथ में प्रारंभ से ही सहस्रों मन घृत की आहुतियों वाले यज्ञ संपादित होते आये हैं और आज भी यह परम्परा सजीव है।

विश्नोई पंथ मे जांभोजी की वाणी को "छत्रपति शब्द वाणी" तथा परवर्ती साहित्य को "जाभाणियों की वाणी" के नाम से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार परवर्ती अैतिह्य को "जांभाणी बातां" कहा जाता है।

विश्नोई पंथ में छत्रपति शब्द वाणी वेद रूप मानी जाती है। इसे पंथ में "पांचवां वेद" के नाम से प्रतिष्ठित किया जाता है और यही कारण है कि अनुयायियों द्वारा वाणी का पाठ वेदोच्चारण की भांति "उत्तम ध्वनि" के साथ किया जाता है।

जांभोजी ने जिस पद्यमय एवं लय–गति–युक्त वाणी में उपदेश दिया है, वह पद्याकार वाणी "शब्द" कहलाती है। संत साहित्य में "शब्द" की अपरिमित महिमा है और उसके व्यापक अर्थ हैं।[1] "शब्द" को बीज, ब्रह्म, वेद और शास्त्र का रूप माना गया है।

"शब्द" का सामान्य अर्थ "ध्वनि" है पर आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मोपदेश का नाम "शब्द" है।[2] नाथपंथ की वाणी "शब्द" अथवा "सबदियां" कहलाती हैं। संतो की रचनाओं में भी "शब्द" या "सब्द" उनका विशिष्ट भाग है। जांभोजी की रचनायें "शब्दों" में हुई हैं।

---

१. सबद ही ताला सबद ही कूची, सबद ही सबद जगाया।
सबद ही सबद सू परिचय हुआ, सबद ही सबद समाया। गो.वा पृ. ८।
सबद विंदौं अवधू सबद बिंदौं, सबदे सीझत काया।
निनानवे कोडि राजा मस्तक मुंडायले परजा का अत न पाया। गो. वा पृ. ४५।
सति का सबद विचारि – गो वा. पृ. ६८। और
शब्दरूप सतलोक है, शब्दरूप परब्रह्म।
शब्दरूप सब हस है, ताहि कूं प्रणम्य।।
सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देय।
जा सब्दे साहिब मिलैं, सोई सबद गहि लेय।।

२. आत्मोपदेश शब्द। गोतम, न्यायदर्शन, प्रथम अ सातवा सूत्र।

यदि संतों की वाणी में कहा जाय तो जांभोजी के "शब्द" बहुत ऊंचे घाट की रचना है। यदि गहराई में पहुंचा जाय तो जांभोजी के शब्द मंत्र-द्रष्टा ऋषियों की भांति, आर्य दृष्टि से प्रत्यक्षीकृत सत्य के भंडार हैं।

स्वयं जांभोजी ने जन-जन को उनके मुखारविंद से नि.सृत वाणी का कल्याणप्रद उपदेश सुनने का आग्रह किया है। उदाहरणार्थ "मेरा शब्द खोजो"[१], "सुरमा लेणा झींणा शब्द"[२], "मोरे सहजे सुंदर लोतर वाणी"[३] "अइयालो अपरंपर वाणी"[४] आदि प्रयोगों में जांभोजी ने वाणी की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। एक स्थल पर उन्होंने अपने "शब्दों" को गुणाकारं, गुणासारं और उन्हें अपार"[५] कहकर उनकी शिक्षापूर्ण तथा ज्ञानमंडित गहराइयों की ओर संकेत किया है। एक दूसरे स्थल पर उन्होंने "गुरु के शब्द असंख्या प्रबोधी"[६] कहकर उन्हें अशिक्षित को भी प्रबोधित करने वाला बतलाया है तथा उन्हें अनन्त भी कहा है।

अपनी वाणी के संबंध में जांभोजी के उक्त विचार अक्षरशः सत्य हैं और उपादेय हैं। जिज्ञासु तथा गुणग्राही के लिये वाणी को यह गौरव प्रदान करना श्रेयस्कर ही है।

जांभोजी ने जिस प्रकार अपनी वाणी व शब्दों के महत्व की ओर निर्देश किया है, उसी प्रकार उनके शिष्यों एव भक्तों ने भी अपने आदि गुरु की वेद रूप वाणी के सबंध में अपने सुदर उद्‌गार प्रकट किये हैं। एतद्‌विषयक सुरजनदासजी का छप्पय द्रष्टव्य है:-

प्रथम वंदि गुरु चरन, भरम भव भंजन आये।
सहज शील संतोष, मोक्षगति पंथ बताये।
आदि धर्म अहिनाण, बाकी सब हीन बताये।
छूटे सबहि विकार, सार जिन रहस चलाये।
उपाख्यान वेद अद्‌भुत कथा, त्रिगुण जीव तारण तरण।
झणकत वेद झींणा शब्द, सुरजन कवित शिंभु शरण।।[७]

सुरजनदासजी ने अपनी एक अन्य साखी में भी जांभोजी तथा उनकी वाणी के महत्व का सुंदर वर्णन किया है.-[८]

(क) बरतियो धनि धनिकार, धन्य मुहूरत धन्य घड़ी।
झींणा शब्द झणकार जोजन वाणी सुहावणी।
जोजन वाणी सुहावणी जे सकल धर्म निवास।
\+ \+ \+ \+ \+
(ख) गुरु कथियो केवल ज्ञान, सुक्रत कर पहुंता निज घरां।
(ग) प्रगट्यो कृष्ण मुरार वैर्णे विष्णु वखाणियो करसी पूर्ण वाच।

---

१. जाभोजी की वाणी शब्द १४। २. वही, शब्द १५। ३ वही, शब्द १७। ४ वही, शब्द ५। ५ वही, शब्द २१। ६ वही, शब्द २८। ७ सुरजनदासजी, जभसार, पृ १६। ८ जंभसार साखी, (सकलनकर्त्ता : श्री रामदास) पृ २०-२१।

शब्द श्याम पिछाणियों.......... जे सुरां मेलण काज।

वाणी के संबंध में एक दूसरे भक्त के उद्‌गार हैं:—

श्री वायक सांभल प्राणी, शब्दां सरीखो सार म्हारे सतगुरु आप बखाणिया।[1]

शब्दों की महिमा एवं माहात्म्य के विषय में "जमसार" से निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया जा सकता है:—

जंभ गुरु है रूप अरूपा, अगीतत सोई शब्द सरूपा।
शब्द गयो जमना के पारा, मानों वयन सुध भये सारा।
गंगा पार शब्द की वाजा, मान्यौं शब्द भये ताहि काजा।
देश देश गये शब्द शरीरा, फाटेउ जीव खीर जिमीं नीरा।
एक शब्द अनेक बने हैं, सोई स्वरूप गुरु जंभ ठने हैं।[2]

ऊदोदासजी ने जांभोजी तथा उनकी वाणी के संबंध में अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं—

(क) मानुष रूपी विष्णु आयो, गुरु वोलै छै अमृत वाणियां।[3]
(ख) शब्द रूप गुरु सब वासा, ज्योति स्वरूपी धर्म नियासा।
तत्वज्ञान दियो संसार, सतगुरु बंदों बारंबार।
(ग) कांयरे गाफल पांतर्‌यो, शब्द गुरु का मान।
गुरु का शब्द न मानही अतरा दोरे जाय।[4]

शब्दों की महत्ता के संबंध में एक और उदाहरण देखिये जो जाभोजी एवं साथरियों के बीच वार्तालाप का है:—

एक समय हर्षाय देवजी बात चलाई।
कनोज कालपी समद पार की कहि संभलाई।
कह साथरिया देव थे कद गया?
म्हे दीठा जैसलमेर साथरी पय थयां।
देव के आई इलोल, शब्द तब ऊचरा।
हरि हां शब्द हमारा रूप, शब्द सब विश्वकरा।[5]

स्वयं रचयिता द्वारा अपनी रचना के संबंध में महिमापूर्ण कथन तथा परवर्ती संतों द्वारा वाणी के प्रति इतना निष्ठावान होना, वाणी के लिये बहुत बडे महत्व की बात है।

---

१. जमसार साखी (सकलनकर्त्ता : श्री रामदास) पृ ६।
२. जंभसार, सप्तम प्रकरण, पृ १६३। ३. जंभसार साखी, पृ ७।
४. जंभसार साखी पृ. ४९। ५. स्वामी रामानन्दजी, जभसागर (हिसार) पृ. ३१९।

वाणी का काव्यपक्ष

मध्यकालीन संतकाव्य को विद्वानों ने धार्मिक काव्य के अंतर्गत रखा है। जांभोजी की वाणी भी एक धार्मिक काव्य है। वाणी में परमात्मा के स्वरूप, अवतार भावना अथवा कर्ममार्ग, योगमार्ग, भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, सद्‌गुरु और नाम जप आदि का विशद निरूपण प्राप्त होता है, अतएव यह विशुद्ध धार्मिक काव्य है। यह भिन्न बात है कि उसमें सामाजिक परिस्थितियों की ओर भी संकेत मिल जाता है।

जांभोजी की वाणी प्रबन्ध काव्य नहीं है। वह मुक्तक व गीत के अंतर्गत आती है। मुक्तक ऐसी रचना को कहा गया है जिसमें निहित काव्यरस का आस्वादन, बिना उनके पहले व पीछे के पद्यों की अपेक्षा लिये भी किया जा सके। इसी प्रकार गीत वे कहलाते हैं जिनकी रचना स्वर, लय एवं ताल को भी ध्यान में रखकर की गई होती है *और इसी कारण वह गेय भी हुआ करती है।*[1]

जांभोजी की वाणी में उसकी गेयता, गान–पद्धति और स्वर–संधान का निरालापन और मौलिकता दर्शनीय है।

वाणी का विषय विभाजन

जाभोजी की वाणी के १२० शब्दों को विषय–बोध के लिये निम्न चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(१) आत्मपरिचयात्मक शब्द

(२) उपदेशात्मक (निषेधात्मक उपदेश वाले) शब्द

(३) पाखंड विखंडनात्मक और

(४) योगपरक शब्द।

(१) आत्मपरिचयात्मक शब्दो में २, ३, ४, ५, ६, १७, १६, २६, ४०, ४२, ४३, ४४, ६३, ६७, ७२, ७३, ८२, ८८, १०५, १११, ११५, और ११८ वाले शब्द आते हैं। इन शब्दों में जांभोजी ने यथाप्रसग अपना अलौकिकतापूर्ण, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक परिचय दिया है। पर इन शब्दो मे वर्णित विषय, व्यक्तिवाचक न होकर समष्टि रूप से, संपूर्ण आध्यात्मिक उच्च भूमिका को ही प्रकट करने वाले हैं।

(२) उपदेशात्मक शब्दो, जिनमे हमने निषेधात्मक उपदेश वाले शब्द भी शामिल कर लिये हैं, १, ७, ८, १०, १२, १३, १४, १५, १६, १८, २०, २१, २२, २३, २५, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३८, ३६, ४१, ४५, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ६०, ६१, ६२, ६४, ६५, ६६, ६८, ६९, ७०, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८३, ८५, ८६, ८७, ९३, ९५, ९६, ९७, ९८, १०२, १०३, १०४, १०६, १०७, ११०,

---

१. श्री परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ. १८३।

११२, ११३, और ११४ के शब्दों की गणना की जा सकती है। इन शब्दों में जन –जन के कल्याण की उद्‌भावना हुई है। संयम, आत्म–साधना, आराधना, दान–पुण्य, उपकार, विनयशीलता, शीलधर्म का पालन, सदाचार के प्रति अनुराग, उसका सावधानीपूर्वक पालन और स्नान शुचिता आदि जीवन की नैतिक बातों का उपदेश दिया गया है तथा प्राणी को बुरे कर्म करने से मना किया गया है।

(३) पाखंड–विखंडनात्मक शब्दों में हम निम्न संख्या वाले शब्दों को ले सकते हैं.– ६, ११, २६, ३६, ३७, ४७, ४८, ५०, ७१, ८१, ८४, १००, १०६, ११६, और ११७। इन शब्दों में उन सभी बुराइयों, बाह्य चारों एवं रूढियों का विरोध किया है आ जो उस समय जोरों से प्रचलित थीं।

(४) योगपरक शब्दों की श्रेणी में हम निम्न संख्या वाले शब्दों को रख सकते हैं– २४, ४६, ५१, ५२, ५६, ८६, ६१, ६६, १०१ और १०८। जांभोजी ने अपने योगपरक शब्दों में अपनी योगानुभूति का सुंदर वर्णन किया है और उस काल के तथाकथित योगियों के सामने योग का परमोज्ज्वल आदर्श रखा है।

योगपरक शब्दों में कुंडली–शोधन, नाडी–शोधन, काया–शोधन, नादानुसंधान, अष्टांगयोग, हठयोग, सहजयोग, वायुसाधना, अजपाजाप आदि विषयों का समावेश पाया जाता है।

४६, ६०, ६२, ६४ और १२० सख्यक शब्द भी उक्त विषयो को लेकर जांभोजी के आत्मानुभव को निरूपित करते हैं। शब्दों का उक्त वर्गीकरण अंतिम नहीं है। यह स्थूल वर्गीकरण ही है। सूक्ष्म वर्गीकरण की इन शब्दों में काफी गुंजाइश है।

मुहावरे, दृष्टान्त एवं उदाहरण

जांभोजी की वाणी में स्थान–स्थान पर मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियों, दृष्टान्तों एवं उदाहरणों के सुंदर तथा प्रभावशाली प्रयोग हुए हैं। जिससे उनकी भाषा की चमत्कारिकता तथा व्यावहारिकता बढ गई है और श्रोताओं के लिये विषयगत तत्व समझने में वाणी सहज हो गई है। उदाहरणार्थ मुहावरे द्रष्टव्य हैं–

धूवां बखाणत, आला सूखा मेल्ह नाही, काचै पिंड, अकाज चलावै, अजिया–सजिया, जीया–जूणी, कुडी–भरथार, तुरी तुखारो, हाट–पटण (शब्द संख्या १, २, ३)। खरतर को पतियायो, हिवकी वेला हिव न जाग्यो, छंदे कहा तो बहुता भावै, ठाडी वेला ठार न जाग्यो, ताती वेलां तायो, विंवै वेला, परशुराम के अर्थ न मुवा, सूल चुभीजै करक दुहेली, पढ सुण रहिया खाली, दिल साबत हज काबो नेड़ो, सीने सरवर करो बंदगी, घामकटे क्या हुइयो, भूंय भारी ले भारूं, ताती वेलां ताव न जाग्यो (शब्द संख्या ७, ८, ६, ११, १३), सूतै सास नसायो (शब्द संख्या २०), सींचो काय कुमूलू (श. सं. १५), सार असारूं (श. सं. २१), कालर करसण कीयो (श. सं. २२), मरणै बहु उपकार करै (श सं. २३), आसन वैसण कूड कपटण (श. सं. २४), हंस उडाणों पंथ विलम्यो (श. सं. २५), हुई का फल लीयो (श. सं. २७), मीन का पंथ मीन ही जाणै (श. सं २७), सात सायर म्हे कुरलै कीयों (श. सं. २७), बूठा है जहां

वाहिये (श. सं. ३०), कण काजै खड़गाहिये (श. स. ३०), फिर फिर जोया डालूं (श. सं. ३१), कवन रहा संसारू (श. सं. ३३), फोक प्राणी, भरमे भूला (श. स. ३३), अहनिश आव घटती जावै (श सं. ५६), दुखिया है जे सुपिया होयसी (श. सं. ६३), सापुरषा की लच्छ फुलूं, थोथा वाजरधाणो (श. सं. ६६), खल पण सूंघी बिकाणो, थल सर न कर निवांणो, नीर गये छीलर कांय सोधो (श. सं. ७१), उत्तम संग सुसंगू (श. सं. ३६), नुगरे थिती न जाणी (श. सं. ४१), म्हे अटला अटलूं (श. सं. ५१), रवी ऊगा जब उल्लू अंधा, भीतर कोरा (श. सं १०६), आपे खता कमाणी (श. सं. ११०), चांदणैथकै अंधेरै क्यो चालो (श. सं. ११४), मागर मणियां हाथ वसाहो (शब्द सं. ११४), हीरा हाथ उसाटो (श. सं. ११४) आदि।

कहावतें व लोकोक्तियां:-

जिहि हाकणडी बलद ज्यूं हाकै, ना लाहे की आरुं (३), काठ संगीण लोहा नीर तरीलूं (१६), कैल करंता मोरा मोरी रोवत, ज्यों–ज्यों पगां दिखाही (१८) घणतणजीभ्या को गुण नाहीं (२६) ठोठ गुरु वृपली पती नारी जद बंकै जद बीरूं, मच्छी मच्छ फिरैं जल भीतर तिहिं का माघ न जोयवा, सिध का पंथ कोई साधु जाणत (२७) सुकरत साघ सगाई चालै (३७) जो कुछ कीजे मरणै पहलै मत भलके मरजाइये (३०) कुपात्र को दानजु दियो जाणै रैन अंधेरी चोरजु लियो (५६) दान सुपति बीज, सुखेते (५६) थोडे माहिं थोडे रो दीजै होते नाहन कीजे (५६) हाथ न धोवे पग न पखालै, नाहर सिंह नर काजूं (८३) घट ऊधै बरखत बहु मेहा नीर थयो पण ठालूं (५७) तेऊ पार पहुचा नाहीं, ताकी धोती रही असमानी (५७) रात पडंतां पाला भी जाग्या दिवस तपता सूरू (६३) कण विण कूकस रस बिन बाकस बिन किरिया परिवार किसो (६८–७७) तेल लीयो खल चोयै जोगी (७१–६५) कण घातै धुण हाणी (७१) जिहिं ठूठडिये पान न होता, ते क्यूं चाहत भूलू (७७) घर आगो दूत गोवल वासो कूडी आधो चारी (८६) झूंठी काया उपज विषणत (४१) लाछ भुई गिरहायत झूरै (४३) मौर झडै कृषाण भी झूरै (४३) हस्ती चढता गेवर गुडतां सुणही सुणहां भूंकत कार्यो (५५) भीगा है पण भेद्या नाहीं पाणी माह पखाणों (६८) जे कोई आवै हो हो करता आप जै हुइये पाणी (६८) आक बखाणैं थंदे मेवै (१०६)।

दृष्टांत एवं उदाहरण के प्रयोग:-

नागड भांगड भूला महियल पवणा झौलै बीखर जैला धुंवर तणा जै लोरूं (२५) नदिये नीर न छीलर पाणी, धूंवर तणा जे मेहूँ (२५) पवणा झोलै बीखर जैलां गैण विलबी खैंहू (२५) नुगरा उमग्या काठ पखाणो (२७) बहु रंग न राचै काली ऊंन कुजीऊँ (२७) अमृत का फल एक मन रहिवा (२७) रिण छाणै ज्यूं बीखर जैला तातै मेरु न तेरूं (६४) नील मध्ये कुचील करवा, साध संगिणी थूलू (६६) जाणै कै भाजी कपिला गाई (६७) अरथूं गरथूं साहण थाटू धूंवे का लह लोर जिसो (६८) मुग्धा सेती यूं टल चालो, ज्यूं खडकै पात धनूरी (७६) जिहि तुल भूला पाहण तौले, तिहि तुल तोल न हीरू (४३) भलिया हो सो भली बुध आवै बुरिया बुरी कमावै (१२०)।

इनके अतिरिक्त जांभोजी की वाणी में कुछ इस प्रकार की वाक्य पंक्तियां भी व्यवहृत हुई हैं जो सूत्रात्मक उपदेशप्रद वाक्यावली हैं:—जांभा गोरख गुरु अपारा (६४) थे तक जाणो तक पीड न जाणो (११) कारण खोटा करतव हीणा (११) अलख न लख्यो खलक पिछाण्यो (११) भावै जाण म जाण प्राणी जोलै का रिप जवरा (२१) हरि पर हरि की आण न मानी (३१) देवा सेवा टेव न जाणी (३१) कण बिन कूकस कांय लेणा (६४) जागो जोवो जोत न खावो (७३) घडै ऊंधै बरसत बहु मेहा, तिहिमां कृष्ण चरित बिन पड्यो न पडसी पाणी (४२) नाम विष्णु के मुसकल घातै ते काफर शैतानी (५०) गोवल वास कमायलै जीवडा (५३) कांय झंख्यो तैं आल प्राणी। सुर नर तणी सवेरूं (५४ दूनी न बंधै मेरू (२५) जो चित होता सो चित नांही (३३)।

रूपकः-

यद्यपि जाभोजी की रचना का मूल्यांकन कविता की दृष्टि से नहीं, विचार की दृष्टि से है, तदपि उनकी वाणी में यत्र–तत्र काव्योचित गुण देखे जा सकते हैं जो उनकी वाणी में स्वत. प्रसूत हुए हैं। रूपक के कुछ उदाहरण देखिये—

काया—कंथा, सींगी श्वांस (४७) हरि कंकहडी मडप मैडी (७३) रतन काया (३३) मन ही मुद्रा, तन ही कंथा (४६) ज्ञान षडगूं (५२) काया कसोटी, मन जोगूंटो (५६) कुप ही शैतान, शैतान की कुबध्यान खेती (६६) संसार बरतण (१) काया गढ (५) काया कोट पवन कुटवाली, कुकर्म कुफल वनायो। माया जाल भरम का सकल, बहु जग रहिया छायो (६२) तन गूदड़िया (११५) आदि।

प्रकृति चित्रणः-

जांमोजी की वाणी में कई स्थलों पर प्रकृति का भी स्वामाविक तथा सुंदर चित्रण हुआ है:—

बोलस आम तणा लह लोरू (२५) मच्छी मच्छ फिरै जल भीतर (२७) बिन रेणायर हीरै नीरै (३१) नग न सीयै तके न खोला नालूं (३१) मोरे धरती ध्यान वनस्पति वासो (२६) ओजूं मंडल छायो (२६) फुरण फुहारे कृष्णी माया, घण बरसता सरवर नीरे (३४) रात पड़ंता पाला भी जाग्या, दिवस तपता सूरू (६३) राखण सतां तो पडदै राखां, ज्यूं दाहै पान बणासपती (६८) अरुण विवांणे कृष्णी माया, घण बरणंता म्हे अगिण गिणूं फुहारूं (६७)।

प्रतीक योजनाः-

जांभोजी की वाणी में प्रतीक योजना भी यत्र—तत्र दर्शनीय है। उदाहरणार्थ—

(१) भल बाहीलो भल बीजीलो, पवणा बाड लगाई, (२) जीव कै काजै खडो जे खेती, (३) दैतीनी शैतानी फिरैला, तेरी मत मोरा चरजाई, (४) बाय दबाय न जाई, (५) तहां न हिरणी न तहां हिरणा, (६) न तहां मोरा न तहां मोरी, (७) जो आराध्यो राव युधिष्ठिर सो आराधो रे भाई (७०)। (८) ले कूची दरवान बुलावो, नीर छलै ज्यों पारी, पारी बिनसै नीर ढुलैलो, ले काया वासंदर होमो, ममता हस्ती। काया पत नगरी मन पत राजा पंचात्मा परिवारूं (६१)।

वाणी मे यथास्थल प्रयुक्त "मावस" (अमावस्या), "संकराति", "नवग्रह", "गगा", उसका निर्मल पानी, निर्मल घाट और उस पर धोबी का निर्मल पाट अत्युत्तम प्रतीक योजना के उदाहरण हैं।

भाषाः-

जाभोजी की वाणी का भाषा-स्वरूप प्रधानत. राजस्थानी-मारवाडी है। पर साथ ही वह अन्य प्रांतीय भाषाओं एव बोलियों के सम्मिश्रण से असाधारण तथा बहुरूपिणी हो गई है। जाभोजी पर्यटनशील थे। वे जहां जाते थे, उसी स्थान की भाषा में तत्-तत् निवासियों को उपदेश देते थे। अत उनकी रचना में अडोस-पडोस की बोलियो और भाषाओ का प्रभाव पाया जाना स्वाभाविक है।

स्थान-स्थान पर खडी बोली, ब्रज भाषा, पूर्वी हिन्दी, सिन्धी, पजाबी तथा अरबी उर्दू के प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ.-

(१) खडी बोली- इनमें, कौन (६), क्या (११), तुमही, कबही (१२), रहा (३३), हमहीं, हम (४६), हमारा (६२) आदि।

(२) ब्रज भाषा - ताकै (२१), हतै (१६), याकै (२२), तोसों (२७), ताते (३६), तेऊ (५८), काहीकै (८५) आदि।

(३) पूर्वी हिन्दी - शब्दों मे पूर्वी हिन्दी के प्रयोगों की, अन्य बोलियों की अपेक्षा बहुलता है। उदाहरणार्थ- काहे (६), जिहिंके (१०), तइया (१०), होयवा (१४), जां कुछ (१८), रोवत (१८), ताहीं (१८), अइया (२३), ताहि (२३), रहिया, लहिया (२७), आछै, ताछै (२७), जइया, तइया (३६), अइया (३८), का है (४२), जु (५८), तउवा (५८), जां जां, तां तां (२०), को को (२२), हइयो, अइयो (६०) आदि।

(४) सिन्धी - खणा, टवणा, चवरा, भवणा (२३१), अइया, उइयां (६८), गोठ (१) आदि।

(५) पंजाबी - हारू (३), कुडी (४), थीयूं (५), गीऊं (२७), ऊथे (३६), बेसूं (५२), लहणा (५३), सुणही सुणयां (५५) आदि।

(६) अरबी - ईमा, मोमन, चीमा, गोयम, इलारास्ती आदि।

(७) फारसी (उर्दू) - दिल, रहम, गाफिल, मुरदारू (१०, २३, १२), रजा, जानी (७५), कुफर, खता (११०) आदि।

जांभोजी के कतिपय शब्द उपर्युक्त प्रयोगों से सर्वथा अछूते भी हैं। ऐसे शब्द शुद्ध राजस्थानी भाषा की रचनायें हैं।

(८) वाणी में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। मिष्ट (२७), पुरुष, वृषली (२७), शब्द धर्म-कर्म आदि के प्रयोग वाणी में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

विशेष - आत्मपरिचयात्मक शब्दो मे जांभोजी ने स्थान-स्थान पर अपने लिये उत्तम पुरुष वाचक सर्वनामों का प्रयोग उसी भांति किया है जिस भाति गीता

में भगवान श्रीकृष्ण ने भी अहं, माम, मया, मे, मत, मम, मयि आदि उत्तम पुरुषवाचक सर्वनामों का प्रयोग किया है। जांभोजी परमयोगी और महापुरुष थे। उन्होंने सर्वात्मभाव की घोषणा में ही ऐसे प्रयोग व्यष्टि–समष्टि संयुक्त भाव के लिये किये हैं।

रचना विधानः-

वाणी का रचना विधान अपनी सहज प्रकृति में हुआ है। दुरूह छंद विधान की यहां अपेक्षा नहीं हैं। पिंगल की मात्रिक और वार्णिक शैली का अनावश्यक अनुकरण तथा डिंगल की दुरुहता तथा कृत्रिमता का अनुसरण जांभोजी की वाणी में नहीं हैं। जांभोजी की वाणी की रचना तो "शब्दो" में हुई है। ये शब्द गेय और पाठ्य दोनों हैं। जांभोजी के शब्दों की रचना कुछ अपने विशेष नामों से भी हुई है। यथा–शुक्लहस[1] इलोलसागर[2] (२६) और विष्णु कुंची[3] (३०)।

जिस प्रकार इन शब्दों की अपने विशेष नामों के साथ रचना हुई है उसी भांति इनका अपना–अपना माहात्म्य है।

---

१ शब्दों के अन्तर्गत "शुक्लहंस" एक विशेष विधा मानी जा सकती है। नाथपंथी साहित्य में "शुक्लहंसजी" के नाम से रचना भी मिलती है। (देखिये नाथ सिद्धो की वानियां)।

२ इलोल–आनंद, महान प्रसन्नता। (जंभसागर–हिसार) ३१६।

३ यह शब्द विष्णु–द्वार खुलने की कुंजी है। जिस प्राणी को अंत समय यह शब्द सुना दिया जाता है, उसे यमदूतो से कष्ट नहीं होता (जंभसागर ३३३)।

ईश्वर

सभी सद्भावनाओं तथा लोक के कल्याण का बीज परमेश्वर ही है। वह सदा सबको देखता रहता है। ईश्वर को सभी धर्मों के लोग मानते हैं। उसका सान्निध्य भी सभी प्रकार से सिद्ध है। आराधना करने वालों की वह सभी प्रकार से सहायता करता है।

संतों के तो ईश्वर ही सब कुछ हैं। उनके सभी प्रिय संबंधों का पर्यवसान एकमात्र उस परमात्मा में ही हो जाता है। परमेश्वर के अतिरिक्त वे किसी दूसरे को मित्र, कलत्र, पुत्र तथा प्रियतम नहीं मानते।

संतों की दृष्टि में इस असार संसार में एकमात्र परमेश्वर ही सार है। उसकी शरण तथा उसका स्मरण सब सुखों का मूल है और उसकी विस्मृति दुःखों का कारण।

जांभोजी ने अपनी वाणी मे परमेश्वर को विविध नामों से स्मरण किया है। यही कारण है कि उनकी वाणी में ईश्वर के विभिन्न नामों का प्रयोग हुआ है। जांभोजी ने ईश्वर–नामों में अपनी सहज उदारता से इस्लामी नामों का प्रयोग भी किया है। उनकी वाणी में प्रयुक्त ईश्वर नाम व विशेषण निम्न प्रकार हैं–

गुरु[१], जीवनमूल[२], मूल (विश्वमूल), आदि परमतत्व[३], अगम[४], अलेख[५], निरजन[६], जुगाजुगाणी[७] (सनातन), परमतत्व[८], स्वामी[९], सुरपति[१०], भलमूल[११], करतार[१२], हरि[१३], हर[१४], सुररायो[१५], अनत[१६], सांई[१७], भलशंभु[१८], आदिमुरारी[१९], गोरख, गोपाल[२०], लाल लिलगदेवो[२१], शार्ङ्गधर[२२], अपरपर[२३], अम्यारायo[२४], श्रीराम[२५], सिरजणहारा[२६], पारब्रह्म[२७], परशुराम[२८], निरजनशंभु[२९], नारायण[३०], निरालंभशंभू[३१], अल्लाह (क्रिया रहित), अलेख (चिह्न रहित), अडाल (हस्त पादादि अवयव रहित), अयोनि (जन्म

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द १, ३५, ३६, ३७, ३८। २. वही, शब्द १५, २०।
३ वही, शब्द १७। ४ वही, शब्द १७, ७७। ५ वही, शब्द १७, ७७।
६ वही, शब्द १७, ७७। ७ वही, शब्द २१। ८. वही, शब्द २८।
९. वही, शब्द ३०। १०. वही, शब्द २१। ११ वही, शब्द ३१।
१२. वही। १३. वही, शब्द ३३। १४ वही, शब्द ७। १५ वही, शब्द ७, २९।
१६ वही, शब्द ६८। १७ वही शब्द ६४। १८. वही, शब्द ६४।
१९ वही, शब्द ६४। २० वही, शब्द ८८। २१. वही, शब्द ८८।
२२ वही, शब्द ६८। २३ वही, शब्द ६९। २४ वही, शब्द ७७।
२५ वही, शब्द ७८। २६ वही, शब्द ८०। २७ वही शब्द ७।
२८. वही, शब्द ७। २९ वही, शब्द ७। ३०. वही, शब्द ५, १०२। ३१ वही, शब्द ६।

रहित), स्वयंभू, विनाणी[1], विष्णु[2], अलख[3], कृष्ण[4], धुरखोजे[5], शंभू[6], लक्ष्मीनारायण[7], मोहन[8], अकल[9], शुभकरतार[10], जिन्दो[11], जणियर[12], मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नृसिंह, राम–लक्ष्मण, बुद्ध, निष्कलंक[13], चक्रधर, बलदेव, वासुदेव आदि[14]। इन नामो के अतिरिक्त खुदाय, रहमान, करीम, बिस्मिल्ला, रहीम खुदायबद आदि नामों[15] का प्रयोग जांभोजी की वाणी मे हुआ है।

जांभोजी कहते हैं कि उस परमात्मा के सहस्रों नाम हैं। वह सृष्टि के आदि मे, जब केवल "धुंधुकार" ही था, "निरारंभ" (अव्यक्तावस्था) रूप मे था, उसने स्वयं ही अपने शरीर का निर्माण किया। उसी ने ब्रह्मा, इन्द्रादि को जगत्–निर्माण की शक्ति दी और उसी ने सूर्य, चन्द्र, पवन आदि की स्थापना की[16]।

जांभोजी ने अपना आराध्य "निरालंभशभू" (निराल व स्वयंभू) को अंगीकृत किया है[17]। वह ईश्वर सृष्टि के आदि में था, मध्य में है और अत में रहेगा[18]। वे कहते हैं कि ईश्वर के रूप की स्थापना षट्–दर्शन करते हैं। सहजशील, शब्द, वेद और नाद जिसके आभूषण हैं। ससार रूपी बर्तन को जिसने अपने हाथों से संस्थापित किया है[19]। वह बडा ही गतिशील है। वह मनुष्य की पकड से बाहर है। वह इतना विशाल है कि जिसमें समस्त रुद्र समाविष्ट हैं। वह बडा ही उपकारक है। उसकी अपनी कोई इच्छा न होने पर भी वह दूसरों (समस्त संसार) का पोषण करने वाला है[20]। परमेश्वर ही मनुष्य को सांसारिक मोह–पाश से छुटकारा दिलाने वाला है। वही मन के समस्त संतापों का निवारक है। परन्तु जाभोजी की दृष्टि में उसका परिबोध, उसके भक्त को सहज साक्षात्कार से ही होता है[21]। उसके समान दूसरा कोई नहीं है[22]। वह अनन्त गुणो वाला है। वह दृश्य–अदृश्य रूप से पिण्ड और ब्रह्माण्ड मे सर्वत्र व्यापक है।

ईश्वर ही परमभाग्यवान है तथा वही दूसरों के मस्तक पर भाग्यांकन करता है[23]। पुष्प में गन्ध और काष्ठ में अग्नि की भांति ईश्वर ने पृथ्वी और स्वर्ग में परिव्याप्त होकर अपनी लीला का विस्तार कर रखा है[24]। वह परमात्मा इतना समर्थवान है कि जब चाहे तभी शीतोष्णता, झंझावात, वर्षा, मेघाडम्बर आदि की सृष्टि कर सकता है[25]।

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द ६। २ वही, शब्द ७, १३, १५, २१, २५, २३, २७, ३२।
३ वही, शब्द ११। ४. वही, शब्द १, १४। ५ वही, शब्द ६। ६ वही, शब्द ११८।
७. वृहन्नवण। ८ वृहन्नवण। ६. कलश पूजा मंत्र। १० पाहलमंत्र।
११ जांभोजी की वाणी, शब्द ५०। १२. वही, शब्द ८६। १३. पाहल मत्र।
१४. जाभोजी की वाणी, शब्द ६४। १५. वही, शब्द ६, १०, ११, ७७।
१६. वही, शब्द ६४, १०५। १७ वही, शब्द ५। १८. वही शब्द ४।
१६. वही। २०. वही शब्द १। २१ वही, शब्द १। २२ वही, शब्द १।
२३. वही, शब्द ६५। २४. वही, शब्द ६६। २५ वही, शब्द ६८।

जरायुज़, अण्डज, स्वदेज और उद्‌भिज जीवयोनियां उसके श्वास–स्फुरण मात्र से अस्तित्व–अनस्तित्व को धारण करती हैं[1]। वह दयालु कृष्ण तीनों लोकों का साक्षी–स्वरूप है[2]। उसकी फौज बिना हाथी–घोडो तथा बिना सैनिकों की है। उस परमात्मा के, बिना डंडों और बिना वादक के सदैव प्रसन्नता के वाद्य बजते हैं[3]। जाभोजी कहते हैं कि ईश्वर की वास्तविक पहचान किसी सद्‌गुरु के द्वारा ही हो सकती है और तभी मनुष्य जन्म–मरण के बधन से मुक्त हो सकता है।

❖❖❖❖

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ३।

२ वही, शब्द १०२।

३ वही, शब्द ६५।

मानव-शरीर

जांभोजी ने जीवन के विविध पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इसी संदर्भ में उन्होंने मानव तन पर उसकी सार्थकता, निःसारता एवं उसकी क्षणभंगुरता पर अपनी वाणी में गंभीरता से विचार किया है।

मनुष्य देह पर वृद्धावस्था के व्याघ्र तथा मृत्यु का अप्रतिहत आक्रमण अवश्यंभावी है। मनुष्य को एक न एक दिन इस संसार से प्रस्थान करना ही पडता है। अत. मनुष्य देह की सार्थकता परमार्थसाधन में ही है। अनुपकारी मनुष्य से तो पशु तथा स्थावरादि ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि अनुपकारी मनुष्य की अपेक्षा उनसे जगत का अपरिमित उपकार होता है।

जांभोजी ने परमार्थ–साधन से रहित मनुष्य को जंगल के उपले के समान बताया है जो बिना किसी उपयोग के ही नष्ट हो जाता है[1]।

अध्यात्म–मनीषी संतों ने "नरतन" को कांच की शीशी[2], "पानी का बुदबुदा"[3] "धुंवे का लोर"[4] (धूम के बादल) आदि के समान बतलाया है। "जंभसार" में मनुष्य देह को–

> लांपड़ी जड़ जसो नर होई,
> मूर्ख खोय जाय सब कोई[5]

कहकर इसकी क्षणभंगुरता की ओर संकेत किया है।

मनुष्य देह की प्राप्ति होना बडा ही दुर्लभ है। किसी कवि ने कहा है.

> वर्ष अनंत जुग अनंत, अनंत जून झुकताय।
> यूँ चौरासी भरमना, निठ मानुष तन पाय।।[6]

इस शरीर की अवस्थिति, सुडौलता, आरोग्यता तथा सुंदरता सदैव रहने वाली नहीं है। जांभोजी की दृष्टि में, जिस मनुष्य ने अपनी देह का, यदि सदुपयोग नहीं किया जो उसकी रात–दिन के क्रम से घटने वाली आयु एवं उसके श्वास–प्रश्वास घाटे में ही रहे[7]। उन्होंने मनुष्य को अपनी आत्म–प्राप्ति के लक्ष्य की ओर सजग करते हुए उसको बार–बार उसकी देह की नश्वरता की ओर ध्यानाकर्षित

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ६४।

२ जैसी शीशी कांच की वैसी नर की देह।
जतन करंता जायसी, हर भज लोहो लेह।।

३ पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।

४ जांभोजी की वाणी, शब्द २१। ५. वही, अष्टादश प्रकरण, पृ ३१।

६ जंभसार, अष्टादश प्रकरण, पृ. ३६। ७. जांभोजी की वाणी, शब्द १३।

किया है। वे कहते हैं कि, हे प्राणी, तुम्हे चाहे यह ज्ञात हो, चाहे न हो कि तुम्हारे जीवात्मा का परमशत्रु यम है[1]। यह शरीर यम का आक्रमण होने पर इस प्रकार नष्ट हो जायगा जिस प्रकार पवन के झोको से धूम के बादल नष्ट हो जाते हैं[2]। इसलिये जाभोजी की सलाह है कि इस संसार से अनुरक्ति तथा मृत्यु की विस्मृति करना उचित नहीं है[3]। वे कहते हैं कि हमारे देखते–देखते देव, दानव और "सुरनर" क्षय को प्राप्त हो गये। जम्बू द्वीप का नामोल्लेख कर वे कहते हैः यहां किसी का अस्तित्व नहीं रहेगा। सब का "थेह" (ध्वंस) हो जायेगा। यदि "धुंध" के मेह का कोई अस्तित्व हो तो इस संसार मे किसी मनुष्य का अस्तित्व स्थिर हो सकता है।[4]

जिस दिन इस शरीर से हस (आत्मा) उड जायगा, उस दिन सारी आशायें निराशा मे परिणित हो जायेगी तथा यह शरीर आत्मा के बिना, वैधव्य को प्राप्त हो जायेगा और आत्मा–विहीन शरीर इस प्रकार अनस्तित्व को प्राप्त होगा जिस प्रकार आकाश मे मंडराने वाली रज वर्षा के प्रभाव से अनस्तित्व को प्राप्त होती है[5]। सिद्ध तथा साधुओ ने इस शरीर को झूठा और उत्पन्न होकर विनष्ट होने वाला बतलाया है। परन्तु नुगरो को इस स्थिति का ज्ञान नहीं होता।[6]

जांभोजी ने कहा है कि जीवात्मा के निष्कासित होने पर इस शरीर को देखकर रोना–पीटना निष्फल और भ्रांतिमूलक है[7]। यह शरीर कच्चा है, अत. यह गलकर नष्ट होगा ही[8]। किसी भी उपाय से यह शरीर जीवित नहीं रह सकता। इसे जीवित रखने में जडी–बूंटी भी काम नहीं देती। जांभोजी कहते हैं कि यदि जड़ी–बूटी से यह शरीर जीवित रहता तो वैद्य ही क्यों मरते?[9]

उन्होने इस शरीर को "बाडी" की एवं "गढ" की सज्ञा दी है। वे कहते हैं कि यह बाडी (शरीर) एक न एक दिन विनष्ट होगी ही। इस शरीर रूपी गढ के नौ दरवाजे तथा नौ ही प्रतोली हैं, परन्तु इस गढ में कोई स्थिर नहीं रहता[10]। अत जाभोजी की राय है कि मनुष्य को अपने इस कच्चे शरीर का अभिमान नहीं करना चाहिये[11]।

जो अति अभिमानी हैं, विभ्रमी, विवादी एव बडाईखोर हैं; जाभोजी कहते हैं कि वे यम के द्वारा नष्ट हो जायेंगे। इहलोक और परलोक मे वे अपना कोई स्थान भी नहीं बना सकेगे। अत. शरीर का अभिमान करना व्यर्थ है। जो मूर्ख हैं, उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता कि हमारे इस शरीर का मांस एव रक्त बेकार ही जायेगा[12]।

जांभोजी ने मृत्यु के रूप में "यमदूतों" का निम्न प्रकार से प्रभावशाली चित्रण किया है –

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द २१। २. वही, शब्द २५। ३ वही, शब्द २५।
४ वही, शब्द २५। ५ वही, शब्द २५। ६. वही, शब्द ४१।
७ वही, शब्द ५३। ८ वही, शब्द ६४। ९ वही, शब्द १८।
१० वही, शब्द ७८, ७९। ११. वही, शब्द ६६। १२ वही।

तिहिं ऊपर आवेला जवर तणां दल तास किसो सहनाणों[1]
ताकै शीष न ओढण पाय न पहरण, नैवा झूल अयाणो
धनक न बाण न टोप न अंगा, टाट र चुगल घयाणो[2]

अर्थात हे भाई! वह मृत्यु अचानक ही विनाश लीला दिखायेगी अत. मनुष्य को उसके निवारण का कोई उपाय करना चाहिये। उसको अपने अंतर में छिपाकर रखना उचित नहीं[3]। क्योंकि एक दिन इस शरीर से हंस उडकर बहुत दूर प्रयाण कर जायेगा[4]। क्षण–क्षण में आयु घटती जाती है तथा दिन प्रतिदिन मृत्यु नजदीक आती जाती है[5]।

जांभोजी मृत्यु की विभीषिका का चित्रण करते हुवे कहते हैं कि वह ऐसी भयंकर है जो न बालक को ही कुछ समझती है और न वृद्ध को। वह सबका मर्दन कर डालती है। वह धरती और आसमान में अगोचर रहती है। वह जीव को अपने चंगुल में पकड़ लेती है और मनुष्य के मरने के बाद उसके पीछे व्यर्थ का कौओं जैसा "कलियुगी" रोना–पीटना रह जायगा[6]।

जांभोजी की राय है कि प्राणी को समय रहते ही सावधान रहकर, जो कार्य करना हो, कर लेना चाहिये। जिस प्रकार पहाड से गिरकर बहुत गहराई में गई कोई वस्तु हाथ नहीं आती उसी प्रकार गया अवसर लौट कर नहीं आता। इस देह की अवस्थिति में ही परमात्मा को प्राप्त करना चाहिये। वे कहते हैं कि जब इस शरीर से जीव का विछोह हो जायेगा तब माथा ठोंक कर रह जाओगे[7]।

यदि प्राणी ने स्वस्थावस्था में, शरीरेन्द्रियों की कार्यक्षमता रहते, जीवितावस्था में और श्वास–प्रश्वास के चलते, शुभ कार्य नहीं किया तो यम (मृत्यु) अवश्य ही उसका विनाश करेगा[8]। मनुष्य को अपने कर्त्तव्य की पहचान करनी चाहिये।

जांभोजी ने उस व्यक्ति का जीवन व्यर्थ ही बतलाया है जिसने पृथ्वी पर जन्म लेकर यदि होम, जप, तप, उत्तम क्रियाओं (कार्यों) का संपादन तथा गुरु की पहचान नहीं की[9]।

जांभोजी ने मानव तन को आत्मप्राप्ति का साधन मानते हुए "माणक्य" बतलाया है[10]। उनकी दृष्टि में इस काया की तभी शोभा है जब इसके माध्यम से जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त करे तथा "करनी" (सुकृत्य) से स्नेह करे[11]।

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ६६। २ वही, शब्द ६६। ३ वही, शब्द ८६।
४. वही, शब्द ६५। ५ वही, शब्द १२०। ६ वही, शब्द ६६।
७. वही, शब्द ३१। ८ वही, शब्द ६८। ६ वही, शब्द १३।
१० वही, शब्द २१। ११ वही, शब्द २३।

पाखंड

समाज को नई गति देने वाले सिद्ध–संतों के जीवन एवं साहित्य में पाखंड तथा आडम्बर को किंचित भी स्थान नहीं है। वे जीवन के प्रत्येक पक्ष में सत्य का ही आरोपण करते हैं। जांभोजी ने अपने समय में प्रचलित धर्माडम्बरों के खंडन में कठोरता से उन पर आक्रमण किया है। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:

(क) मूर्तिपूजा (ख) तीर्थयात्रा

(ग) जात–पांत (घ) वेद, कुरान और ज्योतिष

(ड) वेश और तथाकथित योग (च) सिद्धि–चमत्कार

(छ) भूत–प्रेत एवं वीर–वैताल की आराधना

(ज) नमाज, बांग एव सुन्नत

मूर्तिपूजाः-जांभोजी ने अपनी वाणी में मूर्तिपूजा का घोर विरोध किया है। उनकी दृष्टि में मूर्ति को पूजना, भूसे से अन्न प्राप्त करने के समान है[१]। वे कहते हैं, जो "नुगरे" हैं वे विपरीत मार्गी होकर कुछ का कुछ ही चिह्नित करते हैं[२] तथा पाषाण–पूजा की ओर ही प्रेरित होते हैं जबकि उनको ऐसा करने से कोई लाभ नहीं है।[३]

जाभोजी पाखण्ड के विरोध में कहते हैं कि अपने माथे को अथवा अपने शरीर को "देव–प्रवेश" के बहाने प्रकंपित करना और पाषाण को पूजना, परमात्मा की आज्ञा नहीं है। पत्थर को पूजना गुरु का शिष्य के पैरों पडने जैसा है, क्योकि मूर्ति का निर्माता मनुष्य ही है, तब उसका अपने ही द्वारा निर्मित मूर्ति के सामने नत–मस्तक होना गुरु का शिष्य के पैरों पडना ही हुआ। उन्होंने ऐसे लोगों को "अन्याई" बतलाया है।[४]

जांभोजी ने अपनी सूक्ष्म विवेचनी बुद्धि से उन लोगो का अपनी वाणी में व्यग्य चित्र उपस्थित किया है, जो काष्ठ, लाक्षा, चांदी आदि की मूर्ति को वस्त्रादि से परिवेष्टित कर छिपाये रखते हैं तथा मूर्ति के सामने जमीन पर लेटकर साष्टांग दण्डवत कर उसे नमस्कार करते हैं। इस प्रकार के लोगो पर उनका व्यग्य है कि, "धैर्य रखो, हरि आने ही वाले हैं"[५] (अर्थात इस प्रक्रिया से परमात्मा से मिलन दुर्लभ है।)

तीर्थः- जांभोजी की दृष्टि में बाह्याचारों को कोई स्थान नहीं है। आन्तरिक शुभ भावनाये ही मनुष्य के लिये कल्याणकारी हैं। वे तीर्थों के सबंध में अपना मतव्य इस प्रकार प्रकट करते हैं कि "अडसठ" तीर्थ तो हृदय में ही होने चाहिये अर्थात

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द २६। २. वही, शब्द ६७। ३ वही, शब्द २७।
४. वही, शब्द ७१। ५ वही, शब्द ७१।

हृदय की पवित्रता ही तीर्थों के समान है। उनकी दृष्टि में बाहर के तीर्थ तो मात्र लोकाचार का निर्वाह हैं[1]।

जांभोजी ने उन लोगों को धर्म से अथवा धर्मलाभ से सर्वथा वंचित ही बतलाया है जो हिन्दू होने के नाते तीर्थों में स्नान करते हैं एवं अपने पितरों को उनकी सद्गति के लिये पिण्डदान करते हैं।[2] लेकिन ऐसा करना मात्र रूढि है।

जात-पांतः- जांभोजी की दृष्टि में जाति मात्र से कोई बडा नहीं होता है। उनकी दृष्टि में वही बडा है जो उत्तम क्रियाओं का संपादन करता है। आयु से, बडा कहलाने से तथा भीमकाय होने से कोई बडा (महान) नहीं होता है:-

घणां दिनां का बडा न कहिया, बडा लंघिया पारूं
उत्तम कुली का उत्तम न होयबा, कारण क्रिया सारूं[3]

भगवान बुद्ध ने भी ऐसा ही कहा है:-

मंसानितस्य वड्ढन्ति पंजा तस्स न वड्ढन्ति

अर्थात मांस तो उसके बढ रहे हैं पर उसकी प्रज्ञा नहीं बढ रही है[4]। जांभोजी ने "लक्ष्मणनाथ" के "थलथल" करते हुए शरीर पर अनावश्यक बढे हुए मांस को देख कर ही इस प्रकार का भाव प्रकट किया था।

जांभोजी ने मूर्ख व अज्ञानी ब्राह्मण से गधे को तथा मूर्ति से कुत्ते को अधिक उपयोगी बतलाया है। वे कहते हैं:-

ब्राह्मण नाऊं लादण रूँडा, बुत्ता नाउं कुत्ता।
वै आपानै पोह बतावै, वैर जगावे सूता।[5]

इसी प्रकार के विचार भगवान बुद्ध ने प्रकट किये हैं- "कोई गोत्र के कारण, कोई वंश के कारण, कोई जन्म के कारण, कोई जटा के कारण ब्राह्मण नहीं होता। सत्य और धर्म से ही ब्राह्मण होते हैं।[6] जांभोजी ने उसे ही श्रेष्ठ माना है जिसने सदाचार धर्म का पालन किया है।

वेदशास्त्रः – जांभोजी ने अपनी वाणी में वेद–शास्त्र की कहीं भी निन्दा एवं उपेक्षा नहीं की, परतु जो वेद–शास्त्र के वास्तविक आशय को जाने बिना उन्हे पढते हैं, वे उससे लाभान्वित नहीं होते। उनकी दृष्टि में जिसने शास्त्रों के वास्तविक मंतव्य को नहीं जाना, उनके लिये वे कागज के थोथे पोथे हैं।[7] तात्विक बात को जाने बिना चाहे जितने वेदशास्त्र सुने, पढे जाय, वे किसी भी अंश में सहायक सिद्ध नहीं होते।[8] वे कहते हैं कि ब्राह्मण तो अपने वेद की जानकारी के मिथ्या अभिमान में भूल गये

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ३। २ वही, शब्द २६।
३ रघुनाथसिह, विश्व के धर्म प्रवर्तक, पृ ६६। ४. जांभोजी की वाणी, शब्द ७१।
५ वही, शब्द ७१। ६ रघुनाथसिह, विश्व के धर्म प्रवर्तक, पृ ६६।
७ जांभोजी की वाणी, शब्द २७। ८. वही, शब्द २७।

और काजी अपने "कलमे" के अभिमान में गुमराह हो गये। काजी कुरान का कथन करता है कि उसने यदि परमात्मा के वास्तविक "फरमान" को नहीं समझा तो वह "काफिर" है, "थूल" है।[1] उनकी दृष्टि में वेद शास्त्र को पढकर भी भूत–प्रेतादि की आराधना करना प्रत्यक्ष पाखड है।[2]

ज्योतिष:- जांभोजी ने ज्योतिष शास्त्र के "मुहूर्त" आदि का खंडन किया है एवं उन्हें "थोथा पोथा" की संज्ञा दी है। उन्होने ज्योतिष पर आस्था रखने वाले जोगियो (आयसां) जोशियो (जोयसा) तथा अन्य पढे–लिखे लोगों की ओर संकेत करते हुए ज्योतिष शास्त्र की नि.सारता प्रकट की है।[3]

वेश और तथाकथित योग:- जांभोजी ने वेश–भूषा धारण करने मात्र से योगी बनने के मिथ्या दावे का अपनी स्फोटमयी वाणी में विरोध किया है। वे उन योगियो से पूछते हैं कि हे योगी! तुमने किस अर्थ के लिये शरीर पर भस्मी का लेपन किया है? और योगी होकर भी तुम किस लाभ के लिये भूत तथा श्मशान की आराधना करते हो? उनकी दृष्टि मे ऐसा करना उल्टा काम है। जैसे औंधे मुंह रखे घडे मे वर्षा का पानी नहीं भर सकता वैसे ही उक्त प्रकार के कामों से योगतत्व संलब्ध नहीं हो सकता।[4]

जाभोजी पाखडी योगियो से कहते हैं कि "झोली" और "कंथा" का कंधों पर व्यर्थ का भार है तथा कडे धागों से निर्मित यह चुभने वाली है।

तुमने जब "योग" से परिचय नहीं किया तब "घर–बार" क्यो छोड़ा? बिना योग को प्राप्त किये, जड–बुद्धि, वाद–विवादी और न करने योग्य काम करने वाला भवसागर से पार नहीं लंघ सकता।[5]

कानो में मुद्रा पहनना, जटाये बढाना और जीव हिंसा करना योग नहीं, प्रत्यक्ष पाखंड है।[6] केवल मूंड मुंडा लेना, कान फड़ा लेना और "गोरखहटडी" को धोकना (पूजना) योग नहीं है।[7] मूड (माथा) मुंडा लिया लेकिन मन को नहीं मूंडा। व्यर्थालाप और अनुचित लोभ करना, योगी के लिये शोभनीय नहीं।[8] जो योग की युक्ति का सार नहीं जानता वह मूड मुंडा कर विद्रूप ही हुआ।[9]

केवल शारीरिक हठयोगियों को जांभोजी वैसे ही लताडते हैं जैसे कबीर, नानक आदि ने उन्हें लताडा है। यद्यपि योग का आंतरिक रूप उन्हें ग्राह्य था तथापि बाह्याडंबरो के वे घोर विरोधी थे।

दम्भी नाथो के प्रति उन्होने स्पष्ट कहा है– जो नाथ बनने का दम्भ तो भरता है परंतु जिस के जन्म–मरण रूपी आवर्तन निवृत्त नहीं हुए वह नाथ कहलाने का अधिकारी नहीं है।[10] जो व्यक्ति पांखड के वशवर्ती होकर माथा मुडवाता है, कान

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द ३६। २. वही, शब्द ५३। ३ वही, शब्द ६६।
४. वही, शब्द ४२। ५ वही, शब्द ४४। ६ वही, शब्द ४३। ७ वही, शब्द ५०।
८ वही, शब्द ८४। ९. वही, शब्द११७। १० वही, शब्द ४६।

फडाता है तथा "गोरखहटडी" को पूजता है, वह सही लाभ से वंचित ही रहा है।

जांभोजी की यह भी मान्यता है:–

गोरख दीठां सिद्ध न होयबा पोह उतरिया पारुं।

अर्थात् गोरखनाथ को देखने मात्र से कोई सिद्ध नहीं हो जाता अपितु ज्ञान मार्ग पर चलने वाला ही सिद्ध होता है। पाखडी, सिद्धि के मार्ग को नहीं जान सकता। उस मार्ग का ज्ञान तो किसी साधु को ही होता है, जो किसी पाखंडादि अन्य मार्ग का अनुसरण नहीं करता।[1]

जो "जोगी" बिना किसी आत्मिक उद्देश्य के व्यर्थ में ही इधर–उधर घूमता है, श्मशानों में रहता है और पाषाण (मूर्ति) आदि मे अनुरक्त है, वह सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।[2]

सिद्धि चमत्कारः- आत्म परिचय के बिना तथा जन–मगल की भावना से रहित जो योगी तथा साधु मात्र दुनिया को भ्रम में डालने क लिये सिद्धि आदि दिखाने का दावा करते हैं, उन्हे जांभोजी ने लताड पिलाई है। वे किसी दम्भी योगी को संबोधित कर कहते हैं कि, हे योगी। लोगों को चमत्कार के भ्रम में डालने के लिये "मृगछाला" और "खडाऊ" को क्यों घुमाते हो ? हे योगी ! यदि मैं चाहूं तो तुम्हारे इन चमत्कारों की प्रतिक्रिया स्वरूप सूर्य को उदय होने से रोक सकता हूं, उदयगिरि और सुमेरु पर्वत को आपस में भिडा सकता हैं, त्रिभुवन की स्वामिनी रुक्मिणी को पृथ्वी पर उतार सकता हूं और यदि चाहूं तो नवसौ नदियों तथा नवासी नदों को रेतीली भूमि पर प्रवाहित कर सकता हूं। यहां जांभोजी के कहने का इतना भर आशय है कि मेरी ऐसी यौगिक सामर्थ्य होने पर भी जब मैं ऐसा नहीं करता तब तुम व्यर्थ की ऊपरी सिद्धि दिखाकर दुनिया को भ्रम में क्यो डालते हो?[3] जाभोजी की दृष्टि में आत्म–साधना में सिद्धि–चमत्कारों का कोई महत्त्व नहीं है। विपरीत दम्भपूरित भावना से प्रकट चमत्कार आत्म–बाधक ही सिद्ध होते हैं।

भूत-प्रेतादिः- जांभोजी ने भूत–प्रेत एव वीर–वैताल की आराधना एवं उनकी मान्यता का विरोध किया है। वे कहते हैं कि भूत–प्रेत और वीर–वैताल को क्यों जपा जाय? ऐसा करना तो प्रमाणित पाखंड है[4]। उन्होने भूत–प्रेतादि को "जाखाखाणी" की संज्ञा दी है। उन्होंने इनकी आराधना को अन्न रहित भूसे को पीसने के समान, ऊसर भूमि मे बीज बोने के समान और रेत में पानी स्थिर करने के असफल प्रयत्न

---

१ वही, शब्द २८।

२. वही, शब्द ७१।

विशेष– योग के ग्रथों में "नाथ" शब्द का तात्पर्य पूरा सिद्धत्व या पूर्णत्व प्राप्त किया हुआ महापुरुष है। "नाथ" शब्द से यह ध्वनि भी निकलती है कि जिसने अपनी इन्द्रियो को नाथ लिया हो अर्थात वश में कर लिया हो आदि।

३ जाभोजी की वाणी, शब्द ११६।

४. वही, शब्द ६६।

करने के समान बतलाया है।[1] उनका कथन है कि यद्यपि दुनिया अपने अज्ञान के वशीभूत होकर गाने–बजाने आदि बाह्याडम्बरों से ही प्रसन्न होती है।[2] परंतु ये सब तत्व विहीन बाते हैं और मिथ्याडम्बर मात्र हैं।[3]

बांग तथा नमाजः- *जाभोजी ने जहां हिन्दू समाज तथा योगियों मे घर करने वाली* बुराइयो एव मिथ्या बाह्याचारो का विरोध किया है वहां उन्होंने मुसलमानों के बाह्याचारों का भी खुलकर विरोध किया है। वे बांग (अजान) देने वाले मुसलमान से कहते हैं कि यदि तुम्हारा दिल परमात्मा में लगा हुआ है तब तो "काबे" की "हज" तुमसे दूर नहीं है, फिर यह तुम्हारी "बाग" लगाना व्यर्थ है। क्या पश्चिम की ओर मुंह करके बांग लगाने से तुम उस रहमान को पहचान लोगे? यदि इस प्रकार वह "रहमान" पहचाना जाता तो निश्चय ही उसको पहचानने वालों के लिये उनके शरीरांत होने पर स्वर्ग से विमान आते, लेकिन यह ज्ञात होता है कि परमात्मा इस उपाय से नहीं पहचाना गया और तभी स्वर्ग से विमान उन्हें लेने नहीं आये।[4] तब दीवारों पर, मडी और मस्जिद पर चढ–चढ कर बांग क्यो लगाई जाय? क्या वह परमात्मा सुनता नहीं है कि उसे आवाज लगाई जाय ?[5]

जाभोजी ने आत्म–परिचय के बिना नमाज पढना भी व्यर्थ बतलाया है। वे मुल्लाओ को सबोधित कर कहते हैं, रे मुल्ला, मन में ही नमाज "गुजारो"। तुमने संसार को तो देखा है, किन्तु परमात्मा की पहचान नहीं की। केवल चमडी के कटने (सुन्नत होने) से क्या होता है ?[6] जांभोजी की दृष्टि मे मुसलमान भी भूले हुए ही हैं जो हज के लिये काबे को धोकते हैं।[7]

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ७१। २ वही, शब्द ६६। ३. वही, शब्द ७०।
४ वही, शब्द ६, ११। ५ वही, शब्द ११।
६ वही, शब्द ११। ७ वही, शब्द ५०।

गुरु

गुरु का स्तवन, वदन तथा उसकी महत्ता भारतीय संस्कृति व समाज में सदैव से रही है। वह गुरु, धर्म व समाज का नियामक रहा है। अत: विविध प्रकार की समस्याओं का हल भी वही उपस्थित करता था।

भारतीय वाङ्मय में गुरु का बड़ा ही यशोगान हुआ है। गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। गुरु ही साक्षात ब्रह्म–स्वरूप है।[1] "गु" अंधकार में "रु" प्रकाश करने वाला है। गुरु ही माता–पिता यहां तक कि वह ईश्वर भी है। गुरु की कृपा से ही समस्त शुभ वस्तुओं की प्राप्ति होती है। गुरु–कृपा बिना कोई मांगलिक कार्य सिद्ध होने की संभावना नहीं।

घेरंड संहिता में लिखा है[2]– "केवल वही ज्ञान उपयोगी है और शक्तिसंपन्न है जो गुरु ने अपने श्रीमुख से दिया है, नहीं तो वह ज्ञान निरर्थक, अशक्त और कष्टप्रद हो जाता है।"

उपनिषदों में गुरुत्व की प्रतिपादक श्रुतियों में कहा है:–

(क) आचार्यवान पुरुषोवेद।[3]

(ख) नैषातेर्कणमतिरापनेया प्रोक्ता न्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।[4]

(ग) तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।[5]

तंत्रों में भी ज्ञान–दाता गुरु का स्थान अत्यंत महत्व का समझा जाता है। तंत्रों में "मानवी गुरु" और "दैवी गुरु" गुरु के स्वरूप माने गये हैं। अधिकांश तांत्रिकों ने गुरु से भगवान शिव का ही अर्थ लिया है। तंत्रों के अनुसार समस्त सिद्धांतों का यही सार है कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता।[6]

हिन्दी साहित्य में, उसके आदिकाल से ही गुरु–गुणगान के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। साधक के जीवन में गुरु का अपूर्व महत्व है। डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दों में– "अलख को लखने के लिये साधक को पथ–प्रदर्शक की बडी आवश्यकता होती है। योग के मार्ग में प्राणायाम, षटकर्म, अष्टांग योग, मुद्रा, श्वास–प्रश्वास का संचालन और नियंत्रण, समाधि, नादानुसंधान आदि का मार्ग

---

१. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर।
गुरु: साक्षात् परंब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नम ।।

२. घेरंड संहिता, तृतीयोपदेश, श्लोक१०। ३ छान्दोग्योपनिषद् ६।१४।२।

४. कठोपनिषद् १।२६। ५ मुण्डक १।२।१२।

६ डॉ गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ २०२।

इतना दुर्गम है कि बिना गुरु के पथ-प्रदर्शन के साधक इनकी साधना कर भी नहीं सकता है।"[1]

सतो की दृष्टि में गुरु ईश्वर के समान ही नहीं है अपितु वह ईश्वर से भी महान है।[2]

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ?[3]

गुरु के आग्रह से ही ईश्वर के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार गुरु महिमा की स्रोतस्विनी वेदों से लेकर आज तक संतों की वाणी में अजस्र रूप से बही है।

लोकमानस का तो गुरु के संबंध में यहां तक विश्वास है कि पापी के दर्शनों का दोष-निवारण किया जा सकता है लेकिन "नुगरे" का मुंह तक देखने से जो महापाप लगता है, उसका प्रायश्चित ही नहीं है।[4]

जाभोजी ने विविध प्रसंगों में "गुरु" अथवा "सतगुरु" शब्द का प्रयोग अपनी वाणी मे तीन विभिन्न अर्थों में किया है-(१)ईश्वर वाचक (२) विशेषण वाचक और (३) गुरु या सतगुरु वाचक। उनके अभिमत से स्वय जांभोजी ही सतगुरु के रूप मे बारह कोटि जीवो के कल्याणार्थ इस अवनितल पर अवतरित हुए हैं।[5]

यहा तीसरी कोटि के गुरु की चर्चा ही अपेक्षित है।

जाभोजी की विचारधारा में सद्‌गुरु अथवा गुरु का बहुत ऊचा स्थान है उनके विचार मे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही जीव के लिये कल्याणकारी सिद्ध होता है। वे उस गुरु की पहचान का उपदेश देते हैं, जिसने ईश्वर (गुरु) से साक्षात्कार कर लिया है। उनके मतानुसार ज्ञानी गुरु के मुख से ही धर्म का व्याख्यान सुनना चाहिये। जिस प्रकार "साण" लोहे के जग को क्षीण करता है, उसी प्रकार ज्ञानी गुरु *मोह का नाश करता है। गुरु ही अज्ञान-ग्रंथियो को भंग करने वाला है।* वह सद्‌गुरु प्रत्यक्ष रूप है। सच्चे और ज्ञानी गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। तत्व के महारस में निमग्न होने का ज्ञान सद्‌गुरु ही देते हैं।[6]

यहा गुरु की ही अपरिमित सामर्थ्य है कि वह लौह-सदृश शिष्य को स्वर्ण-रूप प्रदान करता है, अनघड को सुघड बनाता है और अपावन को पावन।[7]

वह सद्‌गुरु रत्न एवं मोती सदृश अधिकारी पात्र को चुन-चुन कर

---

१ डॉ त्रिलोकीनारायण दीक्षित, सुंदर दर्शन, पृ १७३। २ बोधसार, ४-१२।
३ कबीर, "संतवानी सग्रह भाग-१" पृ २-१३।
४ पापी मिलौ हजार कै, नुगरो एक न आछो।
परहरिये गुरुनाथ, नुगरै कू टाळो पाछो।।
५ जाभोजी ने अनेक स्थलो मे यह प्रकट किया है कि उन्होने बारह कोटि जीवों के *उद्धार के लिये अवतार लिया है।*
६ जांभोजी की वाणी, शब्द १। ७ वही, शब्द ५५।

आत्मोपदेश देते हैं तथा वह अधिकारी के लिये 'ध्रुवलोक' का मार्ग प्रशस्त करते हैं।[1] परन्तु जिसने गुरु की पहचान नहीं की उसको उस ध्रुवलोक का मार्ग नहीं मिलता।[2] गुरु के "शब्द" (आत्मोपदिष्टा वाणी) से क्षार समुद्र पार के असख्य लोग भी प्रबोधित हुए हैं।

जाभोजी कहते हैं कि मैं ही वह सद्गुरु हू जो भगवीं टोपी ओढकर मरुस्थल भूमि पर अवतरित हुआ हूं। मुझ से स्नेह--मिलन करो।[3]

जाभोजी की विचारदृष्टि में वही गुरु अपने शिष्य को "जागरण" का उपदेश दे कर जगा सकता है जिसने अपने जीवन में ज्ञान को आत्मसात् किया है।[4]

गुरु के "आखर" को मानकर निन्नानवे कोटि राजाओं ने योग धारण किया था और गुरु से भेंट होने के कारण ही उनका योग सध सका।

गुरु का फुरमाना ही बहुत प्रमाणित है।[5]

जांभोजी कहते हैं जो ज्ञानसम्पन्न हो उसे गुरु बनाना चाहिये, वह माह को भंग करने वाला होता है।[6] गुरु ही सत्य का अभिभाषक है जिसके प्रभाव से जरा और मृत्यु का भय पास तक नहीं फटकता।[7] गुरु के बिना मुक्ति नहीं होती।[8] गुरु ही वह तत्व बतलाते हैं जिसको जानकर मनुष्य अजर--अमर हो जाता है, फिर तो उसका जन्म-मरण ही सदैव के लिये छूट जाता है।[9]

जांभोजी कहते हैं-- यदि आप गुरु के शब्दोपदेश को मानोगे तो संसार सागर से पार हो जाओगे।[10]

वे गुरु के संबंध में कहते हैं कि गुरु ही गौरवगिरि है और जल के समान शीतल हैं।[11] यह तृप्ति देने वाले मिष्ट मेवे के समान है। वह उदार हृदय वाला है। परम संतोषी है अर्थात वह बदले में कुछ नहीं चाहता। वह गुरु, शिष्य की नाव को खेकर भव--जल से पार लगाने वाला सच्चा नाविक है।[12]

जांभोजी कहते हैं -- वह गुरु (मैं) तुम्हें संसार--सागर से पार लगाने के लिये संयोग से मिल गया हूं। जिस प्रकार लोहा काठ का उत्तम संग पाकर पानी पर तैर जाता है उसी प्रकार क्रियार्थ (उत्तम प्रयास) के बिना भी गुरु की शरण में आने पर शिष्य गण संसार सागर से तिर जाते हैं।[13] सद्गुरु से साक्षात्कार होने पर वह शिष्य की समस्त भ्रातियों का निराकरण कर देता है। गुरु के वचन मोक्षदायक होते हैं। गुरु के उपदेश से शिक्षित हुआ प्राणी अपने असली घर "परम धाम" को प्राप्त कर लेता है।[14]

जब सद्गुरु मिल गया और उसने सत्य का मार्ग बतला दिया, समस्त

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ६। २. वही, शब्द ६। ३. वही, शब्द २६।
४. वही, शब्द ३०। ५. वही, शब्द ६७।
६ वही, शब्द ७०। ७ वही, शब्द ६१। ८. वही, शब्द ६७।
६. वही, शब्द ६६, १०१। १०. वही, शब्द ६१, ८४, ६६। ११. वही, शब्द १५।
१२. वही, शब्द १५। १३. वही, शब्द २३। १४. वही, शब्द २३।

भ्रातियो का निराकरण कर दिया तब शिष्य को किसी दूसरे को कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती।[1] जाभोजी अपने शिष्यों को कहते हैं कि प्रकाश रूप गुरु के होते हुए फिर तुम भूल मे पडकर अंधेरे में क्यो चलते हो?[2]

आत्मोपलब्धि के सबध मे जांभोजी का कथन है कि वह केवल्य ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, तथा सहजस्नानी गुरु के प्रसाद से[3], धर्माचरण से, शील-सयम के पालन से एव सत्गुरु के तुष्टमान होने से होती है।[4] गुरु के सत्य उपदेश से अनायास ही ब्रह्म का साक्षात्कार तथा अपरोक्षानुभूति हो जाती है। परन्तु ऐसे सद्गुरु दुर्लभतर हैं।[5]

उन्होने उस आचार्य से, आचार संबंधी शिक्षा लेने का उपदेश दिया है जो स्वयं संयमशील तथा सहजभाव से आत्मरत हो। जो ऐसे आचार्य को पहचान लेता है वह सहज ही आवागमन से छूट जाता है। वह सिद्ध स्थिति को प्राप्त होकर परमज्योति मे एकाकार हो जाता है।[6]

जैसा कि जांभोजी ने अनेक स्थलों में अपने को ही वह सद्गुरु बतलाया है, इसी सदर्भ में वे कहते हैं कि मेरे कारण, कार्य तथा क्रियाओ को देखो, उनकी गहराई में जाकर तत्संबंधी विचार करो। किसी प्रकार की भूल को स्थान न देकर मेरे उपदेश को अपने जीवन मे व्यवहृत करो। उनका कथन है कि नदी से तो मात्र पानी की ही उपलब्धि हो सकती है, किन्तु समुद्र से मोती भी मिलता है अर्थात् सद्गुरु समुद्र के समान है।[7] गुरु की "शरणागत" छूटने पर हानि ही है।[8]

जांभोजी इस क्षेत्र के बहुसख्यक जाट समुदाय को संबोधित कर कहते हैं कि, हे जाटों! सुनो! मुझ (जंभेश्वर) प्रकाशरूप गुरु के होते हुए तुम अज्ञान रूपी अंधेरे में क्यो चलते हो? गुरु के द्वारा बताये हुए तथा उसके अनुकरणीय मार्ग को भुलाकर और ज्ञानवारि से हृदय का प्रक्षालन किये बिना उसे "थूल" रखकर क्यो इस मानव शरीर रूपी अर्जित सबल कमाई को तुम नष्ट कर रहे हो?[9]

ऐसा मार्ग प्रशस्त करने वाला वह गुरु "नररूप" है और एकाकी (अद्वितीय) है।[10] जब वह सद्गुरु (जांभोजी) "मरुस्थल भूमि" के "समराथल धोरे"[11] पर प्रकट हुआ है अथवा उसने ज्ञान का आलोक प्रकट किया है तब तुम गुरु के उस आलोक मे अपनी आत्मवस्तु को क्यों नहीं देखते? उनकी अपने शिष्यो को सलाह है कि वे गुरु के इस सान्निध्य में एवं उनके उपदेश से उस आत्मवस्तु को प्रत्यक्ष करले जो छिपी हुई है।[12] गुरु तो ज्ञान रूपी हीरो का व्यापार करते ही हैं, चाहे कोई ले, चाहे न ले। वे कहते हैं यदि तुम इस ज्ञान-रत्न से वंचित रह गये तो गुरु को दोष मत देना।[13]

❖❖❖❖

---

१ वही, शब्द १०७। २ वही, शब्द ११४।
३ वही, शब्द १०८। ४. वही, शब्द २३। ५ वही, शब्द ५४। ६ वही, शब्द ५४।
७ वही, शब्द ११५। ८ वही, शब्द ८४। ९. वही, शब्द ११४। १० वही, शब्द १०६।
११ वही, शब्द ९०। १२ वही, शब्द ८५। १३ वही, शब्द ७०।

कु - गुरु

जांभोजी ने जहां सद्‌गुरु का इतना महान महत्व प्रकाशित किया है वहां कु-गुरु अथवा ढोंगी गुरुओं की जी–भर भर्त्सना की है। इस प्रकार की विचारधारा के दर्शन प्राय. सभी संतों के साहित्य में होते हैं। डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दों में –

"नाथ संप्रदाय के अवसान काल तक हठयोगियों एव तन्त्रवादियो ने देश में गुरुवाद का बहुत ही विकृत रूप प्रचारित किया। समस्त देश अलख जगाने वाले गुरुओ से भर गया था। उनकी एक विराट वाहिनी अवश्य ही तैयार हो गई थी जो समय–समय पर जनता को आतंकित करती रहती होगी, इसीलिये सत कवियों ने जहां एक ओर सद्‌गुरु की शरण में जाने के लिये उपदेश दिया है वहीं उसके साथ ही उसकी पहचान पर जोर भी दिया है। उन्होंने ढोंगी गुरुओ से बचने के लिये चेतावनी भी दी है।"[1]

जांभोजी की वाणी से भी यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उस समय पाखंडी एवं आत्म–विस्मृत गुरुओं के मायाजाल ने जनमानस को आच्छादित कर रखा था। उनकी यह बात उनके विचार–विश्लेषण से और स्पष्ट हो जाती है.–

वे कहते हैं कि कलयुग मे "चोईस चेडा" (भूत विद्या) "कालंगकेडा" (मायावी) आदि पापवृत्ति वाले पाखंडी जन अपने को अधिकाधिक "कलाधारी" (सिद्धि संपन्न) के रूप में प्रस्तुत करेंगे।[2] दुनिया को भ्रम में डालने के लिये वे इस प्रकार के कार्य करेंगे जैसे अपने आसन को चक्रवत घुमा कर उस पर बैठना, मंत्रज्ञ एवं सिद्धि–संपन्न होने का अधिकार प्रदर्शित करना, अपने पाखंड के द्वारा काठ के निर्जीव घोडे में सजीवता दिखाकर, उसे दाना खिलाना तथा अधर आसन लगाना आदि। वे बाह्याभ्यंतर से मिथ्यावादी इन ऊपरी बातों को ही प्रचारित करेंगे। किन्तु इस प्रकार के पाखण्डपूर्ण कार्य करने वाले तथा इनके भुलावे में आने वाले दोनो "दग्ध" नाम के नरक में पड़ेंगे।[3]

वे ऐसे लोगों से सावधान रहने को कहते हैं।[4]

उनकी दृष्टि में एकमात्र ज्ञानी गुरु व सच्चे गुरु के अतिरिक्त शिष्य के मन को मोह एवं पापाचार से उपराम रखने वाला दूसरा कोई नहीं है।[5] उस फुफस को दलने (पीसने) से क्या लाभ, जब वह कण से रहित है?

जिस प्रकार तैलरहित "खली" पशुओं के योग्य ही रह जाती है और वह सस्ते मूल्य में बिकती है। छाछ से न शुद्ध पानी ही मिलता है और न दूध ही, वैसे

---

१ डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित, सुंदरदर्शन, पृ १८३।

२. जांभोजी की वाणी, शब्द ६०। ३ वही, शब्द ६०।

४. वही, शब्द २६। ५ वही, शब्द ७०।

ही अज्ञानी अथवा तथाकथित गुरु से मनुष्य को कोई लाभ नहीं है।[1] ऊसर भूमि में बीज बोना, रेत में तालाब बनाना तथा पानी रहित तालाब को पानी के लिये ढूढना आदि व्यर्थ प्रयास हैं वैसे ही इधर–उधर भटकने वाले, श्मशानों में नंगे रहने वाले और पाषाणों को पूजने वाले गुरुओं से कोई लाभ नहीं। उनमें कोई सिद्ध नहीं है। मनुष्य को उनके चक्कर में न पड़कर अपना असली मार्ग ढूंढना चाहिये।[2]

जाभोजी बार–बार बाह्याचारों को ही योगी के लक्षण मानने वाले ढोंगी गुरुओं से सावधान रहने की सलाह देते हैं। वे कहते हैं– सिर पर लम्बी–लम्बी जटा बढ़ाने वाले और अकारण ही वाद–विवाद करने वाले, जड–बुद्धि हैं। क्या उनसे किसी ने तत्व की उपलब्धि की है? साधु होकर माया से मोह रखने वाला अपराधी है। वह दण्ड का भागी होगा।[3]

यदि कोई नाममात्र का लक्षण नाथ है पर उसमें "गुणवंतोयोगी" यतिवर्य के लक्षण नहीं हैं तब उसके सामने माथा कैसे झुकाया जाय? यहां जांभोजी ने "सु–गुरु" और "कु–गुरु" का रामअनुज लक्ष्मण और किसी जमाती लक्ष्मणनाथ के बीच तुलनात्मक दृष्टि से भेद प्रतिपादित किया है।[4]

जाभोजी की दृष्टि मे "नाथ" कहलाने पर भी यदि वह बार–बार मरता है तो वह नाथ कहलाने का अधिकारी नहीं। दम्भी तथा स्वांग मात्र से "नाथ" कहलाने वाला, भव–बन्धन से मुक्त नहीं होगा।[5] वह जब स्वयं भवसागर से पार नहीं हो सकता तब वह दूसरों को क्या पार लगायेगा?[6] चाहे नाम से कोई राजेन्द्र, योगीन्द्र, शेषिन्द्र, सोफिन्द्र, चाषिन्द्र, सिद्ध तथा साध कहलाने वाला हो[7], उसमें यदि वाद, राग, द्वेष, सशय आदि हैं तो उसे गुरु, दीक्षित अथवा सस्कारी साधु कौन कहेगा?[8]

जांभोजी की दृष्टि में मूर्ख अथवा ढोंगी गुरु "वृषली" स्त्री के समान है।[9] वह देखता हुआ अंधा और सुनता हुआ बहरा है। वे ऐसे ही ढोंगी गुरुओं को, जो नगे पैर और लोहे का लगोट लगाये रहते हैं, कहते हैं कि काटो में बिना जुराब (खाल के बने) पैरो को तकलीफ होती है और लोहे का लंगोट कसने से शरीर को तकलीफ होती है[10], अर्थात् नगे पैर रहना तथा लौह का लंगोट पहनना ही साधुत्व के लक्षण नहीं हैं। जब तक ब्रह्मानुभूति नहीं हो जाती तब तक चाहे कोई नग्न रहने वाला ही क्यों न हो, योग के रहस्य को नहीं जाना जा सकता।[11] जो द्विधापूर्ण स्थिति से ग्रसित है वह न गुरु ही है और न चेला ही।[12]

इस दुनिया मे मिथ्यावादी पाखंडियो की कमी नहीं है किन्तु जांभोजी का आदेश है कि वे पाखंडी कांच और कथीर के समान हैं। उनमें अनुरक्त होना लाभप्रद नहीं है।[13] वे संसार भर के लोगों को नंगे रहने वाले एवं मादक द्रव्यों का सेवन करने

---

१. जाभोजी की वाणी, शब्द ११। २. वही, शब्द १६। ३ वही, शब्द ४४।
४ वही, शब्द ४६। ५ वही, शब्द ४६। ६ वही, शब्द ३२।
७ वही, शब्द ४१। ८ वही, शब्द ३४। ६. वही, शब्द २७। १० वही, शब्द २७।
११ वही, शब्द ४५। १२. जाभोजी की वाणी, शब्द ४५। १३ वही, शब्द ६६।

वाले पाखंडी गुरुओं के भ्रम में न पडने की सलाह देते हैं।[1] वे कहते हैं, जिसने योग–युक्ति का सार नहीं जाना, उसने माथा मुडा कर अपने को विद्रूप ही किया है। ऐसे गुरु और शिष्य अज्ञान के कारण, मोक्ष से वंचित रहे और अंत में नष्ट हो गये।[2] क्योंकि उन्होंने सिर तो मुंडाया, लेकिन मन को नहीं मुंडाया। न ही उसको वे मोह, मिथ्याभाषण तथा लोकभय से विमुक्त ही कर पाये।[3]

चाहे कोई योगी का वेश बनाकर अपने शरीर पर भस्मी का अनुलेपन करे, चाहे श्मशानों में बैठकर भूतों की सेवना (आराधना) करे किन्तु जांभोजी के मतानुसार ये क्रियायें आत्मलाभ में वैसे ही निरर्थक हैं जैसे घडे को औंधे मुंह रखकर उसमे वर्षा का पानी भरने की चेष्टा करना।

सच्चे गुरु के बिना जोगी, जंगम, नाथ, दिगम्बर, सन्यासी, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पडित, काजी, मुल्ला, जपिया, तपिया, यति, पीर आदि[4] यदि, वे "मनहठ" से कल्पित सिद्धांतों की रचना करने वाले हैं तो वे अल्पबुद्धि, आत्मप्रशंसक, कपटी व मिथ्यावादी हैं। उनके पास ऋद्धि–सिद्धि का लेश भी नहीं है।[5]

जांभोजी की दृष्टि में जटा बढाना, कान फडाकर मुद्रा पहनना और जीवहत्या करना, योगी के लक्षण नहीं हैं। उसको योगी का सम्मान नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि पत्थर तौलने की तुला पर हीरे नहीं तोले जाते।[6] अत. उनकी सलाह है कि उक्त प्रकार के पाखंडी गुरुओं के पास न जाओ। उनके पास प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं है। मोती समुद्र और सीप से ही प्राप्त किया जा सकता है उसको बरसाती क्षुद्र "खाले–नाले" में ढूंढना व्यर्थ है।[7] जो स्वयं भूले हुए हैं उनसे दूसरो को क्या लाभ हो सकता है ? अत लोगों को उनके भ्रम में नहीं आना चाहिये। जाभोजी कहते हैं जिस ठूंठ में पत्ते ही नहीं, उससे फूलों की चाह रखना कहां तक न्यायसंगत है? यद्यपि केले के पेड में कपूर पैदा होता है किन्तु उसके सभी पेडो में कपूर नहीं होता, उसी प्रकार वाचक ज्ञानी गुरु तो बहुत हैं परंतु उनमे सतगुरु बिरले ही होते हैं।[8] अतएव गुरु को देखभाल कर ही करना चाहिये।[9] सच्चे गुरु से ही आत्मसिद्धि प्राप्त होती है।[10] जो स्वयं मधुरभाषी नहीं है, अभय नहीं है, जिसने काम क्रोधादि अजर तत्वों का पाचन नहीं किया है तथा स्वयं मरने को तैयार नहीं है अपितु दूसरों को मारने को दौडता है, उसे कैसे अच्छा कहा जायेगा? जाभोजी की दृष्टि में दूसरों को उपदेश देने का अधिकार उसी को है जिसने पहले अपने जीवन मे उन सब बातो को क्रियान्वित किया है। वे कोरे वाचक ज्ञानी को उपदेश देने का अधिकारी नहीं मानते।[11]

❖❖❖❖

---

१. वही, शब्द १६।

२ वही, शब्द ११७। ३ वही, शब्द ८४। ४. वही, शब्द ४२।

५ वही, शब्द ६१। ६ वही, शब्द ४३। ७ वही, शब्द ३१। ८. वही, शब्द ७७।

६ जांभोजी की वाणी, शब्द ७८। १०. वही, शब्द १०८। ११ वही, शब्द ३०।

शिष्य व साधक

जामोजी ने शिष्य व साधक के लिये सालिया[1], सुगरा[2], गुरुमुखी[3], सुचियारा[4], सुगणा, गुणिया[5], उत्तमखेती[6] और अनधिकारी के लिये मनमुखी[7], नुगरा[8], थूल[9], लोह[10], कुफर[11], काफर[12], कुमति[13], कुपात्र[14], दानव[15], भूत[16], राक्षस[17], बड़राक्षस[18], चाडाल[19], करड़ा[20], आदि नामों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के मिश्रित नामों का प्रयोग अधिकांश शब्दों में एक साथ हुआ है।

पहले यहां हम उनकी अधिकारी अथवा उत्तम कोटि के शिष्य संबंधी विचारधारा को जानने की चेष्टा करेंगे।

जांभोजी की विचारधारा में गुरुमुखी धर्म का दोहन, साधन की अग्नि में तप कर शुद्ध हुए अत करण रूपी बर्तन में ही किया जा सकता है।[21] उनकी राय में मनुष्य को साधन संपन्न होने के लिये अपनी वृत्तियों को अंतर्मुखी बनाना चाहिये। बहिर्मुख होकर मन को दशों दिशाओं में भटकाने से कोई लाभ नहीं है।[22] उन्होंने गुरुमुख से कथित ज्ञानरूपी पवन से, पाप-ताप को उडाने का आदेश दिया है।[23] इसी प्रसग में उन्होंने महात्मा विदुर के दान को गुरुमुखी दान और कर्ण के दान को मनमुखी दान कहकर उसके फलाफल की ओर निर्देश किया है।[24]

जब साधक गुरुमुख धर्म को आत्मसात् कर लेता है तब उस गुरु और शिष्य में मतैक्य स्थापित हो जाता है।[25] जब तक साधक ऐसा नहीं कर लेता, तब तक उसे गुरु के सारगर्भित उपदेश का आशय समझ में नहीं आता और जब तक गुरु की तात्विक बात शिष्य के समझ में नहीं आती तब तक उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती।[26] मुमुक्षु साधक के लिये धर्म, जाति, संप्रदाय आदि का अभिमान भी उसे सब ओर से रिक्त करने वाला है। वह साधक को इस प्रकार हानि पहुंचाता है जिस प्रकार घुन अन्न कण को।[27]

जांभोजी की दृष्टि में वही शिष्य श्रेष्ठ है जो तन-मन से पवित्र हो, संयमी हो और सदा प्रसन्नचित्त रहने वाला हो। वह अपने कर्त्तव्य पथ पर अबाध गति से बढता चला जाय, दुनिया की एक भी न सुने। चाहे दुनिया उसको अपने कर्त्तव्यपथ

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द ७३। २. वही, शब्द १०७। ३ वही, शब्द २१।
४ वही, शब्द ७३। ५ वही, शब्द ७३। ६ वही, शब्द ८३। ७ वही, शब्द ९२।
८ वही, शब्द ९०। ९. वही। १० वही। ११ वही, शब्द ११२।
१२ वही, शब्द ११२। १३ वही। १४ वही, शब्द ५६। १५ वही, शब्द ११२।
१६ वही, शब्द ११२। १७ वही, शब्द ११२। १८ वही, शब्द ११२। १९. वही, शब्द ११२।
२० वही, शब्द ८३। २१ वही। २२ वही, शब्द ७। २३. वही, शब्द ३०।
२४ वही, शब्द ९२। २५ वही, शब्द ९२। २६ वही, शब्द ९२। २७ वही।

पर बढते देखकर, ईर्ष्यावश निंदा करे पर वह अपने कर्त्तव्य का पालन दृढता के साथ करता ही रहे।[१]

जांभोजी के कथनानुसार सत्य और उपकार के बल पर ही शैतान को निवृत्त कर शांति लाभ किया जा सकता है। जिस प्रकार पानी से तृषा शांत होती है, उनकी विचारधारा में पुर्णपुरुष गुरु से वही शिष्य लाभान्वित होता है जिसके हृदय की आंखें भी खुली हों। गुरु के लाभ से अंधे (अज्ञानी) वंचित ही रहते हैं।[२]

जांभोजी समस्त प्राणियों को युग–धर्म का बोध देते हुए, जन–जन के लिये जागरण का उद्घोष करते हैं। जागते हुए भी सोने का उपक्रम करते हैं, उन पर उन्हें बडा आश्चर्य होता है। उनका कथन है कि प्राणी का अपनी आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर न होना काल को अपने अतर में छिपा कर रखना है। प्राणी को न जाने कब विनाश लीला का शिकार होना पड़े, अतएव वे कहते हैं कि गुरु से उत्साह भाव के साथ ज्ञान की कुजी लेकर दिल पर पडे अज्ञान रूपी ताले को खोलना चाहिये।[३] किन्तु वह ज्ञान–कुंजी एकाग्रचित्त होकर ही गुरु से संलब्ध की जा सकती है।[४]

वे साधकों को, शरीर की बुराइयो को इस प्रकार (साधना की भट्टी में) भस्मसात् कर डालने को कहते हैं जिस प्रकार ईंधन के गठ्ठर को वैश्वानर मे डालकर जलाया जाता है।[५] साधक का ध्यान काया की क्षणभंगुरता की ओर आकर्षित कर उसे वे दृढ़तापूर्वक सींचने का उपदेश देते हैं, जिससे उसके द्वारा परमार्थ की साधना हो सके। उनका उपदेश है कि जिस प्रकार माली अपनी बाडी को सींचकर कोमल कुसुम एव मधुर फलों की उपलब्धि करता है,[६] उसी प्रकार मानव–तन से आध्यात्मिकता प्राप्त करनी चाहिये और गुरु की कृपा प्राप्त कर इस काया रूपी गढ में आत्मा की खोज करनी चाहिये। वे सावधान करते हैं कि, ऐसा न हो, तुम्हारे हृदय में काम–क्रोधादि चोर प्रवेश कर जायं।[७]

जो अधिक नम्र है, अधिक क्षमाशील है तथा जो सदाचार का पालन करता है, जांभोजी की दृष्टि में उसकी देह निर्मल है। उसको उन्नति के शिखर पर चढता हुआ स्पष्ट देखा जा सकता है।[८] उनकी दृष्टि में शिष्य व साधक वही अच्छा है जो "सागर" (ज्ञान गंभीर गुरु) की खोज करता है। आदि तत्व ब्रह्म की उपलब्धि उसी सागर से होती है। जांभोजी ने यहां यह भी कहा है कि जिसने प्रबल जिज्ञासा से मूल परमेश्वर को जानना चाहा, उसको वह प्राप्त हुआ।[९]

उत्कट जिज्ञासा ही ज्ञान–प्राप्ति का हेतु है, खेती भी तभी पकती है जब उसे कुछ पानी की प्यास होती है।[१०]

सांसारिक कामों में तो सभी अनपुरक्त रहते हैं परंतु जांभोजी ने उसी को प्रशंसनीय कहा है जो धर्म में अनुरक्त होता है।[१]

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ७६। २. वही, शब्द ७२। ३. वही, शब्द ८६।
४ वही, शब्द १५। ५ वही शब्द ८६। ६ वही, शब्द ८६।
७. वही, शब्द ८५। ८. वही, शब्द ६८। ६ वही, शब्द १७–१६।
१०. वही, शब्द ३०।

सुगराः- जांभोजी कहते हैं कि गुरु की सामर्थ्य पर 'सुगरा' जन को ही विश्वास होता है। जिसने गुरु को जान लिया, उसे ही गुरु की सामर्थ्य का प्रमाण मिला। वही गुरु मे सहज भाव में समाहित हुआ और उसी के मन की आशाओं की पूर्ति हुई।[२] गुरुमुख प्राणी को ही मार्ग मिलता है।[३] अडसठ तीर्थ हृदय गुहा में अवस्थित हैं, किंतु उनमें अवगाहन वही कर सकता है जो गुरुमुख हो चुका हो।[४]

साल्हियाः- जांभोजी कहते हैं, जो साल्हिया हुआ, अर्थात जो गुरु-दीक्षित हो चुका है, उसका मृत्युभय जाता रहा। वह जीवन-मरण से मुक्त हो गया। जांभोजी कहते हैं- जो गुणग्राही है, वह हमारा सगुणा शिष्य है। मैं सद्‌गुणों का दास हूं। जिसने सुगुणता प्राप्त करली, वे स्वर्ग जायेंगे। उत्तम गुणों से जिसने उच्च स्थान प्राप्त किया है, उसकी क्या शोभा कही जाय? उसका तो घर ही वैकुंठ है।[५]

थूलः- जांभोजी ने थूल की परिभाषा करते हुए कहा है कि जिसने मूल परमात्म-तत्व का अनुसंधान नहीं किया वह प्रत्यक्ष थूल है। थूल होने के कारण वह अज्ञानी है और अभिमानी है। उस पर नैतिकता का कोई प्रभाव नहीं पडता। उसके जीवन का वैसे ही नाश होगा जिस प्रकार निद्रावस्था में श्वासों का क्षय होता है।[६] वह भी थूल है जिसके पास दया-धर्म का अभाव है। जो घमंडी है, वह थूल है। थूल होते हुए भी जो स्वर्ग की कामना करता है उसके प्रति जांभोजी कहते हैं कि उसने अपने किस सुकृत कार्य के बल पर स्वर्ग प्राप्ति की आशा लगा रखी है? वह तो स्वर्ग से वंचित ही रहेगा। उन्होंने कहा है कि मैंने अपने उपदेश में ज्ञान का, सूक्ष्म विवेचन, भूल कर भी थूल के प्रति नहीं किया है।[७] क्योंकि जिज्ञासु भाव से जो उसे ग्रहण नहीं करता वह उससे लाभान्वित नहीं होता। कठोर हृदय वालों की तो दुर्गति ही होती है। जिसकी चित्तवृत्ति हीन है, वह श्रेयस् को प्राप्त नहीं होता। जैसे वर्षा सभी जगह, समान रूप से होती है पर उसके जल से दाख, ईख आदि मीठी वस्तुएं भी और निंबौरी, इन्द्रायण आदि कडवी वस्तुएं भी उत्पन्न होती हैं। इसमें पानी का दोष नहीं है। वैसे ही गुरु का उपदेश सबके लिये वेद स्वरूप है परंतु उस तत्व को कोई उत्तम कर्म करने वाला ही ग्रहण करता है।[८]

नुगराः- सद्‌गुरु शिष्य की समस्त भ्रांतियों का निराकरण कर सत्य का मार्ग बतलाता है परंतु ऐसा विश्वास जो सुगरे हैं, उन्हीं को होता है। जांभोजी कहते हैं कि जब सूर्योदय होता है तब सारा संसार प्रकाश से जगमगा उठता है लेकिन उल्लू की आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। उसी प्रकार जो सुगरे हैं, उनके हृदय में गुरु के ज्ञान का सूर्य उदय हुआ परंतु जो नुगरे हैं, उनके हृदय में अंधकार ही भरा रहा।[९]

जांभोजी की पक्की मान्यता है कि मनमुख को गुरु का मार्ग नहीं मिलता। वह जो करता है, वह सब व्यर्थ का भार उठाता है।[१] जैसे पाषाण पानी में रहकर

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द १६। २ वही, शब्द १०७।

३. वही, शब्द १६। ४ वही, शब्द १६। ५ वही, शब्द ७३। ६ वही, शब्द २०, ३८।

७ वही, शब्द ८३। ८ वही, शब्द २२। ९ जाभोजी की वाणी, शब्द १०७।

भी अंदर से सूखा ही रहता है, उसी प्रकार जीवनविधि को नहीं समझने वाला तथा भ्रम और विवाद मे भूला हुआ जीवित ही मरा हुआ है। विषयानंदी, आचार-विचार से शून्य और जो केवल लोक-कीर्ति से अनुरंजित है वह मूर्ख है। वह अपने मनहठ से जीवनमुक्त नहीं हो पाता।[२]

जांभोजी का कथन है कि गुरु के पथ पर कोई बिरला ही अग्रसर होता है। वे नुगरे की मन स्थिति का इस प्रकार सुंदर चित्रण करते हुए कहते हैं कि कदाचित् उसके हृदय में एक बार तो गुरुमुखी बनने की उमंग उठती है परंतु शीघ्र ही शांत हो जाती है। पर वीर वही है जो रणभूमि में धैर्य नहीं छोड़ता और जो धैर्य से विचलित हो जाता है उसे गुलाम बनना पडता है। नुगरे जीवन के उन्नत बनने में बाधक शक्तियों से नहीं जूझ सकते। जांभोजी ने इस प्रकार के व्यक्तियो को मूर्ख, गंवार आदि कहकर धिक्कारा है और उन्हें मजदूरी कर पेट भरने योग्य ही बतलाया है।[३]

जाभोजी कहते हैं, उसकी बात का कोई विश्वास नहीं, जिसने गुरु की पहचान नहीं की और मूल (परमेश्वर) को नहीं सींचा। वह थूल है, अज्ञानी है, इसलिए वह कुछ का कुछ बकता रहता है।[४] नुगरा बिना गुरु द्वारा उपदिष्ट हुए, वास्तविकता को नहीं समझ पाता।[५] जो व्यक्ति अपने मनहठ (मंनोकल्पित ज्ञान) से अपना आचरण निश्चित करता है, निश्चय ही यह आचरण विपरीतमार्गी होगा।[६] जिसने अपने जीवन में गुरु का महत्व नहीं स्वीकारा, वह निश्चित ही अपने साधना-पथ में सफल नहीं हो सकता।[७] गुरु ही जीवन की विधि बतलाने वाला है। जिसने जीवन-विधि को जान लिया उसे अपने जीवन-काल में तो लाभ है ही, मरणोपरांत भी उसे किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पडेगी।[८]

जो विपरीत क्रियाओं का अनुसरण करते हैं, उनका जन्म-मरण से छुटकारा नहीं हो सकता। जो भ्रांत हैं उन्हे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।[९]

साधारण (सांसारिक) लोग तो भ्रम के कारण ईश्वर की पहचान नहीं करते परंतु जो नुगरे हैं, वे वास्तविकता से पृथक् रहकर कुछ का कुछ चिह्नित करते हैं।[१०]

जांभोजी ने कहा है कि जो गुरु-निर्दिष्ट पंथ-नियमों को भग करने वाला है, वह निदक है, कृतघ्न है और कटुभाषी है। वह कफार, कुबुद्धि और कुपात्र है। जो जीवों की हत्या कर प्रसन्नता अनुभव करने वाला है, वह दानवता का दूत है। वह राक्षस ही नहीं, बडराक्षस है। उनके जीवन को व्यर्थ बतलाते हुए उन्होंने उनके कर्मों को चांडाल के सदृश बतलाया है।[११]

---

१ वही, शब्द १२०। २ वही, शब्द ३०।
३ वही, शब्द ८५। ४ वही, शब्द ३८। ५ वही, शब्द ४१।
६ वही, शब्द ४२। ७ वही, शब्द ४२। ८. वही, शब्द ६६।
९. वही, शब्द ७७। १०. वही, शब्द ६७। ११ वही, शब्द ११२।

अवतार भावना

अवतारवाद का मूल स्रोत हमे वेदों मे ही मिल जाता है। वेदों में कहा है– "अजायमानो बहुधा विजायते" अर्थात भगवान न पैदा होता हुआ भी बहुत प्रकार से पैदा होता है। विष्णु के प्रथम अवतार वामन का ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है। वहां विष्णु के वामन रूप से अभिप्राय उदय–अस्त समय के सूर्य से है। संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय सहिता, जैमिनीय ब्राह्मण आदि में अवतारों का उल्लेख मिलता है।

वैष्णवों में परब्रह्म के लीलावतार, पुरुपावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार, स्वरूपावतार, धर्मावतार, अर्चावतार आदि अनेक अवतार माने गये हैं।[1]

गीता मे स्वयं श्रीकृष्ण के श्रीमुख से भगवान के अवतार लेने के उद्देश्य की पुष्टि होती है, कि जब–जब धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब –तब भगवान अवतार लेते हैं। साधुओं की रक्षा और दुष्टों का दलन करने के लिये व धर्म–स्थापना के लिये ईश्वर युग–युग मे अवतार लेते हैं।[2]

भगवान का अवतार दिव्य और ऐच्छिक होता है। गीता मे कहा है– जन्म कर्मच दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वत.। श्री मद्भागवत पुराण में भगवान के असंख्य अवतार होने का उल्लेख हुआ है। जिस प्रकार अक्षय–जल जलाशय मे.से असख्य नहरे निकल सकती हैं, उसी प्रकार सर्वव्यापक परमेश्वर के अनंत अवतार हो सकते हैं।[3]

वैसे भगवान के चौबीस अवतार माने गये हैं। जिनमे प्रमुख वामन, मत्स्य, कच्छप, वराह, ऋषभ, नृसिंह, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध कल्कि आदि हैं। जैन धर्म के तीर्थंकर ऋषभ को और बौद्ध धर्म के संस्थापक बुद्ध को भी भगवान का प्रमुख अवतार माना गया है।

महाभारत में एक स्थल पर अवतारो की सख्या ६ तथा शांतिपर्व में दस मानी गई है। भागवत् मे भी अवतारो की संख्या सर्वत्र समान नहीं रखी गई है। भागवत् मे २२[४], २३[५], १६[६], और १० इस अनुक्रम से अवतारो का उल्लेख हुआ है। अवतारो की २४ और १० की संख्या का उल्लेख प्राय ग्रंथो में मिलता है।

---

१ देवर्षि रमानाथ शास्त्री, श्री कृष्णावतार, पृ १६–१७।

२. श्री मद्भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ७–८।

३ श्री मद्भागवत, प्रथम स्कंध, अध्याय ३।

४. श्री मद्भागवत, प्रथम स्कध, तृतीय अध्याय।

५ वही, द्वितीय स्कध, सप्तम अध्याय।

६ वही, एकादश स्कध, चतुर्थ अध्याय।

"अवतरणमवतार:" ऊंचे स्थान से नीचे स्थान पर उतरने को अवतरण या अवतार कहते हैं। परब्रह्म अपने धाम वैकुंठ से अवतरित होकर यथेच्छ स्थान मे आ जाते हैं– दीखने लग जाते हैं– इसीलिये अवतार कहे जाते हैं।[1]

अक्षर ब्रह्म वैकुंठ है और वह व्यापक है इसलिये उसे "व्यापि वैकुंठ" भी कहते हैं। और वह अक्षर उनका धाम है। परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान सर्वदा अपने उस धाम मे ही विराजते हैं। जब उन्हें प्रकट होने की इच्छा होती है तब वे अपने उस व्यापि वैकुंठ धाम से इस प्रपंच मे दीखने लगते हैं यही प्रभु का अवतार है।[2]

भगवान जगत के उद्धार के लिये तथा अपनी विशेष लीला के लिये अवतार लेते हैं। लघुभागवतामृत मे ब्रह्मांड पुराण के वचन इसका समर्थन करते हैं।[3] अवतारों का जगदुद्धार और विशेष लीला ही कार्य है। श्री वल्लभाचार्य ने भी अवतार के मूल मे लीला को ही माना है।[4] अतः वह व्यापक पुरुषोत्तम जगत् के कल्याणार्थ और विशेष लीला करणार्थ, शुद्ध सत्व को आधार बनाकर तथा अपनी माया से अनावृत्त होकर, लोक के सामने आ जाता है, वही परब्रह्म का उतरना व अवतार कहलाता है।[5]

पंथ संस्थापक व संप्रदाय--प्रवर्तक संतों तथा आचार्यों को उनके अनुयायियों द्वारा अवतार मानने की श्रद्धायुक्त परम्परा रही है। तथा अनेक पंथ व सप्रदाय संस्थापक संतों और आचार्यों ने स्वयं अपने को भगवान का अवतार कहा है। संतों ने अपने को अवतार बताने वाली बात चाहे किसी भी दृष्टिकोण से कही हो परंतु उनकी वाणी व ऐतिह्य में इस प्रकार के प्रमाणों की कमी नहीं है। अपना आराध्य निर्गुण निराकार को मानते हुए भी संतजन अवतारवाद के तत्व को नहीं छोड पाये हैं।

स्वामी ब्रह्मानंदजी ने जांभोजी के अवतार विषयक मंतव्य के संबंध मे लिखा है– "यह निश्चित बात है कि जाभोजी अवतार मानने के पक्ष मे पौराणिक सिद्धांत के पक्षपाती थे।"[6] मुंशी रामलालजी[7] व स्वामी रामानदजी ने भी उक्त प्रकार की ही बात कही है।[8]

जांभोजी ने अपना परम आराध्य निरावलम्ब स्वयंभू को बताया है जो आगे उत्तरोत्तर उनके आध्यात्मिक जीवन मे विष्णु नाम से अधिक प्रतिष्ठित हुआ है।

जांभोजी की विचारधारा में आदि विष्णु अवतार लेता है। उन्होंने अपनी वाणी में अवतार शब्द का प्रयोग करते हुए, पूर्व मे नव अवतारों को अपना ही स्वरूप

---

१ देवर्षि रमानाथ शास्त्री, श्री कृष्णावतार, पृ ६। २ वही, पृ १०।

३. श्री चन्द्रदान चारण, अलखिया संप्रदाय, पृ. ६।

४ सुबोधिनी (भागवत् तृतीय स्कंध)।

५ देवर्षि रमानाथ शास्त्री, श्री कृष्णावतार, पृ २०।

६ जंभसार की भूमिका।

७. विश्नोई धर्म वेदोक्त। ८. जंभसार, पृ ५३०।

मानकर नमस्कार किया है।[1] उन्होंने मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध और इसी श्रेणी में अपने को अवतारी मानते हुए उनके कल्याणकारी कार्यों व लीलाओं का वर्णन किया है।[2]

जाभोजी ने निर्गुण और सगुण के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिये स्वय को अवतार के रूप में उपस्थित किया। वे स्वयं को "विष्णु" सिद्ध करते हुए एक स्थल पर किसी राजपुरुष को "विष्णु" (स्वयं जांभोजी) से वाद-विवाद न करने की सलाह देते हैं। अपना अवतार विषयक परिचय देते हुए वे कहते हैं- वह युगानुयुग का योगी है, वही इस मरुस्थल पर "सतगुरु" के रूप मे प्रकाशित हुआ है तथा आसन जमा कर बैठा है।[3] जांभोजी अपने को अवतारी मानने के अर्थ में कहते हैं, हम एक क्षण में समस्त जीव योनियो का पोषण करते हैं।[4] हमने गहरे नीर वाली भूमि मे अवतार लिया है।[5] जो परमात्मा समस्त प्राणियो के हृदय में चैतन्य रूप से जाग्रत है तथा जो "हज" और "काबे" में भी जाग्रत है वही परमात्मा इस मरुस्थल भूमि पर जाग्रत हुआ है।[6] इस विशाल भूमि पर अनेक विशाल पुरुष जन्म लेगे पर इस स्थल पर तो मैं स्वयं (विष्णु) ही जाग्रत हुआ हूं।[7]

जांभोजी स्वय को बारह कोटि जीवों के उद्धार के लिये जंबू द्वीप में अवतरित होना मानते हैं।[8] उन पर "बाडे हुंता जीव" को मुक्त करने का उत्तरदायित्व है।[9] नृसिहावतार मे प्रह्लाद के साथ अपनी वचनबद्धता के कारण उन्हें अपने धाम से जम्बूद्वीप में बारह कोटि जीवो के कल्याणार्थ आना पडा।[10] वे अपने शिष्यो से कहते हैं कि मैं नर-नारायण (मैं नर पूरोस) हू, मुझ "निरहारी" को देखो और प्राप्त करो। जिसने चारों खंडों के मध्य अपनी लीला का विस्तार कर रखा है, वही मैं तुम्हें तेतीस कोटि मोक्षार्थियों के मार्ग पर प्रवृत्त करने आया हूं।[11] मेरा प्रसार "उत्तमदेश" में आरंभ हुआ है।[12]

मैं आदि मुरारी उत्पन्न हुआ हूं।[13] मैं वही हूं जो सृष्टिपूर्व अव्यक्त रूप में था।[14] मेरी आदि उत्पत्ति को कोई बिरला ही जानता है।[15] वे इस प्रदेश के प्रमुख समुदाय जाटों को संबोधित कर कहते हैं कि, हे जाटों! सुनो, मैं तुम्हारे लिये "सुरनर" के संदेश स्वरूप हू।[16] मेरे उस स्वभाव को पहचानो जिससे जीवों को मैं तेतीस कोटि की श्रेणी मे पहुंचाता हूं।[17] मैं ही तुम्हारे लिये अकेला "प्रकट ज्योति" हूं। मैं बारह कोटि जीवो के कल्याणार्थ आया हूं। उनमे से एक भी जीव रह जाय तो गुरु और चेले को लज्जित होना पडे।[18]

---

१ जंभेश्वर वाणी। २ वही, शब्द ६४, २६, ५०। ३ वही, शब्द ८५।
४ जांभोजी की वाणी, शब्द ८५। ५ वही, शब्द ६७। ६. वही, शब्द ५०।
७ वही, शब्द ५०। ८ वही, शब्द ११८, ५८, २६, ६७। ९ वही, शब्द १११।
१०. वही, शब्द ६७, १११, ११८,। ११ वही, शब्द ७२, १११, २६। १२ वही, शब्द ८५।
१३ वही, शब्द ६४। १४ वही, शब्द६४। १५ वही, शब्द६८। १६ वही, शब्द ११४।
१७ वही, शब्द १११। १८ वही, शब्द ११८।

मैंने भूतकाल में नौ बार राक्षसो का नाश किया, अब दसवीं बार "कालंग" नाम के राक्षस की बारी है।[1] मैं ही दया रूप तत्व का प्रतिपादन करता हूं और मैं ही संहार रूप से सबका हनन करता हूं।[2]

मैं उत्तम मोक्षाधिकारी जीवों की खोज करने वाला हू।[3] मैं स्वर्ग की सीमा पर खडा हूं जो मुझ से मिलेगे, मैं उनके अभीष्ट को सिद्ध कर दूगा।[4]

समुद्र मथने, सहस्रार्जुन को मारने, लका से सीता को वापस लौटाने, कंसासुर को हराने आदि कार्य के संबंध में जांभोजी कहते हैं कि मैंने ही अवतरित होकर उक्त कार्य किये थे।[5]

अवतार किसी न किसी कारण से ही होता है। जांभोजी ने अपने अवतार लेने के कारणों पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि मैंने अदगी दागण, अगजागंजण, उनथनाथन, अनूनवावण,[6] किसानों के लिए संदेश स्वरूप होकर तथा सिंकदर (लोदी) को चेताने के निमित्त अवतार लिया है।[7] उन्होंने अपने कार्यों का उल्लेख किया है, जो उन्होंने अपने जीवन में किये— "ऊंनथनाथन", "कुपहका पोहमा आंण्या", "पोह का धुर पहुंचाया", "तेतीसां की बरग बहां म्हे", "बारा थाप", "घणांन ठाहर", "डीले डीले कोड रचायो"[8], "काहिको खैंकाल कियो", "पार गिराये", "काही दोरे दीयू"[9] आदि।

जांभोजी की उक्त विचारधारा से हमें उनके अवतार विषयक मतव्य का भलीभांति परिबोध हो जाता है। जिस प्रकार उनकी वाणी में अवतारवाद का पूर्ण समर्थन हुआ है, उसी प्रकार उनके उत्तर शिष्यों की साखियों मे भी अवतार महिमा का वर्णन बडे विश्वास के साथ हुआ है।

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ८५। २. वही, शब्द ६७ (शुक्लहंस) ३. वही, शब्द ४६।
४. वही, शब्द ४६। ५ वही, शब्द २६, ५८, ६५, ६७, ८५।
६ वही, शब्द ६७। ७ वही, शब्द २६। ८ वही, शब्द २६। ६. वही, शब्द ६७।
विशेष. अदगी दागण—जिसको दागा नहीं जा सकता था। अगजा गजण—जिसका गंजन नहीं किया जा सकता था। ऊंनथनाथन — जो नाथे नहीं जा सकते। अनूनवावण— जो किसी के सामने नहीं झुकते थे। (उनको भी जांभोजी ने अनुकूल बनाया)।

कुपह का पोहमा आण्या—कुपथगामी को रास्ते पर लाना। पोह का धुर पहुंचाया—पथिक को उसके ध्रुव स्थान पर पहुंचाया। तेतीसां की बरग बहा म्हे—तेतीस कोटि देवों के मार्ग का अनुसरण। बारा थाप—बारह कोटि जीवों की मोक्ष के लिये स्थापना करना। घणांन ठाहर—अनेको को शांति पहुंचाई। डीले डीले कोड रचायो—जन जन मे आत्मकल्याण का उत्साह भरना। काहिको खैंकाल कियो—कइ एक दुष्टों का नाश किया। पार गिराये—मोक्ष। दोरे दीयूं—नरक वास।

विष्णु

भारतीय धर्म साधना में भगवान विष्णु का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक देवताओं में विष्णु प्रमुख देव हैं। ऋग्वेद में विष्णु देवता के रूप में ग्रहण किये गये हैं।[1] वहा यज्ञ रूप विष्णु की पूजा होती थी।[2]

"विष्णु दिनज्ञ का बल धारण कर मेघ का आच्छादन हटाते हैं।"

"विष्णु मनुष्यों को अन्न देकर हर्षित करते हैं।"

"विष्णु ने अकेले ही धातुगण, पृथिवी, द्युलोक और समस्त भुवनों को धारण कर रखा है।"[3] जैसाकि वैदिक आर्य प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे, वह स्थूल प्राकृतिक रूप की पूजा न होकर उसकी अधिष्ठात्री मूल चेतन–शक्ति की पूजा थी।[4]

ब्राह्मण युग में विष्णु की एकता यज्ञ के साथ की गई है– "यज्ञो वै विष्णु"। ब्राह्मण ग्रंथो में विष्णु असुरों से पृथ्वी तथा सर्वशक्तिमत्ता छीननेवाले गौरवशाली देवता के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

पुराणों में विष्णु एव विष्णु के नाना अवतारों की कथा दी गई है। कालिदास ने अपने काव्य "मेघदूत" में गोपधारी विष्णु का स्मरण किया है।[5] गोपधारी विष्णु भगवान श्री कृष्ण हैं। विष्णु ने ही कृष्ण रूप से अवतीर्ण होकर कंस का वध किया था।

विष्णु का मूल "विश" धातु में भी कहा जाता है, जिसका अर्थ प्रवेश करना है। तैत्तिरीय उपनिषद् का कथन है कि "इस संसार को रचने के बाद वह (विष्णु) इस में प्रवेश कर गया।"[6] पद्मपुराण के अनुसार भगवान के रूप में विष्णु प्रकृति में प्रवेश कर गया– "स एव भगवान् विष्णु. प्रकृत्याम् आविवेश।"

जांभोजी ने विष्णु के सर्वशक्तिसंपन्न, निराकार, निरावलम्ब रूप को ही स्वीकार किया है। उनके विष्णु कबीर के परमतत्व राम की भांति हैं। उन्होने अपने प्रथम शब्द मे ईश्वर वाचक नामों में "गुरु" शब्द का प्रयोग किया है। चौथे, पांचवें, छठे शब्द मे क्रमश. "निरंजन शंभु" "निरालम्भ शंभू", "अल्लाह अलेख अडाल अजोनी शंभू" नामो का प्रयोग हुआ है। सातवे शब्द मे "पारब्रह्म", "परशुराम" तथा उसके साथ विष्णु नाम का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों में विष्णु के अतिरिक्त ईश्वर के अन्य नामों को देख कर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि संभवतः जांभोजी ने सार्वजनीन सुलभता को दृष्टि में रख कर, अपने द्वारा संस्थापित विश्नोई पंथ की विधिवत स्थापना के पश्चात ही विष्णु के नाम, जप तथा उसकी आराधना का महत्व

---

१. अष्टक १, अध्याय २, सूक्त २२। २ वही, २–२–१५६–४।
३. वही, २–२–१५४–४। ४ पं रामगोविन्द त्रिवेदी, हिन्दी ऋग्वेद की भूमिका।
५ मेघदूत, १/१५। ६. बलदेव उपाध्याय, भागवत संप्रदाय, पृ. ६३।

प्रतिपादित किया एवं विष्णु नाम को 'मंत्र' रूप में स्वीकृत किया होगा। ऐसा करने में उनका लक्ष्य संभवत- यही था कि अपनी भावभूमि में "निर्गुण–निरावलंब" ईश्वर नाम सबके लिये सुबोध एवं ग्राह्य नहीं हो सकता था। जामोजी ने पंथ स्थापना के इसी परिप्रेक्ष्य में विष्णु नाम की सर्वाधिक श्रेष्ठता को स्वीकार किया। विश्नोई पंथ के विविध मंत्रों में "विष्णु" नाम की ही प्रमुखता है. इससे भी यही अनुमान पुष्ट होता है।

जांभोजी के कुल शब्दों में क्रमश: ५, १३, १४, १५, १७, २३, २७, ३०, ३१, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३९, ५०, ५४, ६४, ६७, ६८, ६९, ७०, ७७, ९७, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०६, ११०, ११९ और १२० वें शब्द में न्यूनाधिक रूप से विष्णु की आराधना करने का उल्लेख हुआ है। परंतु विष्णु आराधना तथा "विष्णु–मंत्र" के नाम जप का प्रमुखता से उल्लेख शब्द १३, ३१, ९७, १०२, ११९ और १२०वें में हुआ है। ३० की संख्या वाले शब्द का तो नाम ही "विष्णु कुंजी" है। इस शब्द के सबंध में विश्नोई पंथ की धारणा है कि जिस प्राणी को यह शब्द अंतकाल के समय सुना दिया जाता है, वह प्राणी, यमदूतों के भय से मुक्त होकर सुख को प्राप्त होता है।

जिन शब्दों में प्रमुखता से "विष्णु" का उल्लेख हुआ है उनमें भी कहीं–कहीं विष्णु के अर्थ में "हर", "हरि", "शार्ङ्गधर", "कृष्ण" आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं। ऐसा होने में हम जांभोजी की समन्वय दृष्टि का ही दर्शन करते हैं।

जांभोजी ने अपने शब्दों में विष्णु की "भलमूल" (विश्वमूल) सींचने के रूप में आराधना को कहा है, जिसकी आराधना युधिष्ठिर, प्रह्लाद और राजा हरिश्चन्द्र ने की तथा जिसकी आराधना के फलस्वरूप भक्तप्रवर प्रह्लाद ने पांच कोटि प्राणियों को, सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने सात कोटि प्राणियों को और सत्याचरण करने वाले युधिष्ठिर ने नव कोटि प्राणियों को मोक्ष का अधिकारी बनाया।[1] उन्होंने उस मूल को सींचने (आराधने) का फल मीठा बतलाया है। वे स्थान–स्थान पर उस मूल–विश्वमूल विष्णु को सींचने एव उसकी खोज करने का उपदेश तथा उसकी आराधना करने का आग्रह करते हैं।[2]

जाभोजी कहते हैं कि करनी और कथनी के अंतर को तिरोहित करो तथा संशय और निन्दा का सर्वथा त्याग कर एकाग्र मन से विष्णु का जाप करो। विष्णु के संमुख अपने को समर्पण करदो। वे विष्णुभक्ति करने वालों को यह पक्का विश्वास दिलाते हैं कि यदि तुमने मेरी इस विष्णु आराधना की आज्ञा का पालन किया

---

१. जैसे वैष्णव संप्रदाय में पद्मनाभ, त्रिविक्रम, कपिल, मधुसूदन आदि परम भक्त माने गये हैं वैसे ही विश्नोई पंथ में प्रह्लादादि चार विष्णुभक्तों की गणना की गई है।
२. जब भक्ति का केन्द्रबिन्दु (मूल आधार) भगवान विष्णु होते हैं तब वह विष्णु भक्ति कहलाती है और उसका भक्त वैष्णव कहलाता है। इसके साथ अहिंसा और सदाचार का अनुबंध बहुत दृढ़ता के साथ रहता है।

तो तुम्हें निश्चय ही मोक्ष की उपलब्धि होगी।[1] यदि तुम कृष्ण की ओर उन्मुख होकर चले तो जीवन को सार्थक करते हुए संसार के दुःख द्वंद्वों से पार हो जाओगे।[2] जिस परमेश्वर विष्णु की आराधना युधिष्ठिर ने की, उसी की आराधना तुम करो। बिना हरि की आराधना के प्राणी "विष्णुधाम" का अधिकारी नहीं बनता।[3] वे कहते हैं – जिसकी हरि मे पूर्ण अनुरक्ति है तथा जो अपनी आशाओं से निराश्रित हो चुका है उसे वह हरि "नारायण" अथवा "नर" रूप में अवश्य मिलते हैं और मोक्ष के द्वार प्रशस्त करते हैं।[4] किन्तु विष्णु में दृढ आस्था होनी चाहिये।[5]

जांभोजी मूर्ख और भ्रमित प्राणी को सतत सावधान करते हैं तथा आयु के प्रतिक्षण क्षीण होने की ओर संकेत कर उसे पूछते हैं– तू हृदय की जडता को भंग कर क्यों नहीं सावधान हुआ? तथा गुरु के निर्दिष्ट मार्ग पर क्यों नहीं चला? ऐसा न कर निश्चय ही तू मूर्खता करता है और व्यर्थ का भार उठाता है।

तू दुनिया के उपहास की बिना परवाह किये बार–बार विष्णु मंत्र का जप कर।[6] जिस प्रकार एक–एक पाई के जोडने से लाखों रुपये एकत्रत हो जाते हैं वैसे ही विष्णु–विष्णु करने से उसके नाम का संग्रह होता है। उस एकत्रित विष्णु नाम के मूल्य में अमूल्य वैकुंठ धाम की प्राप्ति होती है।[7] अतः अपने शरीर रूपी खेत में विष्णु के नाम रूपी बीज को बोना चाहिये। जांभोजी दृढ विश्वास के साथ कहते हैं कि तुम प्रमाण के लिये लिख रखो, यदि तुमने इस बीज को बोया तो यह तुम्हें अनन्त गुना अधिक लाभ देगा।[8] गुरु से पूछकर जो विष्णुदेव के मार्ग पर अग्रसर होगा, वह सुखी होगा।[9] "श्रेष्ठमूल" विष्णु की आराधना से, उसके स्मरण से, प्राणी आवागमन से मुक्त हो जाता है।[10] शार्ङ्गधर अपूर्व धर्म को देने वाला है।[11] विष्णु को जपने से धर्म होता है।[12] पापो से छुटकारा मिलता है।[13] विष्णु–विष्णु मंत्र का जप करने से मन स्थिर होता है।[14] काम–क्रोधादि का शमन होता है।[15] प्राणी यमपाश से आबद्ध नहीं होता। उसके जपने में अनंत लाभ है। अतः प्राणी को बार–बार विष्णु का नाम लेते रहना चाहिये।[16]

"पाहलमंत्र" में जांभोजी ने विष्णु नाम को "जीमने" (भोजन करने) को कहा है। वहां कहा है कि आराधना के द्वारा जो विष्णु को स्पर्श करता है वह वस्तुत अमृत का पान करता है। जो उसको जपता है वह भवसागर से पार हो जाता है।[17] जांभोजी कहते हैं, यदि विष्णु का नाम लेने में जीभ थकती है तो ऐसी जीभ के बिना ही रहना चाहिये।

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द २३। २. वही, शब्द ६६। ३ वही, शब्द ७०।
४ वही, शब्द १०२। ५ वही, शब्द ३३। ६. वही, शब्द १२०। ७ वही, शब्द ११६।
८ वही, शब्द १०३। ६ वही, शब्द ३०। १०. वही, शब्द ३१। ११ वही, शब्द ६८।
१२. वही, शब्द १०२। १३. वही, शब्द १०२। १४ वही, शब्द ६७। १५ वही, शब्द १५।
१६ वही, शब्द ६७। १७ वही, शब्द ३१।

वह विष्णु सहस्त्रों नामों से, सहस्त्रों स्थलों में, सहस्त्रों गांवों में, आकाश सदृश चौदह भुवन, तीनों लोक, सप्त पाताल और जम्बू द्वीप में तत्त्व रूप से सर्वत्र समाहित है। ऐसा गुरु के कहने से तथा अन्य अनेक (शास्त्रादि) प्रमाणो से प्रमाणित है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण को ही लीजिये कि वह विष्णु यत्र–तत्र–सर्वत्र समस्त छोटी–बडी जीव योनियों का उत्पादन एवं संचालन करता है।[1] और वह आवश्यकतानुसार समय–समय पर ऋतुओं में परिवर्तन करता रहता है।[2] वह तिल में तैल और पुष्प में गंध की भाति पंचतत्व में प्रकाशित है।

वह विष्णु जीवन का रक्षक है। पृथ्वी का पालन करने वाला है। विष्णु प्राणों का आधार है। विष्णु ही जीवन का मूल है। विष्णु ही उत्पत्ति, स्थिति, संसृति व्यापार का उत्पादक है। वह असंभव को संभव बनाने मे समर्थ है। जांभोजी कहते हैं– उसके महान–महान चरित्रों का कहां तक वर्णन किया जाय।

जांभोजी के पाहलमंत्र में भी विष्णु के स्वरूप का यही दिग्दर्शन होता है; यथा "शुभ करतार", (शुभ कर्मों की प्राप्ति कराने वाला अथवा वह शुभकर्त्ता है) "निर्तार" (उद्धार करने वाला है) "भवतार" (भवसागर से पार लगाने वाला है) "धर्मधार" (धर्म को धारण करने वाला है) और "पूर्व एक औंकार" (वह सृष्टिपूर्व ओंकार स्वरूप था)।

"वृहन्नवण" में भी विष्णु के इसी भाव के दर्शन होते हैं। वह तीनों भुवनों को तारने वाला है। स्वर्ग और मोक्ष उसकी कृपा से प्राप्त होते हैं। उसको जपने से आवागमन मिट जाता है। विष्णु के गुणों का अत नहीं है।

विष्णु संबंधी जाभोजी की इस विचारधारा में हमें विष्णु–विष्णु जप, आराधना तथा उसके द्वारा मिलने वाली सफलता का स्पष्ट सकेत मिलता है। जाभोजी ने विष्णु को जीवन का मूल, अनंत गुणसंपन्न एवं उसे मोक्ष को देनेवाला माना है।

❖❖❖❖

---

१ वही, शब्द ६७, ३४। २ वही।

आराधना

आध्यात्मिक क्षेत्र मे मानव को उन्नत एवं महान बनाने में ईश्वर की आराधना, उसका एक महान संबल है, परन्तु जो ईश्वर को न पहचान कर उसकी आराधना नहीं करते हैं वह निश्चय ही अधोगति को प्राप्त होते हैं।

जांभोजी ने विष्णु की आराधना न करने वाले मनुष्य के जन्म को इस प्रकार व्यर्थ बतलाया है जिस प्रकार आक का "डोडा" और खींप (प्रसारिणी) की फलियां, जो बिना किसी उपयोग के सूखकर जंगल में नष्ट हो जाती हैं।[1] इतना ही नहीं "विष्णु–विष्णु" नामोच्चारण नहीं करने वाले मनुष्य का कनिष्ठ जातियों में जन्म होगा। उसको शहरों में "कीर" और कहार होकर भृत्य का जीवनयापन करना पडेगा तथा उसे अपने कंधों पर बोझा ढोना पडेगा।[2] जांभोजी कहते हैं जो विष्णु का जप नहीं करता है उस मनुष्य के अन्नाहार से बने मांस, रक्त से युक्त स्थूल देह की कोई सार्थकता नहीं।[3]

प्राणी ने यदि अपनी जीवितावस्था मे "विष्णु–विष्णु" के नाम स्मरण का सग्रह नहीं किया तो उसका यम द्वारा त्रसित एवं विनष्ट होना अवश्यम्भावी है।[4] वे इस बात को इसी पुनरावृत्ति के साथ कहते हैं कि जिस प्राणी ने विष्णु को नहीं जपा तथा मूल की खोज न कर डालियों को ही खोजता रहा, कुछ कर सकने की स्थिति –जीवनकाल की स्वस्थावस्था– में विष्णु की आराधना नहीं की तथा उससे परिचय नहीं किया तो वह काल का इस प्रकार ग्रास होगा जिस प्रकार "धीवर" के जाल मे मछलियां फंस कर काल का ग्रास बनती हैं।[5]

अवकाश के समय भी जो मनुष्य अपनी "करनी" की शुद्धता के लिये विष्णु का स्मरण नहीं करता, वह गावों में भेड, शहरो मे शूकर और जगल मे "ढींच" (श्वेत बडकाग) की योनि मे जन्म लेगा तथा वह अपने जीवन का निर्वाह विष्ठा पर ही करेगा। वह नरक का भागी होगा। वह "ओडों" (बेलदार) के घर गधा बनकर मिट्टी तथा पत्थर ढोने का कार्य करेगा। जांभोजी कहते हैं यदि कोई प्राणी इस प्रकार के दुस्सह दुःख भोगता है तो वह उसकी करनी का ही एक मात्र प्रतिफल है, इसमें भगवान विष्णु का कोई दोष नहीं है।[6]

जाभोजी प्राणी को उद्बोधित करते हुए कहते हैं– क्यों सोये पडे हो? तुमने अपना मन विष्णु के अतिरिक्त अन्य किस आशा पर स्थिर कर रखा है? दिन मे तो

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द २७। २ वही, शब्द १३।
३ वही, शब्द १३। ४ वही, शब्द ६४। ५ वही, शब्द ३१।
६ वही, शब्द १३।

खैर! तुम काम की अधिकता मे विष्णु को भूले रहे पर तुम तो अवकाश के समय रात्रि में भी उसे भूल रहे हो। माना कि दुनिया के प्रपच एवं लगाव तुम्हारे बहुत हैं, परंतु भाई! रात–दिन, इन्हीं मे लगे रहने में तेरी कुशल नहीं है।[१] अत. वे कर्म–सिद्धांत का बोध देते हुए कहते हैं कि, तू हाथों से जीवन निर्वाह के लिये काम करता हुआ हृदय से विष्णु का नाम ले।[२] उनकी राय है कि सिवाय उस हरि के दूसरे किसी की दुहाई मत मान। सिवाय एक परमात्मा के दूसरा कोई मुक्ति का साधन नहीं है।[३]

जाभोजी द्वारा प्रतिपादित २६ धर्म–नियमों में पाचवां धर्म–नियम सायंकाल विष्णु के गुण–वाचन का विधायक है।[४] शब्दों में भी कुछ स्थलो मे, विशेषकर सायकाल विष्णुनाम जप एव गुणगान करने का विधान है। संभवतः जांभोजी ने यह विधेय कृषि वर्ग की इस सुविधा को ध्यान मे रखते हुए ही किया होगा कि प्रात. से सायंकाल तक वे अपने जीवन–निर्वाह के कार्यों में निरत रहते हैं पर सायंकाल अवकाश का समय होता है और तब विष्णुनाम निश्चिंतता से लिया जा सकता है। इसी कारण उन्होंने विष्णु नाम को सायंकाल में जपने का अनिवार्य नियम रखा है।

❖❖❖❖

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ६७। २ वही, शब्द ६७। ३ वही, शब्द ६७।
४. उनतीस धर्म की आखडी।

ईश्वर-विमुखता

जाभोजी ने उस व्यक्ति को मंद–भाग्य बताया है, जिसने "गुरु" की पहचान नहीं की तथा ईश्वर से संबंध नहीं जोडा।[१] जिसने "गुरु" को नहीं पहचाना और जिसने "मूल" को नहीं सींचा, वह "थूल" है और इसलिये वह विश्वास करने योग्य नहीं।[२]

जांभोजी ने ईश्वर–साधना के मार्ग में ज्ञान और धर्म–संस्कारों से रहित "थूलो" से सावधान रहने और उनकी संगति से बचने का अपनी वाणी में उल्लेख किया है।[३] उन्होंने विष्णुनाम को अपनी जिह्वा से लेने में भी कठिनाई अनुभव करने वाले को काफर और शैतान बताया है।[४] जो हरि को नहीं मानता, वह शैतान है।[५]

अन्य देवोपासना का निषेधः-

जांभोजी ने "मूल विष्णु" के अतिरिक्त "कुमूल" रूप अन्य देवों की उपासना का निषेध किया है।[६] वे कहते हैं मूल विष्णु की आराधना व उसके स्मरण के अतिरिक्त "कुमूल"– भैरव, वैताल, क्षेत्रपाल, बावन वीर, चौंसठ योगिनी, महामाया, वासुकि, शेष, यति, तपस्वी, ऋषि, पीर आदि– का सुमरण क्यों किया जाय? क्योंकि ये सब मां–बाप के संयोग से जन्म लेने वाले तथा मरणशील जीव हैं।[७] इनकी उपासना से मनुष्य को श्रेयस् एवं अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। जांभोजी उस आराधना को निषिद्ध करते हैं जिसकी आराधना का कोई अच्छा फल नहीं निकलता हो।[८]

विशेष– मूल (भलमूल) और कुमूल से यहा दैवी संपदा और आसुरी सपदा से भी तात्पर्य लिया जा सकता है।

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द १००। २ वही, शब्द ३५।
३ वही, शब्द ३६, ३७, ३६। ४ वही, शब्द ५०। ५ वही, शब्द १०६।
६ वही, शब्द १५। ७. वही, शब्द ५, ६७। ८ वही, शब्द १५।

ब्रह्म-निरूपण

अवांग मनसागोचर ब्रह्म का ठीक–ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता है। अव्यक्त ब्रह्म को किस आधार से व्यक्त किया जाय? ब्रह्मानुभूति को यथातथ्य उसी रूप में व्यक्त कर देना सरल नहीं है। यद्यपि उसके निर्वचन मे रूपको, प्रतीकों, दृष्टातों आदि का सहारा लिया जाता है तदपि उसका पूर्णरूपेण निर्वचन संभव नहीं है। कभी–कभी तो उसके संबंध में हल्के संकेत मात्र करके ही संतोष करना पडता है। ब्रह्म के प्रतिपादन मे वाणी मौन हो जाती है तथा भाषा असमर्थ। इसीलिये वह उसके वर्णन में अटपटी सी हो जाती है।

डॉ. राधाकृष्णन् ने लिखा है– यह परब्रह्म अद्वितीय है।... उसका वर्णन एक शुद्ध और निर्विशेष के रूप में किया जाता है। ब्रह्म स्वतत्र सत्ता के रूप मे विद्यमान निर्विशेषता है। वह अंत.स्फुरणा में, जो कि उसका अपना अस्तित्व है, अपना विषय स्वयं ही होता है।.... यदि ठीक–ठीक कहा जाय तो हम ब्रह्म का किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते। वह शाश्वत् (ब्रह्म) इतना असीम रूप से वास्तविक है कि हम उसे एक का नाम देने की भी हिम्मत नहीं कर सकते.... उस परमात्मा के संबंध में हम केवल इतना कह सकते हैं कि वह अद्वैत है। और उसका ज्ञान तब होता है, जबकि सब द्वैत उस सर्वोच्च एकता में विलीन हो जाते हैं।[1]

वृहदारण्यक उपनिषद्[2] का कथन है– जहां प्रत्येक वस्तु स्वय आत्मा ही बन गई है, वहा कौन किसका विचार करे और किसके द्वारा विचार करे?[3]

उपनिषदों में उसका (नेतिनेति) नकारात्मक वर्णन दिया गया है।

साधारणतया ब्रह्म प्रतिपादन के लिये दो प्रकार की शैलियों का प्रतिपादन होता है– (१) प्रथम विधि शैली और (२) दूसरी निषेधात्मक शैली। जांभोजी ने निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादन में प्रमुखता से विधि शैली का सहारा लिया है परंतु अंशतः निषेधात्मक शैली का प्रयोग भी यत्र–तत्र हुआ है।

वे ब्रह्म की अनिर्वचनीयता के संबंध में कहते हैं कि वह किस विमर्श–प्रयोजन से कथन किया जाय? अर्थात् उस ब्रह्म के विषय में एक–दो विमर्श, कि वह "ऐसा है" अथवा "वैसा है" नहीं बनते।[4] उन्होंने निर्गुण के सूक्ष्मत्व का उल्लेख इस प्रकार किया है– यदि कोई ब्रह्म के विषय में यह कहता है कि वह "कुछ" है

---

१ डॉ. राधाकृष्णन्, भगवद्गीता, परिचयात्मक निबन्ध, पृ २४।

२ वृहदारण्यक उपनिषद, २।४।१२–१४।

३. डॉ राधाकृष्णन्, भगवद्गीता, पृ २४।

४ जांभोजी की वाणी, शब्द ६।

तो उसने उसकी वास्तविकता को कुछ जाना ही नहीं। परंतु जो उसके संबंध में यह समझता है, वह इतना "बहुत कुछ" है कि उसके संबंध में कुछ नहीं जाना जा सकता, क्योंकि वह अकथनीय है, उसके संबंध में यही अमृतवाणी है।[1]

जांभोजी ने स्पष्ट कहा है कि यह "आदि परम तत्व" शुष्क वाद-विवाद से, मत्सर एव संशय से ग्रहण नहीं किया जा सकता।[2]

वह ब्रह्म "अगम अलेखा" है।[3] वह "अलाह" है। "अलेख" है, "अडाल" है। वह अयोनि स्वयभू है।[4] वह पारब्रह्म है।[5] उसे अनंत और अपार कहा गया है।[6] वहां न छाया है न माया है। वह रूप-रेखा से रहित है।[7] वह त्रिकाल अबाध्य है।[8]

जाभोजी "परमतत्व" के संबंध में कहते हैं कि वह ऐसा (अनिर्वचनीय) है कि जिसका कोई पार नहीं है। उसका आदि-अंत आज तक कोई नहीं ले सका। जब "परमतत्व" "लीक लेहूं", "खोज खेहूं" तथा वर्ण से रहित है तब उसका अंत लिया भी कैसे जा सकता है?[9] जब मछली की जल मे फिरने की पगडंडी दिखाई नहीं पडती- जब उसके मार्ग को नहीं पकडा जा सकता तब उस परमतत्त्व का भेद कैसे लिया जा सकता है?[10]

जांभोजी ने उसे "ज्योतिस्वरूप" कहा है। वह ज्योतिस्वरूप ब्रह्म समस्त भुवनो में व्यापक है।[11] चतुर्दश भुवनों मे सजातीय विजातीय स्वगत भेदरहित एक अद्वितीय ब्रह्म का ही प्रकाश है।[12] वह ब्रह्म गगन की भांति सप्त पाताल, तीनों लोक, चौदह भुवन के बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक है।[13] वही आदि-अनादि का रचयिता है। उसका सृजक कोई दूसरा नहीं है। वही जल में बिम्ब की भांति सबका कूटस्थ है। वहां दु ख, रुदन-शोक, कोप-कलह, पीड़ा और श्राप को स्थान नहीं है।[14]

जितने भी मास-रक्तमय शरीर वाले प्राणधारी जीव हैं तथा उनमें चलने वाले श्वास-प्रश्वास हैं, यदि उनमे "खीरनीर" निर्णायक दृष्टि से देखा जाय तो उन सबमें चैतन्यात्मा ब्रह्म ही है।[15] उन्होने ब्रह्म को रूप, अरूप, पिंड, ब्रह्माड, घट, अघट और सबमें रमण करने वाला बताया है।[16] तथा उन्होंने उसे "निरंजन शंभू", "आपणेआपू", "आदि", "अनादि", "मोती" एवं "रत्न" की सज्ञा देते हुए अपने लिये चुना है।[17] वे उसी परब्रह्म का "परा विद्या" से चिंतन करते हैं। उन्हें समाधि भेद रहित अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म ही अभीष्ट है। वह रक्त एव धातु से निर्मित शरीरधारी नहीं है। उसमें शीतोष्ण विकार भी नहीं है। जाभोजी उसी जगदधिष्ठान परब्रह्म को

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द १८। २ वही, शब्द १७। ३ वही, शब्द १६।
४ वही, शब्द ६। ५ वही, शब्द ७। ६ वही, शब्द १६। ७ वही, शब्द १६। मिलाइये-तत् विचारैं ते रेख न रूप। ८. वही, शब्द ४। ९. वही, शब्द १६।
१०, वही, शब्द १६। ११. वही, शब्द ६। १२ वही, शब्द ६।
१३. वही, शब्द ४०। १४ वही, शब्द २। १५ वही, शब्द १७।
१६ वही, शब्द १६। १७ वही, शब्द ४, ६।

भजते हैं।[१] उसी परब्रह्म का अपरा वाणी से परे जो परावाणी– ब्रह्म विद्या है उसमें कथन करते हैं। यहा जांभोजी का– "अहं ब्रह्मास्मि" अयमात्मा तथा प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म के अभेद चितन की और निर्देश है।[२]

जांभोजी ने अपनी इसी लोकोत्तर 'परावाणी' को "सहज–सुंदरी" (सुदर) बताया है। उनका मन इस वाणी से ज्ञानी हो गया।[३]

वे अपनी अपरोक्षानुभूति के आधार पर ब्रह्म से अपना अभेद सबंध बताते हुए कहते हैं, मेरी और ब्रह्म की ज्योति एकाकार है।[४]

जाभोजी का इस प्रकार ब्रह्म–निरूपण उपनिषदो के ब्रह्म–निर्वचन की ही भांति हुआ है। यदि उनके ब्रह्म निरूपण को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो उनकी एवं उपनिषदों की निर्गुण ब्रह्म की प्रतिपादन शैली में असाधारण साम्य है।[५] उपनिषदों और वेदान्त ग्रन्थों में ब्रह्म की जो विशेषतायें व्यंजित की गई हैं, जांभोजी ने भी उनका ही प्रतिपादन किया है।

कहीं–कहीं वे योगियों की भांति ब्रह्मतत्व को "द्वैताद्वैत विलक्षण" मानने के पक्ष में भी जान पडते हैं और यह स्वाभाविक ही है, [illegible] गुरु [illegible] है। और तभी उनकी वाणी एवं प्रतिपादित कतिपय आध्यात्मिक सिद्धांत नाथपंथ के साहित्य से असाधारण साम्य रखते हैं। यहां उनका यह [illegible] था, उन्होंने कई स्थलों पर "शब्द" की महिमा का वर्णन किया है।[६] उन्होंने कई स्थलों व पदो में उस पुरुष को "विलच्छन" कहा है।[७]

❖❖❖❖

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ५। २. द्रष्टव्य है–जभसागर पृ. २५४।

३. जांभोजी की वाणी, शब्द १७। ४. वही, शब्द ५४।

५ वृहदारण्यक ३।४।१४, कठोपनिषद् ५।१५, छान्दोग्योपनिषद् २।१४।२ आदि।

६ जाभोजी की वाणी, शब्द १४।

७ जभनाथ वह पुरुष विलच्छन जिन मंदिर रचा अकास।

ब्रह्म-पद

जांभोजी ने परमतत्व ब्रह्मपद को 'धुर खोजूं'[1] "सतपथ"[2] तथा "सिद्दि का पंथ"[3] के नाम से प्रतिष्ठित किया है। वही पंथ उनका गंतव्य है और वही उनकी खोज का विषय है।[4] परतु उस पंथ तथा पद तक पहुंचना सरल नहीं है।[5] जांभोजी ने गुरु का साहाय्य उस पद–प्राप्ति में साधन माना है।[6] उन्होंने ऐसे गुरु को "सिद्ध" नाम से अभिहित किया है,[7] जो सहज पवित्र (स्नानी) केवल ज्ञानी हो। साधक को इस प्रकार के गुरु के मिलने के बाद किसी अन्य से कुछ पूछना बाकी नहीं रह जाता।[8] पर उस ब्रह्मपद तक वही साधक पहुंच पाता है जो "अथगाथगायले" "अबसावसायले" तथापि जिसका कोई स्पष्ट दिखाई पड़नेवाला मार्ग नहीं है तदपि उस मार्ग पर वह चल पड़े।[9]

जाभोजी ने उस "सिद्ध का पंथ" को विकट बताया है। वह बडा दुर्गम है। उसको कोई बिरला ही साधु जानता है।[10] दूसरे उस मार्ग पर नहीं चल सकते। जैसे मछली ही अपना वह जलीय मार्ग जानती है, जिस सुरंग में वह रहती है, "मीन का पंथ मीन ही जाने"। उसी प्रकार उस "सिद्ध का पंथ" को कोई साधक ही जान सकता है।[11] यही संतों का "मीन–मार्ग" है जिसके माध्यम से वे ब्रह्म का अनुभव करते हैं। वह पुस्तक–ज्ञान से प्राप्त नहीं होता, उसका मार्ग सूक्ष्मत ।[12]

जांभोजी ने कहा है, "मेरा उपख्यान (ब्रह्म का निर्वचन) वेद–शास्त्र की पुस्तकों में नहीं लिखा जा सकता।[13] गुरुमुखी साधना के द्वारा उसकी अनुभूति की जा सकती है। वे "मेरा शब्द खोजो" कहते हैं। शब्द में ही शब्द समाहित है।[14] यही शब्द साधक को "ध्रुव खोज" या "सिद्ध पंथ" तक पहुंचाता है। यही साधक के लिये सब कुछ है। शब्द को पा लेने का अर्थ ब्रह्म को पा लेना है। तभी जांभोजी ने इस बात को जोर देकर कहा है कि मेरे इस प्रतिपाद्य "शब्द' को स्वर में लेना "झींणा

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द ६। २. वही, शब्द २६। ३ वही, शब्द २८।
४ व ५ वही, शब्द ६। ६. वही, शब्द ४०। ७. वही, शब्द ६२। ८. वही, शब्द ४०।
९. वही, शब्द ६१। १० सिद्ध साधक को एक मतो जिन जीवन मुक्त दृढायो, ६२। एव ते पद जाना बिरला जोगी, और दुनी सब धधे जाई (गोरखवाणी) कठोपनिषद मे लिखा है (४।१) "कोई बिरला महात्मा ही अपनी वृत्तियों को अंतरमुखी करके आत्मदर्शन अर्थात आत्म–चिंतन मे प्रवृत्त होता है।" ११ जांभोजी की वाणी, शब्द २८। १२. वही, शब्द १४। १३ वही, शब्द १४। मिलाइये, वेदे न शास्त्रे कतेबे न कुराणे, पुस्तके न बंच्या जाई (गोरखवाणी) १४, जांभोजी की वाणी, शब्द १४, १६। मिलाइये– सबद बिंदौ रे अवधू सबद बिंदौ (गो वा पृ ४४) सबद बिंदौ अवधू सबद बिंदौ, सबदै सीझंत काया (गो वा, पृ ४५)

शब्दू"[1] अर्थात् वह शब्द–ब्रह्म अन्तर्लय अनुभूति के द्वारा ही जाना जा सकता है।

"साधु–दीक्षा–मंत्र"[2] मे "शब्द" का माहात्म्य इस प्रकार वर्णित हुआ है कि ओं स्वरूपी 'सत् शब्द" का अजपाजप करने वाला विष्णु नामक परात्पर तत्त्व के साथ तदाकारता ग्रहण कर लेता है और उसे फिर जन्म–मरण के चक्कर में आना नहीं पड़ता। हमारे पिंड में ही वह शब्द सदा गूंज रहा है जिसे गुरु–कृपा द्वारा अनुभव कर लेने पर मूल मत्र हमारे हाथ लग जाता है, हमारी पहुंच वहां तक हो जाती है और सभी प्रकार के संशय नष्ट हो जाते हैं। उस गगन मंडल में ही "निरंजन" का स्थान है। उस निरंजन व शब्द के साथ जब इस भावना और साधना से युक्त होकर मनुष्य आगे बढता है तब वह 'ध्रुव खोज" व "सिद्ध का पंथ" परमपद को प्राप्त कर लेता है।

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द १५। मिलाइये–
सबदहिं ताला सबदहिं कूंची सबदहिं सबद जगाया,
सबद ही सबद सूं परचा हुआ, सबदहिं सबद समाया। (गोरखवाणी)

२ जंमसागर (हिसार)।

मोक्ष

मोक्ष के संबध में दार्शनिकों, तत्त्ववेत्ताओं, संतों, सिद्धों तथा भिन्न–भिन्न सप्रदायो एवं पंथों की अपनी पृथक्–पृथक् मान्यता है। सभी ने अपने–अपने मंतव्य के अनुसार मोक्ष के स्वरूप को स्थिर करने की चेष्टा की है। वैसे आध्यात्मिक पूर्णता को ही मोक्ष कहते हैं। धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के शब्दों में, "मुक्ति का अर्थ है यम के कठोर चंगुल से बच निकलना। अत यह आवश्यक है कि हमारे सुकर्मों की संख्या दुष्कर्मों से बडी हो।"[1] अधिकांश मनीषियों ने आत्यन्तिक दु.ख–निवृत्ति को ही मोक्ष माना है। किसी बधन से छूटने को मोक्ष कहते हैं।

यहा हमें जाभोजी की मोक्ष सबधी विचारधारा को जानना है। यह ध्यान रखना चाहिये कि जाभोजी ने मुक्ति के दो रूप– "जीवनमुक्ति" तथा 'विदेहमुक्ति" माने हैं। उन्होंने मोक्ष को "निश्चल थाणों"[2] (अचल परमधाम) मुक्ति[3], मोक्ष[4], केवल्य[5], पार गिराये[6], जीवतिरै[7], आदि नामों से भी पुकारा है। वे कहते हैं.–

आशा सास निरास भईलो, पाईलो मोक्ष खिणूं,[8]

मनोनाश, वासनाक्षय एव सच्चिदानन्द आनंद की प्राप्ति ही मोक्ष है।

जाभोजी मोक्ष प्राप्ति में कर्मों एवं साधनों की उत्तमता तथा अपने स्वरूप के ज्ञान को मूल कारण मानते हैं। उन्होंने निम्न उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया है.–

वाजै वाव सुवायो, आभै अमीं झुरायो।
कालर करषण कियो, नेपै कछु न कीयो।
ताकै ज्ञान जोती, मोक्ष न मुक्ति याके कर्म इसायो।
तो नीरे दोष किसायो[9]

अर्थात् अन्नाकुरों को वृद्धि देने वाली वायु चलती हो और आकाश से अमृत जल बरस रहा हो, इस पर भी यदि इनसे लाभ न उठाकर कोई ऊसर भूमि में बीज बोता है तो उसे अभीप्सित उत्पादन का लाभ नहीं होगा। इसमें पानी का कोई दोष नहीं है। वैसे ही जो शुद्ध साधन संपन्न है और जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान है, वह मुक्त है। उनकी विचारधारा में "गुरुकृपा" और उसके द्वारा प्रदत्त "केवल्यज्ञान" धर्माचार, शील और संयम, मोक्ष को देने वाले हैं।[10] वे कहते हैं "भलमूल सींचने"

---

१. डॉ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, सतकवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ ८६।
२. जाभोजी की वाणी, शब्द ६६। ३ व ४, वही, शब्द २०,२२।
५ वही, शब्द १५। ६ वही, शब्द २३। ७ वही, शब्द २३। ८ वही, शब्द १०२।
९ वही, शब्द २२। १० वही, शब्द २२।

से भली बुद्धि आती है। उसे सींचने से संसार में जन्म–मरण रूपी काल चक्र मिट जाता है।[1] उनका कथन है कि करतार को सिंचित करने से मनुष्य जन्म–मरण रूपी हानि से सदा के लिये निवृत्त हो सकता है।[2]

जांभोजी की दृष्टि में "सुरंग" भी मोक्षप्राप्ति का कारण है।[3] सच्ची करणी करने वाला भी संसार से तिर सकता है।[4] परमात्मा के नाम स्मरण से आवागमन मिट जाता है।[5] पर उनकी विचारधारा में "सुरराय" का बोध एवं "परब्रह्म" का ज्ञान अत्यावश्यक है।[6]

"सुरराय" और "परब्रह्म" को जाने बिना चाहे कोई भी हो, चाहे वह नागा भी हो, योग (मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता।[7] "जंभसागर" में "योग" का अर्थ "मोक्ष" किया है।[8]

जांभोजी के विचारों में जिस व्यक्ति ने "द्वैत" भाव का त्याग कर दिया है तथा जो सांसारिक पदार्थों से सर्वथा अनासक्त हो गया है, उसीने तेतीसों (तेतीस कोटि देवताओं) के मार्ग को जाना है।[9] वे योग के इस मत से भी सहमत हैं कि जिसने समाधि में नादानुसधान से "शब्द–ब्रह्म" की प्राप्ति की है, वह भी आवागमन से मुक्त हो जाता है।[10] जिसको परमेश्वर की सहज अपरोक्षानुभूति हो जाती है, उसका आवागमन सहज में ही मिट जाता है।[11] जितेन्द्रिय, शुद्धाचरणतत्पर एव सहज विश्वास से मनुष्य शीघ्र ही जन्म–मरण रूपी चक्र से मुक्त हो जाता है। परंतु जिस गुरु एवं शिष्य का ब्रह्म से परिचय नहीं हुआ है तो वह मरने पर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हो पायेगा।[12] जिसने उस (ब्रह्म) को जाना, उसी को उसका प्रमाण मिला और वह सहज में ही उसमें समा गया। उस परात्पर ब्रह्म को जानने वाला ही गुरु है। जांभोजी कहते हैं– यदि तुमने गुरु के शब्द को मान लिया तो तुम भवसागर से पार हो जाओगे। "सतगुरु" ही ऐसा तत्व बताते हैं जिससे अजर–अमर होकर पुन: जन्म–मरण धारण नहीं करना पडता।[13] अत: जांभोजी बल देकर कहते हैं कि "भलमूल सींचो" और गुरु से "मूल तत्त्व" बूझलो। जिसने गुरु से पूछकर जब जीवन की विधि जानली तब उसे जीवनकाल में तो लाभ है ही, मरने पर भी किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पडेगी।[14]

---

१. जांभोजी की वाणी, शब्द ३१। २. वही, शब्द ३३। ३ वही, शब्द ३६। ४ वही, शब्द २६। ५ वही, शब्द २। ६ वही, शब्द ७। ७ वही, शब्द ४५। ८. वही, शब्द २६/१। ९. वही, शब्द ७१। १०. वही, शब्द ८१। ११ वही, शब्द ५४। १२. वही, शब्द ११७। १३ वही, शब्द १०१। १४ वही, शब्द ७१।

सृष्टि - विज्ञान

सृष्टि--क्रम को विद्वानों ने एक अद्भुत पहेली की संज्ञा दी है और इसका समाधान विभिन्न दार्शनिकों एव तत्त्ववेताओं ने अपने--अपने ढंग से करने का प्रयास किया है। मुण्डकोपनिषद् में जगत् की उत्पत्ति के सवंध में अनेक कल्पनायें की गई हैं। "जैसे मकडी अपने जाले का निर्माण करती है और पुन. उसे निगल जाती है, जैसे पृथ्वी मडल मे औषधियो का विकास होता है और जैसे जीवित व्यक्ति के शरीर में लोम विकसित होते हैं वैसे ही अक्षर से विश्व उत्पन्न हुआ है।"[1]

जांभोजी ने सृष्टि रचना के सबंध में एक ऐसे समय की कल्पना की है जब दृश्यमान सृष्टि का नाम--निशान नहीं था। अगणित (छतीस छतीसां) युगो पर्यन्त महान कुहरा जैसा अधकार (धुधकार) था। उस समय न तो पृथ्वी थी और न आकाश था। वायु, जल, सूर्य, अठारह भार वनस्पति, चौरासी लाख जीव योनि, अभिमान, शाख--संवध, उमग, कामना, मद आदि कुछ भी नहीं थे।[2]

उन्होने सृष्टिक्रम का विशद वर्णन करते हुए बताया है कि उस समय मास, वर्ष, घडी, पहर, योग, नक्षत्र, तिथि, वार, पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी, मेघमाला, गिरि--पर्वत, हिमालय की धवल चोटिया तथा विणज-व्यापार आदि कुछ भी स्थापित नहीं हुए थे।[3] इसी प्रसंग मे (तात्कालिक परिस्थिति की ओर संकेत कर) कहते हैं कि उस समय, आज के ये छत्रधारी वडे--वडे सुल्तान, रावण सम अभिमानी राजा तथा ये हिन्दू--मुसलमानो के पृथक् पृथक् पंथ नहीं थे।[4]

षट्दर्शन, शौर्य, जीवजगत के सिंह, शावक, मृग, पक्षी, हंस, मोर, लैला, सूआ आदि भी नहीं थे। जीव, पिंड, पाप, पुण्य, दया, सहिष्णुता, ये सब भाव भी उस समय नहीं थे।[5] तब एक "निरंजन शंभू" और धुंधकार" था। सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व सारी शक्तिया एकमात्र निर्गुण ब्रह्म मे केन्द्रित थीं। सृष्टि के मूलारंभ के इस परम तत्त्व को जाभोजी ने "निरंजन शंभू" की संज्ञा से प्रतिष्ठित किया है।[6] उसी निरजन शंभू से स्वत स्फूर्त "शंभू" उत्पन्न हुआ। अर्थात् निष्क्रिय माया उपाधि से रहित वह परब्रह्म ही मायोपहित "अपरब्रह्म" ईश्वर नाम से जगत का निर्माता हुआ है।[7] एक स्थल पर जांभोजी ने "शंभू" की उत्पत्ति "आदिमुरारी" से मानी है।[8] पर उसने अपनी काया को स्वत. ही संवारा है।[9] उन्होंने परमात्मा के इस रूप को "शून्य" भी कहा है।

---

१ यथोर्णनाभि सृजते गृहणतेच यथा पृथिव्यामोषधय सम्भवन्ति।
यथा सत पुरुषात्केश लोमानि तथाक्षरात्संभवतीति विश्वम्।। मुण्डकोपनिषद् १।७।

२. जाभोजी की वाणी, शब्द ४। ३ वही, शब्द १०५। ४. वही, शब्द १०५।

५ वही, शब्द १०५। ६. वही, शब्द १०५। ७. वही, शब्द १०५।

८ वही, शब्द ६४। ९ वही, शब्द ६४।

"जूगछतीसों शून्य हि वर्ता' और इससे सृष्टि की उत्पत्ति मानी है।[1]

उनके कहने का तात्पर्य है कि सृष्टि तब "निरारंभ" अवस्था मे थी। उसकी उत्पत्ति "धंधुकारी" (मायोपहित ईश्वर) से हुई। उसी ने इस संसार रूपी बर्तन को अपने हाथों से बनाया। उसी ने अपने "सत्य जगत" (सतजुग) में समस्त सृष्टि का सृजन किया। और जगत्–स्थापनार्थ ब्रह्मा और इन्द्र में शक्ति का प्रगटीकरण किया। साक्षी रूप सूर्य और चन्द्र की स्थापना की। जाभोजी कहते हैं, इस प्रकार परमात्मा ही अपने विराट रूप में जगत् रूप से व्यक्त हुआ। और इसी सृष्टि क्रम में परमात्मा के मत्स्यादि अवतार हुवे।[2]

सूर्य–ज्योति से भी परे के देश, पवन, पानी, पृथ्वी, जल, अठारह भार वनस्पति, पर्वत और यहां तक कि रजकण, कितनी ही वापिकायें, कूयें, तालाब, नवसौ नदियां, नवासी नद और धैर्य का उपमान समुद्र, ये सब उस सृष्टि निर्माता के आधारित हैं।[3]

वे सृष्टि को अनत बताते हैं।[4] सृष्टि रचना का समय अज्ञात है। अनिश्चित है। जाभोजी ने सृष्टि निर्माण के काल निर्णय की अनंतता की ओर "जुगचार छतीसां और छतीसां" कहकर उसका सकेत किया है।[5]

सृष्टि विज्ञान में एक दूसरे स्थान पर जांभोजी "आद शब्द" (शब्द ब्रह्म) से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हुए कहते हैं कि पहले सर्वत्र पानी ही पानी था। तत्पश्चात उस पानी से एक अण्डा उत्पन्न हुआ और उसी अण्डे से ब्रह्मा–इन्द्र उत्पन्न हुए।[6]

जाभोजी की विचारधारा मे सृष्टि का मूलभूत कारण "ईश्वरेच्छा" ही है। उनके मतानुसार परमात्मा ही सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण है। परमात्मा ने ही इस संसार रूपी बर्तन को "मनसा" रूपी "अहरण" पर नाद (शब्द) रूपी हथौड़े से बनाया है।[7] आदि–अनादि को परमात्मा ही रचने वाला है।[8] यह सारा जीवजगत एकमात्र परमात्मा के श्वास–स्फुरण मात्र से अस्तित्व-अनस्तित्व में आता है। जगत के आदि, मध्य एवं अन्त के सभी व्यापारों में ईश्वर सत्ता ही सर्वोपरि है।[9] जल में बिम्ब की भांति समस्त जगत में वह परमात्मा ही उद्‌भाषित हो रहा है।

सृष्टि उत्पत्ति संबंधी जांभोजी की उक्त विचारावलि एवं ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की विचारधारा मे असाधारण साम्य है।[10] तैत्तिरीय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् आदि में भी सृष्टि संबंधी इसी प्रकार की कल्पना हुई है।[11]

---

१. जाभोजी की वाणी, शब्द ६४। २. वही, शब्द ६४। ३ वही, शब्द २६। ४ वही, शब्द २६ (इलोल सागर) ५ वही, शब्द २६। ६. जांभोजी की वाणी, शब्द ६३। ७ वही, शब्द ६६, १। ८. वही, शब्द २। ९ वही, शब्द २. ३। १०. ऋग्वेद मंडल १०, १२९ सूत्र, ऋचा १।२। ११ जगत् के समस्त पदार्थ परमात्मा के आश्रय का आधार लिये हुए हैं। अथर्ववेद मे ईश्वर के स्कम्भ या आधार रूप का सकेत करते हुए कहा गया है–

स्कम्भेनेमेविष्टिभोद्यौश्च भूमिश्चतिष्ठत.
स्कम्भइदं सर्वमात्मन्वद्यत प्राणन्निमिषच्चयत् – अथर्व १०।८।२।

जांभोजी की सृष्टि उत्पत्ति संबंधी दूसरी विचारधारा मनुजी[1] की विचारधारा से साम्य रखती है। जांभोजी ने आचार्य शंकर के इस मत को कि शब्द से सृष्टि उत्पत्ति हुई है, अपनी वाणी में स्थान दिया है। नाद के द्वारा ही अव्यक्त परमात्मा ने अपने को व्यक्त रूप में प्रकट किया।[2] यह नामरूपात्मक जगत अव्यक्त परमात्मा का ही व्यक्त विलास है।

जैसाकि बताया जा चुका है, सृष्टि उत्पत्ति का मूलभूत कारण ईश्वरेच्छा है। सृष्टि की उत्पति उस परमात्मा की इच्छामात्र से हो जाती है। उसके "एकोऽहं बहुस्याम." कहते ही सृष्टि का निर्माण हो जाता है। यह सृष्टि उसी कलाकार की कला का अपूर्व चमत्कार है।"[3]

मुंशी रामलालजी ने जांभोजी के चौथी संख्या वाले शब्द का अर्थ करते हुए अंत मे लिखा है कि "सारांश यह है कि ईश्वर–प्रकृति–जीवात्मा, तीनों स्वरूपों से अनादि है तथा यही तीनो संपूर्ण जगत क उपादान तथा निमित्त कारण हैं अर्थात् ईश्वर निमित्त कारण है और जीव–प्रकृति उपादान कारण हैं और यह दोनों ईश्वर के सदा से अधीन रहने वाले हैं।"[4]

रामलालजी "धंधुकार" शब्द को प्रकृति का द्योतक मानते हैं।[5]

जाभोजी ने सृष्टि को वेदान्तियों की भाति सर्वथा मिथ्या नहीं माना है। उन्होंने जहा कहीं सृष्टि को, जैसा आगे विवेचन किया गया है, झूठा अथवा मिथ्या कहा है, वहां उसका यही आशय है कि यह शाश्वत नही है। किसी भी पदार्थ का यहां स्थाई अस्तित्व नहीं है।

जाभोजी ने इस संसार को "गोवलवास" (प्रवास) की संज्ञा दी है।[6] वे जीवात्मा को संबोधित कर इस "गोवलवास" को अपने सुकृत्यों से सफल सिद्ध करने को कहते हैं। जिससे स्वर्ग की प्राप्ति हो।[7] भूत, भविष्य एवं वर्तमान की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट कर कहते हैं कि इस ससार में कौन नहीं हुआ? कौन नहीं होगा? तथा इस संसार मे जन्म लेकर किसको दु ख सहना नहीं पडा? जब बडो–बडों को इस संसार से कूच करते हुए देखा गया है तब कलियुगी अल्प आयु वाले मनुष्य की तो बात ही क्या है?[8]

समस्त जगत को यम ने दडित कर रखा है। वह किसी को भी इस जगत मे जीवित नहीं रहने देता। वे कहते हैं– हमारे देखते हुए देव, दानव और सुरनर क्षय को प्राप्त हो गये। कुभकरण, रावण जैसे महान शक्तिशाली योद्धा जिनका विषम प्राचीर –समुद्र जैसी खाई वाला लकागढ था, जिसकी खाट के पाये से नवग्रह बधे

---

१ मनुस्मृति, अ १ श्लोक ६। २. जाभोजी की बाणी, शब्द ६३।
३ श्री चन्द्रदान चारण, अलखिया सप्रदाय। ४ विश्नोई धर्म वेदोक्त, पृ. ११।
५ वही, पृ. ११। ६ जाभोजी की वाणी, शब्द ५३। ७ वही, शब्द ५३।
८ वही, शब्द ३३।

हुए थे तथा जिसके आतंक से देवता और मनुष्य सशंकित रहते थे; वह बुद्धिमान होता हुआ भी काल के वशीभूत हुआ, सीता के लिये लुभायमान हो उठा और इस प्रकार वह काल का ग्रास बना।[1]

जांभोजी ने उस व्यक्ति के लिये यह ससार सर्वथा व्यर्थ बतलाया है, जिसने अपने चित्त में स्थित चिदाकाश को नहीं देखा।[2] उन्होंने "विवरस जोय निहाली" का प्रयोग कर कहा है कि वह विपर्यय देख कर प्रसन्नता अनुभव क्यों करता है?[3] उन्होंने जीवात्मा को अपना वास्तविक घर आगे बतलाया है। यह संसार तो मनुष्य के लिये "गोवलवास" और "कूडी आधोचारी" (मिथ्या और अरथाई) के समान है।[4]

इस संसार में मनुष्य अपने जन्म के साथ शरीर तो लाया था परन्तु प्रस्थान करते–मृत्यु के– समय वह खाली हाथ ही गया। उसका यह शरीर भी उसके साथ नहीं गया बल्कि यहीं रह गया।

जांभोजी कहते हैं कि मनुष्य को इस संसार में पदार्पण करने (प्रसव काल) में कदाचित् एक क्षण का समय लगा भी था लेकिन कूच करने में उसे वह एक क्षण भी नहीं लगा।[5] वे वृक्ष और उसके पत्तों का उदाहरण देकर मनुष्यों को इस ससार की गति एवं परिस्थिति का ज्ञान करवाते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष से निपतित पत्ते पुनः उस वृक्ष पर नहीं लग सकते वरंच वसत ऋतु आने पर ही वृक्ष पर नवीन पत्ते अंकुरित होते हैं, वैसे ही जो इस संसार से चला गया, उसका फिर यहां अस्तित्व नहीं रहता।[6] नये जन्म के साथ ही पुनः प्राणी अस्तित्व में आता है।

जांभोजी कहते हैं कि मनुष्य के मरने के बाद उसे एक–दो दिन की स्मृति में ही लोगों द्वारा भुला दिया जाता है। उनकी राय है कि मनुष्य को इस संसार में जो कुछ करना हो, अपनी जीवितावस्था में ही संपादित कर लेना चाहिये। मरने के बाद तो उसके पीछे केवल रुदन–विलाप ही रह जायेगा।[7] वे मनुष्यों को इस प्रकार रूपक बांध कर समझाते हैं कि यह सारा संसार कायारूपी कोट से घिरा हुआ है, जिसमें पवनरूपी कोतवाल है, कुकर्मरूपी अर्गला लगी हुई है और माया रूपी जाल में यह भ्रमरूपी सांकल से बंधा हुआ है।[8] यह बंधन उसी के कर्मों का फल है।[9] उनकी दृष्टि में इसी में भलाई है कि मनुष्य परमात्मा को पहचान ले और वह अपने नरतनरूपी रत्न से परमात्मा को पहचान कर सदैव के लिये जगत् के जन्म–मरण से छुटकारा पा जाय।[10]

संसार के ऐश्वर्य, इसके माप–दण्ड, विधि–व्यवहार, आदान–प्रदान, संबधादि सब असार हैं। दुनिया में न कोई किसी का भाई है, न बहिन है और न ही किसी का कोई परिवार है।[11] ईश्वर की पहचान नहीं करने वाली तथा भूलों में भ्रमित दुनिया

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ६६। २. वही, शब्द ३३। ३ वही, शब्द ८६।
४ वही, शब्द ८६। ५. वही, शब्द ६४। ६ वही, शब्द ६४। ७. वही, शब्द ८६।
८. वही, शब्द ८८। ६. वही, शब्द ३३। १०. वही, शब्द ३३।
११. वही, शब्द ६७, ३३ ६८।

मरणोन्मुखी है।[1] यह संसार का समस्त धन–द्रव्य धूवें के बादलों जैसा है। जिसको विनष्ट होने में अधिक विलम्ब नहीं होता।[2]

जांभोजी किसी मांडलिक राजा को संसार की क्षणभंगुरता की ओर निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि यहां किसी का भी राज्य रत्तीभर भी स्थाई नहीं रहेगा।[3] उन्होंने संसार की नश्वरता व क्षणभंगुरता का अपनी वाणी में स्थान–स्थान पर वर्णन किया है, जिससे लोग "विष्णु" की शरण में जाकर अक्षय सुख को प्राप्त करें। उनकी विचारधारा में वह व्यक्ति इस संसार में सर्वथा विकारों से ही ग्रसित हुआ यदि उसने परमेश्वर विष्णु को छोड़कर जड–पाषाण (मूर्ति) में अपनी अनुरक्ति प्रकट की है।[4]

❖❖❖❖❖

---

१ वही, शब्द ६७। २ वही, शब्द ६८। ३ वही, शब्द ६४। ४ वही, शब्द ५३।

जीव

उपनिषदों में माया से आच्छन्न आत्मा को जीव कहा गया है।[1] वेदान्तमतानुसार, अज्ञानोपहित व्यष्टि जीव अथवा अविद्या उपाधि वाला चैतन्य जीव कहलाता है।[2]

जांभोजी जीव को ब्रह्म का ही प्रतिविम्ब मानते हैं। उनकी विचार दृष्टि में अंशतः जीव परमात्मा का ही स्वरूप है। उन्होने हिंसा का विरोध करने के प्रसंग मे जीव को परमात्मा का अंश मानकर उसे मारने की मनाही की है।[3]

जाभोजी ने जीव के स्वरूप प्रतिपादन में अविद्या के भीतर फलित होने वाले ब्रह्म के प्रतिविम्ब रूप को जीव माना है–

.........छाया जिहिंकै छाया भीतर विम्बफलूं[4]

यहां "छाया" शब्द अविद्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

एक दूसरे स्थान पर जांभोजी ने कहा है कि वे "जीव" हैं, जहां ज्योति नहीं है[5]। यह ज्योति ही ज्ञान का स्वरूप है। जो अज्ञानी हैं, वे जीव हैं। उनकी विचारधारा में चैतन्य ब्रह्म के जीव भाव के मूल में अज्ञान ही मुख्य कारण है। अज्ञान ही जीव की मुक्ति में प्रतिबंधक है। जिसको आत्मा के स्वयंप्रकाशक ज्योतिस्वरूप का ज्ञान नहीं है उसे इस लोक मे ब्रह्मानंद और परलोक में मुक्ति नहीं मिलती।

जांभोजी ने जीव की गर्भावस्थित स्थिति का बहुत ही सुदर उदाहरण देकर उसे अद्वैत मानते हुए उसकी व्यापकता का परिचय दिया है। वे कहते हैं कि यह जीव गर्भ मे किस दिशा से आकर स्थित होता है? इस रहस्य को न माता जानती है और न पिता ही। यदि ऐसा कहा जाय कि जीव नासिकादि, द्वार से गर्भ में स्थित होता है तब अण्डे में जीव ने किस द्वार से प्रवेश किया? उसमें तो छिद्र होता ही नहीं। इसके समाधन हेतु वे कहते हैं कि अण्डे में पिंड और पिंड में जीव, वैसे ही उत्पन्न होता है जैसे दण्ड के संयोग से कासी के बर्तन में शब्द उत्पन्न होता है और पुनः वह उसी मे लय हो जाता है। वह शब्द न कहीं से आया अथवा न कहीं गया। वह जहां से उठा उसी में लय हो गया। वैसे ही जीव को गर्भस्थ होने में विशेष गमनागमन नहीं करना पड़ता।[6]

---

१. वृहदारण्यकोपनिषद् २।३।६।५।१४।४।

२ मायोपाधि विर्निर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते।
माया समन्धतश्चेशो जीवो विद्यावस्था।।
तथा– मायाविधैवीहायैवमुपाधि परजीवयो। पंचदशी, १ श्लोक ४८। ब्रह्मरूपी आत्मा जब अहकार से विमोहित हो जाता है तब उसे जीव कहने लगते हैं।

३. जांभोजी की वाणी, शब्द १०। ४. वही, शब्द ५१। ५. वही, शब्द २०।

६. जांभोजी की वाणी, शब्द २७।

व्यापक चेतन में गमनागमन तथा उसका प्रवेश होना असंभव है तथापि *अंत करण सहित सोपाधि चैतन्य में गमनागमन भाव की कल्पना की जाती है।* वह जीव सूक्ष्म–सामग्री सहित शुक्र शोणित के साथ गर्भ में स्थित होता है। "पंचधातु षष्ठ आत्मा स एव समाविशत्" इस वृद्ध वाक्य के अनुसार शुक्रशोणित संयोग से गर्भ में जीव का प्रवेश प्रतीयमान होता है अन्यथा निर्जीव पिण्ड चैतन्य सत्ताशून्य होने से सर्वांगवृद्धि को प्राप्त नहीं होता।

जांभोजी का उक्त प्रकार से जीव–प्रतिपादन अद्वैतवाद के प्रसिद्ध सिद्धान्त प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ही हुआ है। उनका "ज्यूं जलबिम्ब"[1] प्रयोग स्पष्टत. इस ओर सकेत है। वे जीव को विशेष चैतन्य एवं सामान्य चैतन्य के रूप में व्यापक मानते हैं।[2] जीव और ब्रह्म में अंशांशी सबंध हैं। परन्तु उनका यह जीव–ब्रह्म का अंशांशी संबंध अद्वैतवाद के अनुरूप है। द्वैताद्वैतवाद व विशिष्ट द्वैतवाद के अनुकूल नहीं है। उनका जीव–विषयक सिद्धांत अद्वैत वेदांत के निकट है। वे जीव को अद्वैत मानने के पक्ष मे हैं। देहभेद से ही उसमे पृथकता दिखाई पड़ती है।

जीव के विषय में जांभोजी की वाणी मे एक स्थल से ऐसा भी आभास मिलता है कि जीव परमात्मा के आश्रित हैं। समस्त जीवयोनि उस परमात्मा के दामन से विलम्बित हैं।[3]

जांभोजी परमात्मा एवं उसके अवतारों के अतिरिक्त जपी, तपी, पीर, ऋषीश्वर आदि सबको जन्मना जीव मानते हैं।[4]

मुंशी रामलालजी के मतानुसार जांभोजी ने परमात्मा, जीव और प्रकृति को अनादि माना है[5] तथा जीवन की मुक्ति भी परमात्मा की कृपा पर निर्भर है।[6] यह सिद्धांत भक्ति की अनन्यता का द्योतक है, जो सत साहित्य मे सर्वत्र देखा जा सकता है।

अज्ञान–भ्रमित जीव को अपने कर्मानुसार विविध योनियों में जन्म लेना पडता है। जीव ही काल का ग्रास होता है। वह बार–बार यमराज की चपेट में आता रहता हे। जीव को अपने भले तथा बुरे कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फल भोगने पड़ते हैं। जीव के सबंध में जाभोजी कहते हैं कि यमराज का हरकारा जीव को बुलाने आया तथा उसने जीव को अपनी पाश में आबद्ध कर यमराज के सामने उपस्थित किया। वहा जीव से जब उसके उपार्जित शुभाशुभ कर्मों के सबंध मे हिसाब पूछा गया तब जीव वहां थर–थर कांपने लगा। उसकी सहायता के लिये यहां न मा बोल सकती है और न पिता। वहा तो सुकृत्य (सुकरत) ही उसका संगी–साथी रहता है। अतएव जीव को स्वयं ही अपने कल्याण का मार्ग ढूंढना चाहिये।[7]

---

१. वही, शब्द २। २ वही, शब्द ४।
३ वही, शब्द २६, ३। ४. वही, शब्द ५। ५ विश्नोई धर्म वेदोक्त।
६. द्रष्टव्य है– वृहन्नवण। ७ जांभोजी की वाणी, (विष्णुकूंची) शब्द ३०।

जीव के हित–साधन के लिये जांभोजी उसे अच्छे कर्मों की खेती बोने का उपदेश देते हैं तथा सावधानीपूर्वक उसकी रक्षा करने को कहते हैं। वे कहते हैं, ऐसा न हो कि तुम्हारी उस शुभ कर्मों रूपी खेती को दैत्य (देतानी), शैतान (शैतानी) नष्ट कर दें एवं शुभ कर्म रूपी मजरी को मोर आदि खा जायं। अतएव हे मन! सांसारिक पदार्थों से उदासीन होकर जीव के लिये यत्न कर। ऐसा न हो कि उस खेती को पवन आदि के उपद्रव दबा दे।[1] इसलिये हे जीव! मरने से पहले ही भवसागर से पार होने के लिये सावधान हो।[2]

---

१. वही, शब्द ७०। २. वही, शब्द ७४।

माया

माया का सिद्धांत भारतीय आध्यात्मिक क्षेत्र की प्रमुख विशेषता रही है। वैदिक काल से आज पर्यन्त किसी न किसी रूप में इसकी प्रतिष्ठा रही है। मायावाद का प्रथम बीजारोपण ऋग्वेद में पाया जाता है' "इन्द्रोमायाभि पुरुपईयते"[1] में माया शब्द का प्रयोग हुआ है। आगे चलकर उपनिषदों मे इस माया शब्द का विकास हुआ। माया के शास्त्रीय रूप की प्रतिष्ठा आचार्य शंकर ने की।

माया सत् और असत् रूप से अनिर्वचनीय है। फिर भी वह ब्रह्म की तुलना में मिथ्या कही जा सकती है। माया त्रिगुणात्मक मानी जाती है। प्रकृति माया की ही एक शक्ति है। और यह माया ही "भेदबुद्धि" कहलाती है। माया अपना विस्तार पंचतत्त्व और तीन गुणों के सहारे करती है। जहां तक नामरूप का विस्तार है, वह सब माया है। इस प्रकार भारतीय दर्शनों में माया के विविध रूपों का वर्णन मिलता है। आवरण और विक्षेप तथा सूक्ष्म और स्थूल से माया के अनेक भेद होते हैं एवं उसका विविध शैलियो मे वर्णन हुआ मिलता है।

जाभोजी की वाणी में छाया माया[2], मायाजाल[3], धंधूकार[4], धूवां, धूवें के बादल, बोलस बादल[5], मूल[6], आडाडंबर[7], अंधारी[8], छोतल[9], अंजन[10], भिरातिमूल[11] (भ्रांतिमूलक), डाकण (डाकिन), साकण (शाकिनी), निद्रा, क्षुधा[12], पाश[13] (परासू) शैतान आदि व्यवहृत नाम, माया के हैं। सांसारिक पदार्थों के अर्थ में भी माया शब्द का प्रयोग हुआ है।[14]

जांभोजी ने माया को भ्रमरूपी माना है। जो इस भ्रम को ही सत्य मान बैठते हैं, उनको भवसागर मे डूबना पडता है। जांभोजी ने माया को अनादि माना है किन्तु अनादि से उनका तात्पर्य ब्रह्म की समकक्षता से नहीं है। उनकी विचारधारा के अनुसार सृष्टिपूर्व माया का "निरारभ" रूप था तथा धंधूकार उसका सक्रिय रूप था। जंभसागर मे धधूकार शब्द का अर्थ माया किया है।[15] आचार्य शंकर के मतानुसार भी प्राण और माया जब तक ब्रह्म में लीन रहते हैं तब तक उनमे अपनी कोई क्रिया शक्ति नहीं रहती। किन्तु विकारावस्था मे ब्रह्म अधिष्ठान बन जाता है और माया क्रियाशील होकर नामरूप का विस्तार करती है।[16]

---

१ ऋग्वेद ६।४७।१८। २. जांभोजी की वाणी, शब्द २। ३ वही, शब्द ४।
४ वही, शब्द ४। ५ वही, शब्द २५। ६ वही, शब्द ७७। ७ वही, शब्द २५।
८. वही, शब्द २६। ९. वही, शब्द ५०। १० वही, शब्द ५०। ११ वही, शब्द ५३।
१२. वही, शब्द २६। १३ वही, शब्द १०७। १४ वही, शब्द ४४।
१५ वही, (हिसार वाला सस्करण) पृ ५२६।
१६ द्रष्टव्य है– डॉ त्रिगुणायत पृ १४५।

जाभोजी ने संसार को मायाजाल कहा है। माया अनंत है। शरीर तथा माता–पिता के लौकिक संबंध मायाजन्य हैं।[1] रुदन, दैन्य, कोप, क्लेश, दु.ख, स्राप आदि सूक्ष्म कार्य माया के हैं। ऋषि, मुनि, महर्षि, साधक, तपस्वी, यति आदि कोई भी इसके प्रभाव से नहीं बच पाये हैं।[2]

जाभोजी ने माया, उसके सहायक, उसका प्रभाव, उसकी घातक प्रवृत्ति आदि के संबंध में सूत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करते हुए माया की प्रबलता रूपकों द्वारा प्रदर्शित की है। उन्होंने माया का जो रूपक में सुंदर निरूपण किया है वह इस प्रकार है–

> काया कोट पवन कुटवाली, कुकर्म कुलफ बनायो।
> माया जाल भरम का सांकल, बहु जग रहियो छायो।

अर्थात् शरीररूपी किला है, प्राण रक्षक है, पापकर्म रूपी ताला है, भ्रम की सांकल है। इसी त्रिगुणात्मक माया ने सारे ससार को अपने मायाजाल में आबद्ध कर रखा है और सारा जगत उससे बंधा हुआ है।[3]

जाभोजी की विचारदृष्टि में आलस्य भी माया का भुलावा है।[4] तथा राज्यादि में आसक्ति (मेरूं) भी माया का भुलावा है।[5] वे संसार के समस्त पदार्थों की क्षणभगुरता की ओर ध्यान आकर्षित कर कहते हैं कि जैसे पवन के झोंकों से ओस के बादलों को विनष्ट होने में अधिक समय नहीं लगता वैसे ही माया का कार्य विनाशशील है[6], उसे नष्ट होते देर नहीं लगती। यह मायाजाल का ही परिणाम है कि मनुष्य यम के हाथों से ही मरता है।[7] उन्होंने ससार के पदार्थों की ओर लालचभरी दृष्टि से देखने को "थोथा बाजर घाणों" कहा है।[8] जांभोजी किसी राजेन्द्र को संबोधित कर कहते हैं कि यह धन–धान्य और अश्वादि वाहन सब मिथ्या हैं, केवल दिखावटी हैं। मायाजाल के इस भ्रम में नहीं पडना चाहिये।[9] दान देकर अभिमान करना तथा वीर वैताल की आराधना में अभक्ष्य का भक्षण भी माया है।[10]

जांभोजी की वाणी में "कुमायाजालूं", "भूलाजीव", "कलि का मायाजाल" आदि के प्रयोग माया के निरूपण लिए हुए हैं।[11] माया से ग्रसित प्राणी को उन्होंने "भरमीवादी" बतलाया है।[12] उनकी दृष्टि में "परब्रह्म" की अपरोक्षानुभूति के अतिरिक्त सब माया का व्यापार है।[13] यह माया का ही प्रभाव है कि जिससे मनुष्य–मनुष्य में भेद–बुद्धि बनती है।[14] इसी प्रवृत्ति के लिये उन्होंने "छोतल" तथा "विवरस जोय निहोली"[15] जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

जांभोजी ने "काया" (शरीर) में "छाया" के साथ माया का भी निवास माना

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द २। २. वही, शब्द ५८। ३ वही, शब्द ६२। ४. वही, शब्द ७। ५ वही, शब्द २५। ६. वही, शब्द २५। ७. वही, शब्द ६६।
८. वही, शब्द ६६। ९. वही, शब्द १००। १०. वही, शब्द १००। ११ वही, शब्द ७२। १२ वही, शब्द ४४। १३ वही, शब्द ४५। १४. वही, शब्द ५०। १५ वही, शब्द ८६।

है।[1] उन्होंने माया को अंध कहकर उसको अपने पास आबाद रखने वाले के गले में "फदा" पडना बताया है।[2]

जांभोजी संसार को माया का भ्रम मानते हैं।[3] उनकी दृष्टि में भ्रांतियों की निवृत्ति होना ही माया का निराकरण है।[4] भ्रम का निराकरण हो जाने पर जीव शुद्ध आत्मरूप हो जाता है, किंतु गुरु-कृपा के बिना ऐसा होना संभव नहीं है। बिना गुरु की पहचान के तो गले में जन्म-मरण रूपी फंदा पडता ही रहता है।[5]

❖❖❖❖

---

१ वही, शब्द ५१।१ २ वही, शब्द ५१। ३ वही, शब्द १०६।
जंभसागर (पृ ३६३) मे भ्रम शब्द का इस प्रकार अर्थ किया है– एक पुरुष को रज्जु मे सर्प का भान होता है, दूसरे को पृथ्वी मे पहाड का भान होता है और दोनो ही मिथ्या बात के लिये विवाद करते हैं।
४ वही, शब्द ४४। ५ वही, शब्द १०७।

योगमाया

जांभोजी ने भगवान की योगमाया का भी सुंदर वर्णन किया है। वे कहते हैं कि जिस परमात्मा के क्षण में ही शीत, क्षण में ही उष्णता, क्षण में ही पानी तथा क्षण में ही मेघों का "मंडाण" (आच्छादन) हो जाता है। उसे ऐसा करने में किंचित भी विलम्ब नहीं लगता। परमेश्वर कृष्ण अपनी योगमाया की शक्ति से रेत पर भी पानी को स्थिर कर सकता है।[1] परमात्मा में असंभव को वास्तविक बना देने की क्षमता है।

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ३४।
मिलाइये– अजो पि सन्नव्ययात्मा, भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय, सम्भवाम्यात्ममायया।।
गीता, अ ४ श्लोक ६।

शैतान

जांभोजी की वाणी में "शैतान" का भी उल्लेख हुआ है। प्रकारान्तर से शैतान माया का ही वाचक है। "उर्दू–हिन्दी शब्द कोष" में शैतान का अर्थ– एक फरिश्ता, जिसने ईश्वराज्ञा का उल्लंघन किया और बहिष्कृत हुआ, और तबसे वह मनुष्यों को पाप की ओर प्रवृत्त करता है तथा इसी प्रकार का मनुष्य जो दूसरों का अनिष्ट चाहे, उपद्रवी, शरारती[1] आदि–किया है।

जाभोजी शैतान को आश्चर्यजनक दृष्टि से देखते हैं–शैतान ऐसा है, जिससे सारा जगत आच्छादित है।

अभिमान, मत्सर, "पंचगंज यारी"– शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तथा कुमार्ग ही शैतान के प्रिय विषय हैं। कुबुद्धि ही शैतान की खेती है। वह संसार पर इस प्रकार छाया हुआ है जिस प्रकार काले वस्त्र में मैलापन होते हुए भी दिखाई नहीं देता।[2] वे कहते हैं, जहां–जहा शैतान अपनी शैतानी करता है, वहां–वहां महत्व फलीभूत नहीं होता।[3] जीव के हित–साधन के लिये की जाने वाली शुभ कर्मों रूपी खेती को वह अपने मोरा, मोरी एव "दैतानी" रूपो के साथ नष्ट कर डालता है।[4]

❖❖❖❖

---

१ उर्दू–हिन्दी शब्द कोष, सकलनकर्ता–मु मुस्तफाखां मद्दाह।
२. जांभोजी की वाणी, शब्द ६६। ३ वही, शब्द ६५। ४ वही, शब्द ७०।

सदाचार

हिंसा का विरोधः-

हिंसा का शास्त्रों में स्थान-स्थान पर विरोध हुआ है। "तत्वार्थ सूत्रम्" के अनुसार वह हिंसा कहलाती है जिससे प्रमादी बनकर प्राणभृत जीव को प्राणों से पृथक् किया जाय-

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोहणंहिंसा।

वैशेषिक दर्शन में हिंसारत प्राणी को दुष्ट कहा है- "दुष्टं हिंसायाम्।"

जांभोजी ने अपनी वाणी में हिंसा का घोर विरोध किया है। उन्होने "तुर्की", "छुर्की", भिस्ती तथा इनके अतिरिक्त दूसरों को भी जीव हत्या करने से मनाह किया है। उन्होंने उनके पठन-श्रवण को व्यर्थ बतलाया है, जो पुराण कुराण आदि शास्त्रों को पढ-सुन कर भी जीवों की हत्या करते हैं। वे हिंसा के विरोध में वधिकों से पूछते हैं कि तुम किस व्यक्ति की "स्थापना" के आधार पर बकरी एवं "गाय"[1] को रोषते हो? जो पशु जंगल के घास पर अपना निर्वाह कर दूसरो को अमृत तुल्य दूध देता है, फिर उसके गले पर करद क्यों चलाई जाय? बकरी, भेड और गाय की हत्या से क्या उन्हें असह्य पीडा नहीं होती? जबकि तुम्हारे शरीर में साधारण शूल चुभने से भी तुम्हें भयंकर पीडा का अनुभव होता है। पशुओं को काट कर खाना अभक्ष्य है। उनका तो दूध ही उपयोगी है। जांभोजी ने जीवित प्राणी पर आघात करना सर्वथा ही निंदनीय एवं घृणित कार्य ठहराया है। उन्होंने हत्यारों की "हैं, हैं" कह कर घोर भर्त्सना की है।[2]

हत्यारों को बैल की उपयोगिता बतलाते हुए उसे मारने से मना करते हैं।

---

१. वैदिक आर्य गौ के अनन्य भक्त होते थे। धार्मिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से ऋग्वेद के तीन "गोसूत्र" अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और इन तीनों "गोसूत्रो' मे "गौ" को देवता कहा गया है। गौओ को अवरोध न करे। ऋग्वेद मे इसे अदिति और एक "देवी" के रूप में संबोधित किया गया है। कविगण भी श्रोताओ पर यही प्रभाव डालते हैं, इसका वध नहीं करना चाहिये। गाय की अवध्यता इसकी "अघ्न्या" (अवध्य) उपाधि द्वारा भी होती है, जो ऋग्वेद में सोलह बार मिलती है। अथर्ववेद में एक प्राचीन पशु के रूप में गाय की पूजा को पूर्ण मान्यता मिली है। "गौ" शब्द के "अध्वर' "निर्मल" आदि विभिन्न अर्थ होते हैं। (त्रिपथगा, वर्ष ६, अक ७।) ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से गौ की हिंसा का निषेध इन शब्दो में किया है. जो गौ आदित्यो की भागिनी, रुद्रो का जननी, वसुओं की पुत्री और पयस्विनी है, उसकी हिंसा मत करना। (ऋग्वेद, अष्टम मडल, १०१ सूत्र)

२ जांभोजी की वाणी, शब्द ११, ८।

वे कहते हैं कि बैल तो किसान को भाई से भी अधिक प्रिय होता है, फिर उसका गला क्यो काटा जाय?

जांभोजी कहते हैं कि जिन गाय आदि पशुओ के दूध, दही, छाछ और घृत का खान–पान में उपयोग किया और फिर उन्हीं के हाड–मांस निकाले जायें? रक्त बहा कर उसकी जान मारी जाय और उसे खाया जाय? यह मनुष्य के लिये अति नीच कार्य है। उन्होंने हिंसारत काजी एवं मुल्लाओं को उपयोगी एवं निरीह प्राणी को मारने के कारण "मुरदार" कहा है, क्योंकि ऐसा करना वास्तव मे कायरता है।

जांभोजी ने जीव–हत्यारों को अपनी स्फोटमयी वाणी में सावधान किया है कि जो निरीह जीवों पर जोर–जुल्म करेगा, उसका अंतकाल बहुत ही कष्टदायक होगा। निरीह प्राणियो की आहे हत्यारो के लिये भयंकर संताप का कारण बनेंगी![1] वे उन्हे बुरी तरह फटकारते हैं जो मुहम्मद का नाम लेकर जीवों की हत्या करते हैं। वे उन्हें कहते हैं कि तुम हत्या के प्रतिपादन मे मुहम्मद का नाम मत लो। मुहम्मद ने जीवो का वध नहीं किया और न ही उन्होने किसी को जीवहत्या करने का आदेश दिया। जांभोजी ने मुहम्मद को "हलाली", "विषम विचारी" और "मर्द" कहा है जबकि उन्होने हत्यारों को "मुरदारूं" बतलाया है।[2]

जांभोजी के कथनानुसार जो दूसरों के नाम पर अपनी उदरपूर्ति के लिये जीवहत्या करता है उसकी आत्मा को "अंधेरघुप" नाम के नरक मे डाला जायगा। वहां उसको नाना प्रकार की यातनाये दी जायेंगी तथा वहा उसकी कोई भी मदद के लिये "कूक–पुकार" सुनने वाला नहीं होगा।

जांभोजी रहमान को मानने वालो से जीवों पर रहम करने का कहते हैं। उनका कथन है कि जो चैतन्य रूप ईश्वर तुम्हारे हृदय मे है, वही ईश्वर उन पशुओं मे भी विद्यमान है, यदि ऐसा समझकर जीवों पर रहम करोगे तो निश्चय ही तुम्हें बहिश्त की प्राप्ति होगी।[3] "भैरव", "योगिनी" आदि देवी–देवताओं के "मढ" पर जीवों की बलि देने वाले उन तांत्रिक योगियों को, योग की वास्तविक युक्ति जानने का और कुरान के कलमा पढने वाले काजियों को, कुरान का वास्तविक मर्म समझने का कहते हैं। वे उन लोगो से पूछते हैं कि क्या राम ने तुम्हे हिसा जैसे दानव कर्म करने की आज्ञा दी है ? नहीं, राम की ऐसी आज्ञा नहीं है, तब हिंसा करने वालों को धिक्कार है। जब परमात्मा हिसाब पूछेगा तब कुछ भी कहते नहीं बनेगा।[4]

जांभोजी कहते हैं कि जीवों की हत्या मत करो क्योंकि हिंसा के कारण और कार्य दोनों ही निकृष्ट और हीन हैं। जीव–हत्यारों की नमाज खोखली है।[5] उनका कलमा पढना एवं खुदा का नाम लेना तभी सार्थक है जब वे जीवो की हत्या करना बंद कर दें।[6] किंतु ससार के लोग तो "नांगड", "भागड" आदि पाखंडियों को ही साधु

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द २। २ वही, शब्द १२।

३ वही, शब्द १०। ४ वही, शब्द ७५। ५ वही, शब्द ११। ६. वही, शब्द १०६।

मानकर उनके भ्रम में पडे रह गये। परंतु वे काहे के साधु हैं जो जीवों को देव्यादि के "भढ" पर मारते और खाते हैं। अतएव जांभोजी की राय है कि ऐसे पाखंडियो के जाल में से निकलकर मनुष्य को अहिंसा का उपदेश देने वाले की शरण मे जाना चाहिये।[1] वे कहते हैं कि जीवों को मारना कुमार्ग तो है ही साथ ही उसके निर्माता ईश्वर के सामने उसी के जीव की हत्या का घोर घमंड करना भी है,[2] जो नितान्त बुरा है।

जांभोजी की हिंसा विरोधी विचारधारा का ज्ञान हमें उक्त पंक्तियों से अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त "जंभसार" से यह भी ज्ञात होता है कि जांभोजी ने हिंसा के विरोध में निम्न विधियो के पालन का निर्देश किया है.–

१. झांपारी पाल – जीव बलि का विरोध।
२. जीवाणी विधि का पालन – पानी से छानकर शेष बचे जीवों को पुन: पानी मे पहुंचाना।
३. दूध जलादि को छानकर तथा ईंधन–कंडे आदि को ठोंक कर काम में लेना, जिससे कोई जीव अग्नि में न जले।
४. बैल आदि को बधिया न किया जाय।
५. बकरे, मींडे आदि पशुओं को बधिकों के हाथ न बेचा जाय, अपितु उन्हे पशु–शालाओ में पहुंचा दिया जाय।
६. जंगल में हरिण की रक्षा की जाय। गाय–बकरे की भांति ही हरिण अहिंसक जानवर है।

वनस्पति रक्षा:-

जांभोजी के हृदय मे अहिंसा का महत्व इतना प्रबल होकर जाग्रत हुआ कि उन्होंने चैतन्य जीव रक्षा के अतिरिक्त वनस्पति छेदन को भी अनुचित एवं पापकर्म ठहराया है। उन्होने अपने द्वारा प्रतिपादित २९ धर्म नियमो मे "वनस्पति–रक्षा" को एक धर्म नियम माना है–

हरा वृक्ष नहीं काटना यह सबका मंतव्य
रक्षा में तत्पर रहो जान यही कर्त्तव्य।

जांभोजी ने अपनी वाणी मे सोमवती अमावस्या तथा रविवार के दिन वनस्पति–छेदन का निषेध किया है।[3]

हरी वनस्पति अथवा वृक्षो को विश्नोई पंथ मे स्वर्गादि सुखों का "पोलिया"

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द १६। २ वही, शब्द ३८।
जाभोजी तथा उनके अनुयायियो की अहिंसा धर्म में अतुलित प्रीति देखकर बादशाहो, राजाओं, महाराजाओं तथा ब्रिटिश सरकार ने भी इनके गांवों में किसी प्रकार की जीव हिंसा तथा वनस्पति–छेदन का अपने आदेश पत्रों द्वारा सर्वथा निषेध कर दिया था।
३ जांभोजी की वाणी, शब्द ७, ६४, ११२।

(पहरेदार) बतलाया है। बिश्नोई समाज में खेजड़ी को तुलसी के समान समझते हैं।

वाद-विवाद का निषेध:-

"ज्ञान प्राप्ति का अर्थ है, वाद–विवाद न करना। वाद–विवाद करने से अर्थ है, ज्ञान की प्राप्ति न होना।"

जांभोजी ने अपनी वाणी में वाद–विवाद करने का स्थान–स्थान पर निषेध किया है। वे कहते हैं कि वाद–विवाद को व्यर्थ समझना चाहिये।[1] वाद–विवाद के कारण ही दानवों का नाश हुआ।[2] जो लोग आचार–विचार के महत्व को न समझकर केवल वाद–विवाद ही करते रहते हैं, वे विनाश को प्राप्त होंगे।[3]

जांभोजी कहते हैं कि यदि कोई करोड़ गौओं, पांच लाख घोड़ों, हाथियों, अन्न, स्वर्ण, रेशमी वस्त्र आदि का तीर्थों पर दान करे और कर्ण, दधीचि, शिवि, बलि एवं श्री रामजी की भांति आचार–विचार रखे लेकिन वह यदि "वाद–विवादी" है, अति अभिमानी है और स्वाद का लोभी है तो वह भवसागर से पार नहीं लंघ सकता।[4]

मिथ्या भाषण:-

जाभोजी कहते हैं कि जिसने मिथ्या बोलने का काम किया, वह वस्तुत वास्तविक लाभ से वंचित ही रहा। उन्होने उस प्राणी को भूला हुआ बतलाया है जिसने मिथ्या भाषण किया है।[5] वे उस मिथ्याभाषी से पूछते हैं कि तुमने प्रात.काल से ही झूठ बोलना क्यो आरंभ कर दिया?[6] झूठ से तुम्हें लाभ की अपेक्षा हानि ही है तब फिर क्यो झूठ बोला जाय?

स्नान:-

जांभोजी ने अपने द्वारा प्रतिपादित २६ धर्म–नियमों में स्नान को प्रथम धर्म–नियम माना है। उन्होंने अपने प्रत्येक मतानुयायी को प्रात काल स्नान करना उसके लिये अनिवार्य बताया है। पानी के होते हुए स्नान नहीं करने वालों को उन्होंने "थूलघट" की संज्ञा दी है।[7] उनकी दृष्टि में स्नान का महत्व दान के समान ही नहीं, अपितु उससे भी कहीं अधिक है।[8] वे पवित्रता पर अत्यधिक जोर देते हुए कहते हैं[9] कि कंचन, वस्त्र, घृत, हाथी और घोडो का दान भी स्नान से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।[10] अत. पवित्रता के लिये तथा जीवात्मा के कल्याण के लिये मनुष्य को स्नान करना ही चाहिये। स्नान नहीं करने वाला प्राणी "भंतुला" (वातचक्र) बनेगा और वह घूमता फिरेगा।[11]

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ६५।

२ वही, शब्द २१। ३. वही, शब्द ३०। ४. वही, शब्द ३२। ५. वही, शब्द ७।

६ वही, शब्द ५४। ७ वही, शब्द ११४। ८. वही, शब्द ५७।

९. वही, शब्द १०४।

१०. वही, शब्द १०४।

११. वही, शब्द ३०।

शीलः-

जांभोजी ने शील पालन पर भी बहुत जोर दिया है।[1] वे कहते हैं— जिसने शील का पालन नहीं किया उसे यमपुरी में बडी भारी कठिनाइयां झेलनी पडेगी। वह यमदूतों द्वारा सताया जायेगा।[2] जिसने शील का पालन नहीं किया उसके समस्त कर्म अपवित्र ही माने जायेगे।[3]

नम्रताः-

समाज के व्यक्तियों के पारस्परिक संपर्क और व्यवहार को मृदु बनाये रखने के लिये सदाचार के जिस आवश्यक अग की अनिवार्य अपेक्षा है, वह है नम्रता। नम्रता का अर्थ अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए दूसरे के व्यक्तित्व के महत्व की स्वीकृति है। किसी को अपने व्यवहार में उपेक्षा प्रतीत न हो, यह ध्यान रखना ही नम्रता है। जांभोजी की दृष्टि में नम्रता का अत्यधिक महत्व है। इसीलिये वे नम्रता एवं क्षमाशीलता के पालन के लिये विशेष आग्रह करते हैं।[4] उनका कथन है कि मनुष्य को कभी भी अभिमान में नहीं भूलना चाहिये। नश्वर शरीर से अभिमान करना व्यर्थ है।[5] मनुष्य को "क्षमारूप तप" की साधना करनी चाहिये।[6]

उपकारः-

जाभोजी ने "उपकार" की भी बड़ी प्रशसा की है। दूसरों का हितचिंतन एव उनका हितसाधन ही उपकार कहलाता है। जांभोजी ने उपकार की तुलना वर्षा एवं दुधारू पशुओं से की हैः—

संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं घण बरसंता नीरूं
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं रूही मध्य खीरूं[7]

दानः-

जांभोजी की दृष्टि में सुपात्र को किसी वस्तु का दान देना और अच्छे खेत में बीज बोना, अमृत फल को देने वाला है।[8] अत. दान अवश्य देना चाहिये। वे कहते हैं कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान तो देना ही चाहिये, बल्कि किसी वस्तु के अपने पास होते हुए नकारात्मक उत्तर कभी नहीं देना चाहिये।[9]

जांभोजी की दृष्टि में कुपात्र को दान देना वैसा ही व्यर्थ है जैसे अंधेरी रात में चोर किसी का धन चुराकर पहाड़ पर चढ जाता है और उसके पदचिह्नों तक का कोई पता नहीं लगता है।[10] वैसी ही कुपात्र को दिये गये दान की गति होती है।

सुकृत्यः-

जांभोजी कहते हैं कि "सुकृत्य" अर्थात् शुभ कार्य कभी भी व्यर्थ नहीं जाते।

हक हलाल हक साच कृष्णों सुकृत्त अहल्यो न जाई[11]

अतः मनुष्य को सुकृत्य की उत्तम कमाई करनी चाहिये।

---

१ जांभोजी की वाणी, शब्द ७। २. वही, शब्द ३०। ३. वही, शब्द २०।
४ वही, शब्द २३। ५ वही, शब्द ६४। ६ वही, शब्द १०३। ७. वही, शब्द ६६।
८ वही, शब्द ५६। ९ वही, शब्द १०३। १०. वही, शब्द ५६। ११ वही, शब्द ७०।

क्रियाः-

'क्रिया'' का अर्थ शुभ कर्मों से है। जिसने शुभ कर्म नहीं किये वह यम के हाथों में पडेगा।[1] जांभोजी कहते हैं कि जिस प्रकार कण हीन ''कूकस'' (फुफस) रस विन ''बाकस'' (गन्ना) व्यर्थ हैं उसी प्रकार वह परिवार भी व्यर्थ ही है जिसके द्वारा अच्छी क्रियाओ का सपादन नहीं होता है।[2]

अमावस्याः-

जांभोजी द्वारा प्रवर्तित विश्नोई पंथ में अमावस्या तिथि व अमावस्या व्रत को सर्वोपरि महत्व दिया गया है। जांभोजी की वाणी में भी अमावस्या व्रत का उल्लेख मिलता है।[3]

होमः-

जांभोजी ने होम करना अनिवार्य माना है। जो व्यक्ति होम नहीं करता वह उनकी दृष्टि में अभागा है। होम करने के साथ–साथ भगवन्ननाम जप, तप और शुभ क्रियाये भी होनी चाहिये।[4] ऐसा उनका आदेश है। यज्ञ ज्योति मे ही गुरु के दर्शन होते हैं। यही कारण है कि विश्नोई पंथ अग्नि पूजा और यज्ञ संपादन को प्रमुख धर्म मानता है।

स्वर्गः-

जांभोजी की विचारशृंखला में पुण्यात्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उसे वहा नाना प्रकार के अमृत भोजन तथा मनोवाछित पदार्थों की प्राप्ति होती है।[5] किन्तु वह स्वर्ग तभी मिलता है जब प्राणी मरने से पूर्व ही शुभ कर्मों के द्वारा उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करता है।[6] शुभ कर्मो का सुखद परिणाम ही स्वर्ग है।

नरकः-

पापात्मा प्राणी को नरक एवं उसकी विकट यातनाएं भोगनी पडती हैं। जांभोजी ने नरक को यमद्वार भी बतलाया है। वे प्राणी को सावधान करते हुए कहते हैं कि मर्त्यलोक जैसी सुविधाएं वहां नहीं हैं। सुंदर शाल आदि वस्त्र, घृत, अच्छा आवास, पीने को ठडा पानी, सोने के लिये सुदर महल, सुखद शैय्या तथा पलंग वहा नहीं है। वहा न दया न मया है। वहां तो भयानक यम के दूत हैं जो बडे ही दुर्दान्त हैं तथा मनुष्य को मर्दित करके ही छोडते हैं।[7] जांभोजी की वाणी में नरक के कई भयंकर रूपो का उल्लेख मिलता है।

---

१ जाभोजी की वाणी, शब्द ७२। २ वही, शब्द ७७।
३ वही, शब्द ७। ४. वही, शब्द ७, १३। ५ वही, शब्द ७३।
६. वही, शब्द ७४। ७ वही, शब्द ६६।

वेद-शास्त्रः-

जांभोजी ने अपनी वाणी में कई स्थानों पर वेद–शास्त्र व कुरान का उल्लेख किया है। वे वहां मध्ययुगीन संतों की भांति कहीं भी उनकी निन्दा करते हुए दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु जो वेद–शास्त्र पढकर अथवा सुनकर भी उसका वास्तविक आशय नहीं समझते, उनकी उन्होंने अवश्य भर्त्सना की है। वेदादि को पढकर भी जो "वार", "मुहूर्त" आदि विषय के ग्रंथ पढ़ते हैं तो उनका वह सब व्यर्थ है। वेद–पुराण को पढने वाला यदि "भूत–प्रेत" की आराधना करता है तो निश्चय ही वह पाखंडी है।[1]

१. वही, शब्द ३५, ३६, ७२, ६६।

जांभोजी की वाणी
(तृतीय खण्ड)

सार्थ मूल वाणी

-: मंगल :-

वृहन्नवणम्

ओ विष्णु विष्णु तू भण रे प्राणी, साधे भक्ति ऊधरणों
दिचला सों दानों दाशति दानों, मदसुदानों महमाणों
चेलो चित जाणी शार्ङ्गपाणी, नादे वेदे नी झरणो
आदि विष्णु वाराह दाढा कर, धर ऊधरणों
लक्ष्मीनारायण निश्चल थाणो, थिर रहणों
मोहन आप निरजन स्वामी, भण गोपालो त्रिभुवन तारो–
भणतां गुणतां पाप क्षयो
स्वर्ग मोक्ष जेहि तूठा लाभै, अवचल राजो खापर खानों– क्षय करणों
चीता दीठा मिरग तिरासै, बाघां रोलै गऊ विणासै तीर पुले गुण बाण हयो
तप्त बुझै धारा जल बूठां, यों विष्णु भणता पाप खयो
ज्यों भूख को पालण अन्न अहारो, विष को पालण गरुड दवारो
के के पंखेरू सीचांण तिरासै, यों विष्णु भणंता पाप बिणासै
विष्णु ही मन विष्णु भणियों, विष्णु ही मन विष्णु रहियो
तेतीश कोड वैकुण्ठ पहुता, साचे सतगुरु का मंत्र कहियों

❖❖❖❖

शब्द

(१)

गुरु चीन्हों गुरु चीन्ह पुरोहित, गुरु मुख धर्म बखांणी
जो गुरु होयबा[1] सहजेशीले, शब्दे नादे वेदे तिहिं गुरु का आलिंकार[2] पिछांणी
छव दरशण[3] जिहिं कै रूपण[4] थापण[5] संसार बरतण निज कर थरप्या सो गुरु प्रत्यक्ष[6] जांणी
जिहिंकै खरतर गोठ[7] निरोत्तर[8] वाचा रहिया रुद्र समाणी
गुरु आप संतोषी अवरां पोषी तत्व[9] महारस वाणी
के के अलिया बासण होत हुताशण[10] तामें खीर दुहीजूं
रसूवन[11] गोरस[12] घीय न लीयूं तहा दूध न पाणी
गुरु ध्याईयरे[13] ज्ञानी, तोड़त मोहा
अति पुरसांणी छीजत लोहा
पाणी छल तेरी खाल पखाला
सतगुरु तोड़ै मन का साला
सतगुरु है तो सहज पिछाणी
कृष्ण[14] चरित बिन काचै करवै रह्यो न रहसी पाणी

हे पुरोहित। उस गुरु की पहचान करो जिसने गुरु (परमेश्वर) की पहचान करली है। वह गुरु धर्म का उपदेश करते हैं। जो गुरु–पद के योग्य है वह सहज–शील, ब्रह्म–स्वरुप, आत्मोपभोगी तथा वेद–प्रतिपादित लक्षणों से युक्त है। गुरु के यही आभूषण हैं– इन्हीं लक्षणों से वह गुरु पहचाना जाता है। जिस गुरु के स्वरुप की स्थापना षट्–दर्शन[15] करते हैं (और) जिसने संसार रूपी भांडे को अपने हाथों से संस्थापित किया है, उसी गुरु (परमात्मा) को तुम प्रत्यक्ष[16] जानो– उसका साक्षात्कार करो। (पर !) उसके पास जाने का मार्ग बडा कठिन[17] है। वह कथनी से

---

१. होबा। २. आलीगार ३ दरसण ४ रोपणि ५ थापणि ६ परतकि ७ गोठि
८ निरोतरि ६. तंत १०. हुतासण ११ रसून १२. गोरसूं १३. ध्याइय रे १४. विष्ण।
१५. (क) वेदान्त, सांख्य, योग, मीमासा, न्याय एवं वैशेषिक।
(ख) जोगी जंगम सरेवडा, सन्यासी दरवेश।
छठा दरसण ब्रह्म का, यामें मीन न मेख।।
१६. प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अर्थापत्ति, उपमान और अनुपलब्धि ये षट् प्रमाण हैं।
१७ गोरख कह हमारा "खरतर पंथ"–(गोरखवाणी, पृ. ७२)।

परे है– वहां वाणी निरुत्तर हो जाती है। उस (गुरु) में समस्त रुद्र[1] समा रहे हैं। वह गुरु स्वयं बडा सतोषी है (परंतु) दूसरों– समस्त विश्व– का पोषण करने वाला है। उस गुरु की वाणी तत्त्वरूपी महारस से आप्लावित है।

कोई–कोई अशौच बर्तन होता है (पर वही) जब अग्नि में तपा लिया जाता है, तब वह शुद्ध हो जाता है और फिर उसमें दूध दुहा जाता है। (उसी प्रकार) गुरु के उत्तम सग से (अथवा) ईश्वराराधन से क्षुद्र मनुष्य श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। (परन्तु) रसहीन छाछ से घृतोपलब्धि का होना तो दूर रहा, उसमें तो न दूध ही और न शुद्ध पानी ही (रहता) है अर्थात् विना गुरु व परमात्मा की शरणागति के अन्य देवों की उपासना से किसी प्रकार का लाभ नहीं हो सकता (अतऐव) ज्ञानी गुरु की उपासना अथवा उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये। वह गुरु मोह को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार शाण लोहे के जंग को नष्ट कर डालता है।

(उपदेश रूपी) पानी से अंत करण का प्रक्षालन किया जाता है।। "सतगुरु" ही मन की पीडा को मेट सकता है। (जो) "सतगुरु" है उसकी यही सहज पहचान है। भगवान श्रीकृष्ण की योग–लीला (कृष्ण चरित्र) के विना कच्चे (विना पके) घडे मे न कभी पानी रहा है (और) न कभी रह सकता है।।१।।

(२)

मोरे[2] छाया न माया लोहू[3] न मासूं रक्तूं न धातूं
मोरे माई न बापूं - आपणे[4] आपूं
रोही न रापूं कोपूँ न कलापूं दुख न सरापूं
लोई अलोई त्यूंह तृलोई ऐसा न कोई
जपां[5] भी सोई जिहिं जपे आवागवण न होई
मोरी आद[6] न जाणत[7]
महियल[8] धूंवां बखाणत
उर्ध[9] ढाकले तृसूलूं[10]
आद अनाद[11] तो हम रचीलो हमे[12] सिरजीलो सै कोण[13]?
म्हे जोगी कै भोगी कै अल्प अहारी
ज्ञानी कै ध्यानी कै निज कर्मधारी
सोपी कै पोपी कै जल बिंबधारी
दया धर्म थापले निज बाला ब्रह्मचारी

मेरे (मैं) न छाया[14] (मलीन सत्त्वगुणप्रधान मूला आविद्या) है, न (शुद्ध

---

१ रुद्रों की संख्या ग्यारह मानी गई है– अजेकपाद, अहिब्रध्न, त्वष्टा, विश्वरूपहर, बहुरूप, त्र्यंबक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी और रैवत। २ मोरै ३. लोही ४. आपणे ५. जपा ६. आदि ७ जांणत ८. महीयल ९. उरध १०. तृसूलो ११ आदि अनादि १२ हम १३. कौंण। १४. लोक विश्वास के अनुसार देवता तथा सगुण ईश्वर की प्रतिछाया दिखाई नहीं देती।

सत्वगुणप्रधान) माया है, न रक्त है, न मांस है, न रज है (और) न धातु ही है। मेरे न मां—बाप ही हैं, मैं तो अपने आप मे (स्वयं प्रकाशित) हूं अर्थात् मैं स्वयं के द्वारा उत्पादित हूं, मेरा कोई उपादान कारण नहीं है।

(मैं) न रोता हूं, न चिल्लाता हूं, न (मैं कभी) कुपित होता हूं, न (मैं किसी प्रकार का) संताप करता हूं, न मुझमे दुख है (और) न (मैं) किसी प्रकार के शाप से अभिभूत हूं अथवा न मैं कभी किसी को शाप देता हूं। तीनों लोगों में (मैं)[1] अलिप्त भाव से व्याप्त हूं। मुझ जैसा कोई नहीं है। (हम) उसी का स्मरण करते हैं जिसके जप करने से (मनुष्य का) जन्म मरण रूप आवागमन मिट जाता है।

मेरी आदि (उत्पत्ति को कोई) नहीं जानता है। संसारी लोग तो (मेरे संबंध मे) व्यर्थ का धुंए जैसा अनुमान करते हैं। "उर्ध ढाकले तृसूलू"[2] का अर्थ संदिग्ध है, यहा संगति ऐसी बैठती है— (१) "संसारी लोगों पर मल, विक्षेप और आवरण का ढक्कन लगा हुआ है इसलिये संसारी लोग त्रिताप संतृप्त हैं, (२) आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक, इन तीनों शूलों को ढकना चाहिये।" आदि अनादि के भी (जब) हम रचयिता हैं (तब फिर) हमें बनाने वाला वह कौन है?[3]

हम योगी हैं (या) (सासारिक पदार्थों के) भोक्ता हैं (या) अल्प आहारी हैं। (हम) ज्ञानी हैं (या) ध्यानी हैं (या) (हम) स्वयं कर्म को धारण करने वाले हैं। (हम) सब का पालन पोषण करने वाले हैं (या) जल—बिम्ब की भांति सबके आधार हैं (जैसे सूर्य जल में प्रतिबिम्बित होता है वैसे ही मैं सारे संसार में प्रतिबिम्बित हो रहा हूं।) दया—धर्म को स्वीकारो, मैं स्वयं बाल ब्रह्मचारी हूं।

(३)

मोरे[4] अंग न अलसी तेल न मलियो[5] ना परमल पीसायों
जीमत पीवत भोगत विलसत दीसां[6] नाहीं म्हा पण[7] को आधारूं[8]
अठसठ[9] तीरथ हिरदा[10] भीतर[11] बाहर[12] लोकाचारूं[13]
नान्हीं मोटी जीया-जूंणी[14], अेती सास फुरंतै सारूं[15]
बासंदर क्यों[16] अेक भणीजै, जिहिं के[17] पवण[18] पिराणों[19]
आला सूखा[20] मेल्हे[21] नांही, जिहिं दिश[22] करै मुहाणों[23]
पापै[24] गुन्है[25] वीहै नांही, रीस करै रीसाणों
बहुली[26] दोरै लावणहारूं[27] भावै[28] जाण म जाणूं[29]

---

१. लौकिक—अलौकिक रूप से, ऐसा भी अर्थ है।
२. तीन शूल—काम, क्रोध और लोभ।
३. आदि—जन्म और अनादि—जन्म की हेतु। ४. मोरै ५. मलीयो ६. दीसां ७. पणि ८. आधारों ९. सठि १०. हिरदै ११. भीतरि १२. बाहरि १३. चारौं १४. जीवा १५ सारौं १६. क्यूं १७. कै १८. पवन १९. पिरोणौं २०. सूका २१. मेल्है २२. दिस २३ मुहांणौं २४. पापे २५ गुनहे २६. बौहली २७. हारौं २८. भावैं २९. जाणौं

न तुं सुरनर न तु शंकर न तूं रावण राणों
काचै पिंड[1] अकाज[2] चलावै, म्हा अधूरत दाणों
मोरै छुरी न धारूं[3] लोह न सारूं[4] न हथियारूं[5]
सूरजको रिप[6] विहंडा नाहीं, तातैं[7] कहा उठावत भारूं?
जिहिं हाकणड़ी बळद जु हाकै, ना लोहे की आरूं

मेरे शरीर मे न अलसी का तेल मला गया है (और) न ही सुगंधित द्रव्य का मर्दन किया गया है। (हम जब) भोजन करते हुए, पानी पीते हुए (तथा किसी प्रकार का) उपभोग करते हुए दृष्टिगोचर नहीं होते हैं (तब फिर) हमारा कौनसा (आहार) आधार है?

अडसठ तीर्थ हमारे हृदय देश मे स्थित हैं[8], बाहर के (तीर्थ तो केवल) लोकाचार के लिये हैं। छोटी-मोटी (जो) समस्त जीव-योनियां हैं,[9] ये सब (हमारे) श्वास-स्फुरण मात्र में, बनती (एवं) नष्ट हो जाती हैं-श्वास आने-जाने में जितना समय लगता है उतना भी समय इन जीव-योनियों के निर्माण तथा विनाश में नहीं लगता।

अग्निदेव को अकेला ही क्यो कहा जाय? (जबकि) पवन उसका प्राणप्रिय साथी है। अग्निदेव जब कभी अपना मुंह जिस ओर करता है तब वह उस ओर के गीले (और) सूखे का विचार किये बिना सबको भस्मीभूत कर डालता है। (जब वह कुपित होकर अपने क्रोध को प्रकट करता है तब तो वह) पाप और गुनाहों से भी बिना डरे उसे प्रज्वलित करने वाले के लिये भी सकट का कारण बन जाता है।

तू न "सुरनर" है (और) न ही तू शंकर है, न तू रावण जैसा समर्थ राजा है न दानव जैसा महाधूर्त, तब तुम क्यों इस कच्चे शरीर से अकार्य करने पर तुले हो। मेरे न छुरी धारण की हुई है (और) न लोहे की तलवार, न अन्य ही शस्त्र धारण किया हुआ है। सूर्य का कभी भी शत्रु अधेरा नहीं हो सकता (वह सूर्य को कभी आच्छादित नहीं कर सकता) वैसे ही तुम मुझे परास्त नहीं कर सकते, तब व्यर्थ मे ऐसा भार क्यो उठाया जाय? जिस छडी से बैल हांका जाता है वह लोहे का आरा थोडे ही होता है अर्थात् तुम जैसो को समझाने के लिये मेरे पास अन्य उपाय भी हैं।[10]

---

१. पिंडै २ अगाज ३. धारौं ४. सारौं ५. हथियारौं ६. रिपु ७. ताछैं ८. मिलाइये :- अडसठ तीरथ घट मांहीं गंगा, नीर नितोपती न्हावो। (-लालनाथजी)। ६. न्हानां मोटा लेवै निवेडा, ज्यूं तिल चूरया घाणी। १०. विशेष-शब्द के कथ्य से ऐसा ध्वनित होता है कि यह किसी के प्रति कहा गया है। तभी अग्नि और पवन, शंकर, रावण, सूर्य और अंधेरा तथा बैल हांकने की 'हाकणडी' के उदाहरण प्रस्तुत हुए जान पडते हैं। मूल शब्द में प्रयुक्त 'विहंडा' शब्द 'वचनिका' राठौड रतनसिंह (पृ. ३४) में 'विहंडस्यां' या 'विहंडायस्य' काटेंगे और कटायेंगे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जद[1] पवण न होता पाणी[2] न होता, न होता धर गैणारूं[3]
चंद न होता सूर न होता, न होता गगंदर तारूं[4]
गऊ न गोरू माया जाल न होता, न होता हेत पियारूं
माय[5] न बाप न बहण न भाई, साख न सैंण न होता-न होता पख परवारूं
लख चौरासी जीया जूणी[6] न होती, न होती वणी[7] अठारा भारूं
सप्त[8] पताल फुंणीद[9] न होता, न होता सागर खारूं
अजिया सजिया[10] जीया जूणी न होती, न होती कुड़ी भरतारूं
अर्थ[11] न गर्थ न गर्व न होता, न होता तेजी तुरंग तुखारूं
हाट पटण बाजार न होता, न होता राज दुवारूं
चाव न चहन न कोह का वांण[12] न होता, तद होता अेक निरंजन
शंभू[13] के होता धंधुकारूं
बात कदोकी पूछै लोई, जुग छत्तीस विचारूं
ताह परै रे ! अवर छत्तीसूं, पहला अंत न पारूं
म्है तदपण[14] होता अब पण आछै[15] वल-वल[16] होयसां[17] कह[18]
कद-कद[19] का करूं विचारूं[20]

जब (सृष्टिपूर्व) न पवन था, न पानी था (और) न (उस समय) पृथ्वी (एवं) आकाश ही था। (उस समय) न चन्द्र था, न सूर्य था (और) न ही आकाश मंडल में (ये) तारे थे। न गाय, न बैल (और) न ही (उस समय) माया–जनित (यह) प्रपंच ही था। (उस समय) स्नेह–प्यार भी नहीं था, न माता थी, न पिता था, न भाई–बहिन थे, न (किसी प्रकार का) संबंध था, न कोई सज्जन था (और) न (उस समय) (किसी प्रकार का) पक्षपात और परिवार ही था।

लख चौरासी जीव–योनि भी (उस समय) न थी (और) न ही (उस समय) अठारह भार वनस्पति थी। सातों पाताल, शेषनाग (और) न ही (उस समय) क्षार–समुद्र था। अजीव–सजीव (स्थावर–जंगम) जीव योनिया भी (उस समय) न थी (और) न ही (उस समय) स्त्री–पुरुष का जोडा था। (उस समय) न धन था, न संपत्ति थी (और) न (किसी प्रकार का) अभिमान ही था, न (उस समय) तेज चलने वाले पवनगामी घोडे ही थे। न (उस समय) दुकान थी, न शहर था (और) न ही बाजार था। राजद्वार गढ–कोटादि भी (उस समय) नहीं थे।

न (उस समय) (किसी प्रकार की) उमग थी, न इच्छा थी (और) न ही (उस समय) (किसी प्रकार की कोई) आदतें थी, उस समय तो अेक केवल माया रहित

---

१ जदि २. पांणी ३. गैणारौं ४. तारौं ५ माई ६. जूण ७. वर्णी ८. सपत ९. फर्णींद १०. अजीया सजीया ११. अरथ (वैसेही) गरथ १२. यहां बाण शब्द के बाद "न" है। १३. सिंभु १४. पणि १५ आछैं १६. बलि–बलि १७. होइसां १८. कहि १९. यहां केवल अेक बार ही "कदि" आया है। २०. यहां अत्यानुप्रास "रूं" के स्थान में प्राय· सभी जगह रौं, रों उल्लिखित है।

"निरजन शंभू" ही था या फिर उस समय "धुंधकार" (अंधकार) था। हे लौकिक प्राणी! तुम किस समय की बात पूछ रहे हो? मैं तो छतीसों युगों का विचार (कथन) करने वाला हू। उससे भी आगे के छतीस युगों का, जिसके, उस किनारे का कोई अंत पार नहीं है (मैं उसका भी विचार करने वाला हूं) हम उस समय थे, अब हैं (और) भविष्य मे भी रहेंगे, कहो! कब–कब किस–किस युग का विचार करूं?

(५)

अइयालो अपरंपर वाणी, म्हे जपां न जाया जीऊं[1]
नव अवतार[2] नमो नारायण, तेपण[3] रूप हमारा थीयूं[4]
जपी तपी तक[5] पीर रिषेश्वर, कांय जपीजै? तेपण जाया जीऊं
खेचर भूचर खेत्रपाळा, परगट गुप्ता[6] कांय जपीजै? तेपण जाया जीऊं
वासग[7] शेष[8] गुणिंद[9] फुणिंदा कांय जपीजै? तेपण जाया जीऊं
चौंसठ[10] जोगन[11] बावन बीरूं[12], कांय जपीजै? तेपण जाया जीऊं
जपां तो[13] अेक निरालंभ शंभू[14] जिहिं के माय[15] न पीऊं
न तन रक्तुं[16] न तन धातू[17], न तन ताव न सीऊँ
सर्व सिरजत मरत[18] विवरजत[19], तास न मूल जो लेणा कीयों
अइयालो अपरंपर वाणी, म्हे जपां न जाया जीऊं

हे आगन्तुक[20]! (हमारी यही) अलौकिक वाणी (है कि) हम जन्मधारी जीवों का स्मरण नही करते हैं! नव–अवतार (और) (जो) नवों नारायण हैं, वे हमारे ही रूप मे स्थिर हुए हैं। जपी, (जपकर्त्ता) तपी (तपस्वी), पीर (और) ऋषियो को क्यो जपा जाय? (जबकि) वे (सब) जन्म लेने वाले जीव हैं।

आकाश मे उडने वाले गरुडादि पक्षी, पृथ्वी पर चलने वाले प्राणी (तथा) प्रकट व गुप्त रहने वाले क्षेत्रपालो को भी किसलिये जपा जाय? वे भी तो अल्पज्ञ जीव मात्र ही हैं। वासुकि नाग (और) सहस्रों फन–धारी शेष नाग को भी क्यों जपना? (जबकि) वे भी उत्पन्न होने वाले प्राणी है। चोंसठ योगिनिया (और) बावन वीरों का भी जप क्यो किया जाय? जबकि वे भी सब जन्मे जीव हैं।

(हम तो) एक निरालम्ब शंभू[21] का ही जप करते हैं, जिसके न माता है (और) न पिता। (वह अजन्मा है, वह) शंभू (दिव्यदेह है) उसके शरीर मे न रक्त है, न धातु

---

१. जीवौं २. औतार ३. पणि ४. थीयौं ५. "तक" नहीं केवल "क" ही "तपी'क" या "तपी कै" के रूप मे रहा है। यहां केवल "क" ही है। ६ गुपता ७. वासिग ८ सेस ६. गणींद १० चोसठि ११. जोगणि १२. बिरौं १३ यहां केवल "त" है, जो "जपांत" के रूप में आया है जिसका "जपे ही तो" अर्थ होता है। १४ सिंभू १५ माई १६ रगतौं १७. धातौं १८. मृत १६. विवर्जित २०. (देखिये मूल) "अइयालो"–आअेल, आने के अर्थ में। २१. निरालम्ब – जिसका अस्तित्व किसी अन्य पर आधार नहीं रखता।

है (और) न (उसके) शरीर में शीतोष्णता ही है। वह सबका रचयिता है (और) मृत्यु से विवर्जित, (पर) (ऐसा अनुभव तभी होता है जबकि) उससे किसी ने "मूल" (सत्य) लेना स्वीकार किया हो? हे आगन्तुक! (यह हमारी) "अपरपर वाणी" है, हम जन्मधारी जीवो का जाप नहीं करते ।

(६)

भवन[१]-भवन म्हे[२] अेका जोती
चुन[३] चुन लीया[४] रतना मोती
म्हे खोजी थापण[५] हो जी नाहीं
खोज लहां धुर खोजूं
अलाह अलेख अडाल अजोनी
स्वयंभू[६] जिहिं का किसा विनाणी
म्हे सरै न बैठा सीख न पूछी
निरत सुरत सब जाणी
उतपति[७] हिन्दू जरणा जोगी
क्रिया ब्राह्मण दिल दरवेसां
उन्मन[८] मुल्ला[९] अकल मिसल मानी[१०]

समस्त भवनो में हम एक (अखड) ज्योति से व्याप्त हैं। रत्न (एव) मोती (की भांति जो साधन-सपन्न मुमुक्षु प्राणी हैं उनको मैंने कल्याण के लिये) चुन लिया है। हम (सत्य की) खोज करने वाले हैं किन्तु तुम्हें (इस बात का) बोध नहीं है, (हम) जिस ध्रुव (सत्य-परमेश्वर) की खोज करते हैं- (वह) अल्लाह (है) अलेख (है) अडाल (है) अयोनि-अजन्मा (है और) न जाने वह क्या-क्या है-उसका कौन से "विन्नाण" विमर्श के द्वारा कथन किया जाय? (पर हमारा वही खोज का विषय है)।

हमने (उसका) यह ज्ञान, किसी के पास बैठ कर (तथा) किसी से शिक्षा पाकर प्राप्त नहीं किया है (बल्कि) अनुराग (और) तत्व की पुन पुन स्मृति के द्वारा पाया है।[११] (हम) उत्पत्ति से हिन्दू, सहनशीलता मे योगी, कर्म से ब्राह्मण, हृदय से वीतराग दरवेश (और सांसारिक) उदासीनता में मुल्ला के समान हैं, (हमारी) बुद्धि इसी भाति रहती है।

---

१. भवण भवण २ म्हारी ३. चुणि चुणि ४. लेसां ५ थां विड ६. सिंभू ७. उतपत ८. उनमुन ९. मुला १०. माणीं ११. जांभोजी कहते हैं कि हमारे इस ज्ञान को दूसरे के संशोधन तथा प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। "अनेक जन्म संसिद्धि" की भांति ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान जाभोजी को पूर्णरूपेण आत्मसात् हुआ है।

हिन्दू होकर[1] हर[2] क्यों[3] ना[4] जंप्यो[5] ! कांय दह दिश[6] दिल पसारयों
सोम अमावस अदितवारी[7], कांय काटी बनरायों[8]
गहण गहंतै बहण बहंतै निर्जल[9] ग्यारस[10] मूल बहंतै कांय रे मुरखा
तैं[11] पालंग[12]
सेज निहाल बिछाई
जा दिन तेरै होम न जाप न तप न क्रिया जाण[13] कै भागी कपिला गाई
कूड़ तणों जे करतब कीयो नातें[14] लाव नरायों
भूला[15] प्राणी आल[16] बखाणी न जंप्यो सुर रायों
छंदै[17] कहां[18] तो बहुता[19] भावै, खरतर को पतियायों
हिव की बेलां हिव न जाग्यो, शंक[20] रह्यो कदरायों
ठाढी बेला ठार न जाग्यो ताती बेलां तायों
बिंबै बेलां विष्णु[21] न जप्यो[22] ताछै[23] का चीन्हों कछु कमायों
अति आलस भूलावै भूंला, न चीन्हों सुर रायों
पार ब्रह्म की सुध नहीं जाणी, तो नागे जोग न पायों
परशुराम[24] कै अर्थ[25] न मूवा, तांकी निश्चय[26] सरी न कार्यों

हिन्दू होकर (तुमने) हर (हरि) का स्मरण क्यों नहीं किया? हृदय को दसों दिशाओं में किसलिये भटका दिया? (हरि विमुखता व विषयासक्ति हिन्दुत्व के लक्षण नहीं हैं, तुमने हिन्दू होकर) सोमवती अमावस्या (एवं) रविवार के दिन[27] वनस्पति को क्यों काटा? हे मूर्ख ! (हिन्दू होकर सूर्य–चंद्र के) ग्रहण होते समय, (रास्ते में किसी) वाहन पर आरूढ हुए[28], निर्जला एकादशी को (और) स्त्री के ऋतुकाल में (सांसारिक) आनंदोपभोग के लिए पलंग पर (तुमने) किसलिये शयन किया? जितने दिन तेरे (घर पर) होम, ईश–स्तवन, तपस्या (आदि) शुभकर्म नहीं होंगे (तब तक) जानिये कि (तुम्हारे घर में) कपिला (धर्मरूपी) गाय पृथक् है।

(तुमने) झूठ का (यदि) कार्य किया (तो) उसके फलस्वरूप (तेरे स्वार्थ–परमार्थ दोनो प्रकार के) लाभ नष्ट हो जायेंगे। हे भ्रमित प्राणी ! (तुमने जो कुछ भी बोला वह सब) व्यर्थालाप (ही) किया (यदि) सुर–राज–विष्णु–नाम का उच्चारण नहीं किया तो। आत्मप्रशंषापूर्ण मीठी बात कही जाय तो (वह) सबको अच्छी लगती है (पर) सत्यतापूर्ण प्रखर बात पर कौन आश्वस्त होता है?

---

१ होयकै २ हरि ३ क्यूं ४. न ५ जंप्यौ ६. दिस ७ आदितवारी ८ बणरायौं
६. निरजल १० ग्यारसि ११. यहां "तैं" नहीं है। १२. पलग १३ जाणक
१४. नते १५. भूलै १६ आलि १७. छदै १८. कहा १६ बहुता २०. संकि रह्यो २१ विसन
२२. जंप्यौ २३ तातैं २४ परसराम २५. अरथ २६ निहचै।
२७. हिन्दू धर्मशास्त्रो के अनुसार अमावस्या व रविवार को वनस्पति–छेदन निषेध है।
२८. यहां "मूल नक्षत्र" से भी अर्थ संगति बैठती है।

हृदय जाग्रत होने के योग्य समय मे[1] (जिस समय हृदय में सात्विकता के कारण स्फुरण शक्ति अधिक थी– बाल्यावस्था) हृदय से जाग्रत नहीं हुआ अपितु शंकाकुल होकर (कि लोग मुझे अभी से हरि–भक्ति की ओर लगने से क्या कहेंगे) कतराता रहा। ठंडे समय प्रात. (जगा भी तो वह केवल दही को) ठंडा करने को ही जगा (न कि हरि सुमरण के लिये और) दिन मे (अथवा युवावस्था में) अपने स्वार्थ के लिये दौड़ता रहा। (तुमने) सूर्यास्त (वृद्धावस्था के) समय भी विष्णु का स्मरण नहीं किया, क्या ऐसा करके तुमने कुछ (विशेष) चिह्नित किया? कुछ कमाया? आलस्य की अति भूलभुलैया में (तुमने) परमात्मा की पहचान नहीं की।

(यदि) पर.ब्रह्म की खबर नहीं पाई तो (चाहे वह) "नागा" (साधु विशेष) ही है, (वह भी) योग–तत्व को नहीं पा सका। (जो मनुष्य) परशुराम की प्राप्ति के लिये (जीवित ही) नहीं मर गया, निश्चय ही उसका (यह) शरीर सार्थक सिद्ध न हुआ।

(८)

ॐ सुण रे[2] काजी सुण रे मुल्ला[3] सुण रे बकर कसाई
किणरी थरपी छाली रोसो किणरी गाडर गाई
सूल चुभीजै करक[4] दुहेली तो[5] है है जायो जीव न घाई
थे तुर्की[6] छुर्की[7] भिस्ती दावो, खायबा[8] खाज अखाजूं
चर[9] फिर आवै सहज दुहावै, तिसका[10] खीर हलाली
जिस्के[11] गले करद क्यों[12] सारो, थे पढ[13] गुण रहिया खाली

हे काजी सुनो! हे मुल्ला सुनो! बकरों का वध करने वाले कसाई (तुम भी) सुनो! तुम किसकी स्थापना के (बल) पर बकरी (और) किसके कहने से भेड़ (तथा) गाय का वध करते हो?

(अपने शरीर में) कांटा चुभने पर (भी जब तुम्हें) असह्य पीडा होती है तब क्या जीवित प्राणियों पर घात करने से उन्हें (वैसी) पीड़ा नहीं होती? तुम (जीवो पर) छुरी चलाने वाले तुर्क (उन जीवों के) अभक्ष्य (मांस) को खाकर (भी) बहिस्त में जाने का दावा करते हो? (जो पशु जंगल में) घास खाता है (और घर) आकर सरलता से दूध देता है, उसका (वह) दूध ही ग्रहण करने योग्य है। (ऐसे उपयोगी पशु के) गले पर (तुम) "करद" क्यों चलाते हो? तुम पढ लिख कर (भी) (शिक्षित नहीं हुऐ) खाली ही रह गये।

---

१. मूल शब्द में प्रयुक्त "हिव" का "अब" या "वर्तमान काल" भी अर्थ होता है।
२. सुणिरे। ३. मुलां। ४. करकै। ५. यहां "तो" नहीं है। ६. तुरकी। ७. छुरकी।
८. खाइबा। ९. चरि। १०. तिसका ११. तिसके। १२. क्यूं। १३. पढि।
०० मिलाइयेः– सांभळ मुल्ला, सांभळ काजी, सांभळ बकर कसाई
किण फरमाई बकरी विरदो, किण फरमाई गाई
गाय गोरखनै इसी पियारी, पूत पियारो माई
फिर चरि आवै सांझ दुहावै, राख लेवै सरणाई – सिद्ध जसनाथजी, "सबद–ग्रंथ"।

दिल साबत[1] हज काबो नेड़ै[2], क्या उलवंग पुकारो
भाई नाऊँ बलद पीयारो[3], ताकै[4] गळै[5] कर्द[6] क्यों सारो
बिन[7] चीन्हैं[8] खुदाय[9] बिवरजत, केहा मुसलमानों[10]
काफर मूकर[11] होयकर[12] राह गमायौ, जोय जोय गाफल करै धिगाणों
ज्यों थे पच्छिम दिशा[13] उलवंग पुकारो, भल जे यों चीन्हों रहमाणों
तो रूह चलन्ते[14] पिंड पड़ंते[15], आवै भिस्त विवाणों
चढ चढ[16] भींते[17] मड़ी मसीते, क्या[18] उलवंग पुकारो
काहे काजै गऊ विणासो तो करीम गऊ क्यों चारी
काहीं[19] लीयों दूधूं[20] दहियो[21] काहीं लीयो घीयों[22] महियों[23]
काहीं लीयो हाडूं[24] मासूं काहीं लीयों रक्तुं[25] रुहियों
सुण रे[26] काजी! सुणरे मुल्लां[27] यामें[28] कौंण भया मुरदारूं
जीवां ऊपर[29] जोर करीजै, अंतकाल[30] होयसी भारूं

(जिसका) हृदय सच्चा है (उसके लिये) काबे की हज नजदीक (ही) है। (फिर तुम) उसको पाने के लिये क्या ऊंची बांगें (अजान) लगाते हो?[31] (खुदा के लिये बांग लगाने वालों, किसान को) बैल भाई से भी अधिक प्रिय होता है[32] (तुम उसकी) गर्दन पर करद क्यों चलाते हो? (चाहे जितनी बांगें लगाई जाय) बिना पहचान के (वह) खुदा (उससे) अलग ही रहता है (जो खुदा को नहीं जानता वह) कैसा मुसलमान? काफिर ने (खुदा से किये अपने) वादे से मुकर कर (अपने जीवन के) मार्ग को नष्ट कर लिया (फिर भी वह) मूर्ख (पश्चिम की ओर मुंह करके) हठपूर्वक ईश्वर को देखना चाहता है।

पश्चिम दिशा की ओर जैसे तुम आवाज लगाते हो, (इस विधि से) भला (वह) ईश्वर यदि पहचाना जाता तो (निश्चय ही इस प्रकार परमात्मा को पहचानने वालों के लिये उनके) देहावसान के समय स्वर्ग से विमान आते (पर ऐसा नहीं देखा गया तब तुम उसको पाने के लिये) मकबरे की दीवाल (तथा) मस्जिद पर चढ–चढ कर क्यो ऊची आवाजें लगाते हो?

---

१. साबति २. नेडे ३ पियारो ४. तिहिके ५ गले ६. करद ७. बिण ८. चीन्हे ९. खुदाई १०. मुसलमानु ११. मुकरु १२. होयकै १३. दिसा १४. चलता १५. पडंता १६. चढि चढि १७. भींते १८. क्या १९. काही २०. दूध २१. दहियौं २२. घीऊं २३. महीयो २४. हाडों मासौं २५. रगतु २६. सुणिरे २७. मुलां २८. यामे २९. उपरि ३०. अंतिकाल।
३१. परमात्मा एकदेशीय नहीं है जो कि वह किसी काबे आदि एक स्थान पर मिले और न वह अचेतन ही है कि उसे आवाज लगाकर चैतन्य किया जाय।
३२. भाई कभी किसी कार्य के लिये इकार भी कर सकता है पर बैल ऐसा नहीं करता और वह किसान के लिये अन्नोत्पादन में सहायक भी होता है।

गऊ का विनाश तुम किसलिये करते हो? (यदि यह विनाशनीय होती तो) "करीम" गायें क्यों चराते? (तुमने इसका) दूध–दही किसलिये खाया (और) किसलिये (इसके) घृत (और) छाछ का उपभोग किया? (जब तुमने ऐसा कर लिया फिर तुमने इसके) हाड़ (और) मांस को क्यों लिया? (और) किसलिये उसकी जान मार कर (उसका) रक्त पिया?

हे काजी सुनो! हे मुल्ला सुनो! इन (वध्य और बधिक) में (बताओ) मृतक तुल्य कौन हुआ? (जो) जीवों पर जोर–जुल्म करेगा (उसके लिये) अतकाल भयंकर रूप से कष्टदायक होगा।

(१०)

विसमिल्ला[1] रहमान रहीम
जिर्हिकै सदकै[2] भीना भीन, तो भेटीलो रहमान रहीम
करीम काया दिल करणी कलमा करतव कौल कुरांणों
दिल खोजो दरयेश[3] भईलो, तइया[4] मुसलमाणों
पीरां पुरपां[5] जमी[6] मुसल्लां[7] कर्तव लेक सलामों
हम दिल लिल्ला[8] तुम दिल लिल्ला रहम करै रहमाणों[9]
इतने मिसले[10] घालो मीयां, तो पावो भिस्त[11] इमाणों[12]

श्रीगणेश में[13] ही (जिसने अपने हृदय से) उस (परमात्मा) पर (यदि) "भिन्न–भाव" न्यौछावर कर दिया है तो (उसको वह) परमात्मा (अवश्य ही) दया करके मिलेगा।

(शुभ) कर्मों (रूपी) शरीर (हो) --शरीर से अच्छे कार्य किये जायं, करणी (रूपी) दिल (हो)—हृदय से करने योग्य कार्य ही किये जायें, कर्त्तव्य, (रूपी) कलमा (हो)— कर्त्तव्य कर्म किये जायं (और सत्य) वचन (रूपी) कुरान (हो)— मनुष्य को अपने कौल से कभी नहीं मुकरना चाहिये।

(यदि) हृदय देश में ही (ईश्वर) को खोजोगे तो दरवेश (ब्रह्मविद् ब्रह्मैभवति) के समान हो जाओगे (और) इसी प्रकार (सच्चे) मुसलमान (बन सकोगे)।

देखो ! पीर, बुजुर्ग पुरुष (और) जमायत मुसलमानों द्वारा (जो) सलाम (सलामत) पढी जाती है (वह) (इसी ओर) बोध–निर्देश (करती है कि वह) परमात्मा हमारे दिल में भी है (और वह) परमात्मा तुम्हारे दिल मे भी अवस्थित है[14] (जो ऐसा

---

१. विसमिल्ला २. सिदके ३. दरवेस ४. तईया ५. पुरसां ६. जिमि ७. मुसला ८. लिला ९. रहमानों १०. मसले ११. भीस्ति १२. ईमानों १३. "बिसमिल्लाहहिर्रहमाननिर्रहीम" कुरान की इस आयत को ही बोलकर मुसलमानों द्वारा प्रत्येक कार्य आरंभ किया जाता है। जिसका भाव है कि वह परमात्मा परमदयालु और कृपालु है। १४. सलामत पढना— वह दुआ पढना जिसमें खुदा के नित होने, सर्वकाल में विद्यमान होने की बात कही गई है।

सोचता है उस पर वह) परमात्मा दया करता है। हे मियां ! (यदि तुम) इस साधना पद्धति से चलो तो, स्वर्ग के विमान पा सको।

(११)

दिल सायत[1] हज कायो नेड़ै[2], क्या उलवंग पुकारो
सीने सरवर[3] करो बंदगी, हक्क नुमाज[4] गुजारो[5]
इंह[6] हेड़ै[7] हर दिन की रोजी तो[8] इसही[9] रोजी सारो
आप खुदायंद लेखो मांगै, रे विनही गुन्हैं जीव क्यों मारो
थे तक[10] जाणौं तक पीड न जाणों, बिन[11] परचै बाद नमाज गुजारो[12]
चर फिर आवै सहज दुहावै, तिसका खीर हलाली
तिसके गले करद क्यों सारो, थे पढ[13] गुण रहिया खाली
थे चढ-चढ[14] भीते मडी मसीते क्या उलबंग पुकारो
कारण खोटा करतब हीणा, थारी खाली पड़ी नमाजों[15]
किंह[16] ओजू तुम धोवो आप, किंह ओजू तुम खंडो पाप
किंह ओजू तुम धरो धियान, किंह ओजू चीन्हों रहमान
रे मुल्लां मन माहिं मसीत नुमाज गुजरिये[17]
सुणता ना क्या खड़ा- पुकरिये[18]
अलख न लखियो[19], खलक पिछाण्यों[20] चांम कटे क्या हुइयों
हक्क हलाल पिछाण्यों नाहीं, तो[21] निश्चै[22] गाफल दोरै दीयों

दिल (यदि) सच्चा (है तो) हज (और) काबा नजदीक ही है, फिर ऊंची बांग (लगाकर) क्या पुकारते हो? (परमात्मा की) दिल खोलकर (सच्ची) भक्ति करो (और अपनी) कर्त्तव्य कर्म (रूपी) नमाज पढो। (अपनी हक की कमाई) के इस धंधे से (यद्यपि) प्रतिदिन (होने वाली) आय (थोड़ी भी) होती है (तदपि) उसी में अपना कार्य चलाओ। अरे, (तुम) बिना अपराध के ही जीवो को क्यो मारते हो? (ऐसा मत करो क्योकि) स्वयं परमात्मा (तुमसे) हिसाब पूछेगा। तुम (जीवों को मारने की) ताक लगाना तो जानते हो (पर तुम) उनकी (होने वाली) पीडा को नहीं देख सकते (तुम) बिना अनुभव के देखा–देखी (ही) नमाज पढते हो।

(जो दुधारू पशु) जंगल का घास खाकर सरलता से दूध देता है, उसका (तो वह) दूध (ही) पवित्र व ग्रहण करने योग्य है, (तुम) उसके गले पर छुरी क्यों चलाते हो? (जब) तुम (कुरान आदि) पढ कर (भी) गुणो से खाली रहे (तब) तुम मंडी और मस्जिद की दीवार पर चढ–चढ कर क्या ऊंची बांग पुकारते हो? (हिंसा का) निमित्त "खोटा" है। (और उसका) कार्य हीन है (यदि तुम ऐसा करोगे तो)

---

१. सावति २. नेडे ३. सर्बर ४. निवाज ५. गुदारो ६. जिस ७. हीले ८. "तो" नहीं है ६. सोई १०. तकि ११. बिण १२. गुदारो १३ पढि गुणि १४ चडि चडि १५ निवाजों १६ किंहि उर्जु १७. गुजारिये १८. पुकारिये १६. लखियो २०. पिछाणौं २१ "तो" नहीं है। २२ निहचै।

तुम्हारी नमाजें खाली पडी रह जायेगी।

कौन सी वजू (से) तुम अपने आप को पवित्र करते हो? कौन सी वजू से तुम पाप को खंडित करते हो? कौन सी वजू से तुम (परमात्मा का) ध्यान लगाते हो? (और) कौन सी वजू से (तुम) परमात्मा को पहचानते हो?

अरे मुल्ला ! मन में ही मस्जिद है (उसमें ध्यान लगाकर) नमाज पढिये! क्या (वह परमात्मा) सुनता नहीं है (जो उसे) खडा होकर पुकारा जाय? (तुमने) परमात्मा को (तो) जाना नहीं (केवल) संसार को ही पहचाना है। (मात्र) चमडी कटने (सुन्नत होने) से क्या हुआ? (अरे) गाफिल (यदि) "हक्क हलाल" को नहीं पहचाना तो निश्चय ही नरक में डाल दिये जाओगे।

(१२)[1]

महमद महमद न कर काजी, महमद का तो विषम विचारुं
महमद हाथ करद जो होती, लोहै घड़ी न सारुं
महमद साथ पयंयर सीधा, एक लख असी हजारुं
महमद मरद हलाली होता, तुमी भये मुरदारुं[2]

(हे) काजी (तुम जीव हिंसा के अपने स्वार्थ में) "मुहम्मद–मुहम्मद" न करो– हिंसा के समर्थन में उसके नाम की दुहाई मत दो[3] मुहम्मद के विचार तो (बडे) विषम थे। "मुहम्मद" के हाथ में जो करद थी (वह) न लोहे (और) न ही (वह) "विजलसार" के द्वारा निर्मित थी[4] (वह अहिंसा की छुरी थी।)

(तुम मुहम्मद की क्या बात करते हो?) मुहम्मद साहब के साथ तो एक लाख

---

१ यह शब्द "श्री जंभसागर" (लीथो) मे नहीं है। २. यही शब्द "गोरख–वाणी" के पाठ से मिलाइये –

महमंद महमंद न करि काजी, महमंद का बौहोत विचारं,
महमंद साथि पैकवंर सीधा ये लख अजी हजार– गो० वा० पृ० ७२। और
महमंद महमंद न करि काजी, महमंद का विषम विचारं
महमंद हाथ करद जे होती, लोहै घड़ी न सारं
सबदै मारी सबदै जिलाई ऐसा महमद पीर
ताकै भरमि न भूलौ काजी, सो बल नहीं सरीरं– वही पृ० ४५।

३. स्वार्थी अपने स्वार्थ में किसी महान आत्माओं का नाम लेकर पाप एवं पाखंड करते हैं। ४. "जिस छुरी का प्रयोग मुहम्मद साहब करते थे वह सूक्षम छुरी "शब्द" की छुरी थी। वह शिष्यों की भौतिकता को इसी "शब्द" छुरी से मारते थे जिससे वे संसार की विषय वासनाओं के लिये मर जाते थे। परंतु उनकी वह "शब्द छुरी" वस्तुतः जीवन–प्रदायिनी थी क्योंकि उनकी बहिर्मुखता के नष्ट हो जाने पर ही उनका वास्तविक आभ्यंतर आध्यात्मिक जीवन आरंभ होता है। मुहम्मद ऐसे पीर थे। हे काजियो, उनके भ्रम में न भूलो, तुम उनकी नकल नहीं कर सकते। तुम्हारे शरीर

अस्सी हजार पीर–पैगम्बर (भवसागर से) मुक्त हो गये।[1] मुहम्मद मर्द (और) ईश्वर के प्रति कृतज्ञ था (पर) तुम तो मुर्दा हो।

(१३)

कायरे[2] मुरखा[3] तैं[4] जन्म गमायो, भुय[5] भारी ले भारूं
जा दिन तेरे होम न जाप न[6] तप न क्रिया, गुरु न चीन्हों पंथ न पायो अहल गई जमवारूं
ताती बेला[7] ताव न जाग्यो[8], ठाढी बेला ठारूं
बिंबै बेला विष्णु न जंप्यो[9] तातैं बहुत भई कसवारूं
खरी न खाटी देह बिणाठी, थिर न पवणा पारू
अहनिश आव[10] घटन्ती जावै, तेरा[11] श्वास सभी[12] कसवारूं
जा जन मत्र विष्णु न जप्यो, ते नर कुवरण कालू
जा जन मत्र विष्णु न जप्यो, ते नगरे कीर कहारूं
जा जन मंत्र विष्णु न जंप्यो, कांध[13] राहै[14] दुख भारूं
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, ते घण तण करै[15] अहारूं
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, ताको[16] लोही मास विकारूं
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, गांऊे गाडर सहरे,सूवर जन्म जन्म अवतारूं
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, ओडा कै घर पोहण होयैसैं[17] पीठ सहै दुख भारू
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, रानीवासो[18] मोनी बैसे दूकै सूर सवारूं
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, ते अचल उठावत भारूं
जा जन मत्र विष्णु न जंप्यो, ते न उतरिबा पारूं
जा जन मंत्र विष्णु न जंप्यो, ते न दौरै घूंप[19] अधारूं
तातैं तंत्र न मंत्र न जडी न बूटी, ऊंडी पड़ी पहारूं
विष्णु नै दोष किसो रे प्राणी, तेरी करणी का उपकारूं

अरे मूर्ख, तैंने (मनुष्य) जन्म लेकर (व्यर्थ में) क्यो खोया? (तुमने) पृथ्वी को (अपने भार से क्यो) भाराक्रान्त किया। जिस दिन से तेरे (घर पर) होम नहीं, ईश–स्तवन नहीं, तप (आदि शुभ) क्रियाये नहीं (और) न (ही तुमने) गुरु को पहचाना, न (सही) मार्ग (ही) पा सका (तो इस प्रकार तेरा) मनुष्य जीवन व्यर्थ मे ही चला गया।

में वह (आत्मिक) बल नहीं है जो मुहम्मद मे था। गोरख के अनुसार मुहम्मद जिन बातो को आध्यात्मिक दृष्टि से कहते थे उनको उनके अनुयायियों ने भौतिक अर्थ में समझा।" — गोरखवाणी, पृ० ४५।

१. "निरंजन पुराण" मे भी एक लाख अस्सी हजार पीर पैगम्बरो का उल्लेख हुआ है। २. कायरे ३. मूरख ४. तैंने ५. भुवि ६ नहि ७. बेलां ८. लाग्यो ९. जपियो १०. आयु ११. तेरे १२. सबी १३. काधे १४. सहु १५ करे १६. ताका १७ होयसे १८. रानेदासो १९. घूप।

दिन (युवावस्था) मे (तो तू) ईश्वर की ओर थोडा भी जाग्रत नहीं हुआ। प्रात काल (बाल्यावस्था) में ठडा रहा (अथवा) सर्दी के (भय से ईश्वर–स्मरण के लिये न जगा पर तुमने तो) शाम (वृद्धावस्था) के समय भी विष्णु को नहीं जपा, इससे तुम्हारी बहुत बड़ी हानि हुई। (तुमने मनुष्य जन्म लेकर) सच्ची (ईश्वर के नाम की कमाई तो) नहीं की (पर तेरी) देह नष्ट हो गई, पवन (रूपी) प्राण (किसी के भी) स्थिर नहीं हैं (यह तो) पार होने वाले हैं। (तेरी) आयु अहर्निश घटती ही जाती है (बिना हरि–स्मरण के) तेरे सभी श्वासो की हानि हो रही है।

जिस मनुष्य ने विष्णु मंत्र का जप नहीं किया वे मनुष्य अकुलीन (एवं) कलंकित हैं। जिस मनुष्य ने विष्णु का जप नहीं किया वे (मनुष्य) नगरों मे कीर (भीलादि और) कहार होंगे। जिस मनुष्य ने विष्णु मत्र का जप नहीं किया (वे भारवाही पशु बन कर अपने) कंधों पर भार के दुख को सहेंगे। जिस मनुष्य ने विष्णु मंत्र का जप नहीं किया (और) वे (यदि) अधिक भोजन करते हैं – जिस मनुष्य ने विष्णु मंत्र को नहीं जपा, उसका (वह अधिक भोजन से बढा हुआ) रक्त (और) मास बेकार चला गया (अथवा) विकृत ही हुआ।

जिस मनुष्य ने विष्णु मंत्र का जप नहीं किया (वे मनुष्य) जन्म जन्मान्तर में गांवों में भेड (और) शहरो में सूअर के शरीर धारण करेंगे। जिस मनुष्य ने विष्णु मंत्र का जप नहीं किया (वे मनुष्य) ओडों (बेलदार) के घर गधे होंगे (और वे अपनी) पीठ पर भार के दु ख को सहन करेगे। जिस मनुष्य ने विष्णु को नहीं जपा वे उस पक्षी का शरीर धारण करेंगे जो रात्रि मे तो मौन रहता है पर प्रात. विष्ठा मे चोच देता है।

जिस मनुष्य ने विष्णु का जप नहीं किया वे (मनुष्य) दु:ख रूप पहाड के भार को उठाते हैं, जिस मनुष्य ने विष्णु को नहीं जपा वे (इस भवसागर से) पार नहीं उतर पायेंगे। जिस मनुष्य ने विष्णु का जाप नहीं किया वे मनुष्य "अधेर घुप" नरक में डाले जायेंगे। वहां (उनके) न तंत्र–मंत्र (और) न (ही) जडी बूटी (काम आयेगी)। गफलत में वह बीता समय जैसे किसी वस्तु की तरह पहाड से बहुत नीचे गिर गया है। हे प्राणी, भगवान विष्णु को कैसा दोष? यह तेरी करणी का ही फल है।

(१४)

मोरा उपख्यान[1] वेदूं[2] कण तत भेदूं·
शास्त्रे पुस्तके लिखणा[3] न जाई
मेरा शब्द खोजो ज्यों शब्दे शब्द समाई
हिरणा दोह क्यों, हिरण हतीलूं[4]
कृष्ण[5] चरित विन क्यों बाघ विडारत गाई

१. उपव्याख्यान २. वेदों ३. लखणा ४. हतीलों ५. विष्णु।

सुनहीं सुनहां का जाया मुरदा[1] बघेरी बघेरा न होयबा
कृष्ण चरित विन सीचाण कबही न सुजीऊं
खर का शब्द न मधुरी वाणी
कृष्ण चरित विन, श्वान न कबही गहीरूं
मुंडी का जाया मुंडा न होयबा
कृष्ण चरित विन रिछा कबही न सुचीलूं
विल्ली का इन्द्री संतोष न होयबा
कृष्ण चरित विन काफरा न होयबा लीलूं
मुरगी का जाया मोरा न होयबा
कृष्ण चरित्त विन भाखला[2] न होयबा चीरूं
दन्त विवाई जन्म[3] न आई
कृष्ण चरित बिन लोहै पड़ै न काठ की सूलूं
नींवडिये नारेल न होयबा
कृष्ण चरित्त बिन छिलरे न होयबा हीरूं
तूंवण[4] नागरवेल न होयबा
कृष्ण चरित बिन बांवली न केली केलूं
गऊ का[5] जाया खगा न होयबा
कृष्ण चरित विन दया न पालत भीलूं
सूरी का जाया हस्ती न होयबा
कृष्ण चरित विन ओछा कबहीं न पूरूं
कागण[6] का जाया कोकला[7] न होयबा
कृष्ण चरित्त विन बुगली न जनिवा[8] हंसू
ज्ञानी के हृदै प्रमोद[9] आवत, अज्ञानी लागत डासू

मेरा उपदेश वेद (तुल्य) है (परंतु इस) तत्व को किसने जाना? (मेरा यह आध्यात्मिक उपदेश) शास्त्रो (और) पुस्तको मे नहीं लिखा जा सकता। (यह तो आत्मानुभूत ही किया जा सकता है) मेरे शब्दों में (ब्रह्म तत्व) की खोज करो। जिस प्रकार (घडियाल से निनादित होने वाला शब्द पहले उसी मे लय था उसी प्रकार मेरे) शब्दों में ब्रह्म तत्व (का बोध) समाहित है।

सिह द्रोह से हरिण को क्यों मारते हैं? (तथा) बाघ गाय को विदीर्ण क्यों करता है? श्री कृष्ण लीला की तो बात और है (अन्यथा वह मानेगा नहीं)।

कुतिया (और) उसका जन्मा कुत्ता, (तथा) कायर, मादा व नर व्याघ्र नहीं हो सकते, (भगवान) श्री कृष्ण की लीला के बिना बाज कभी भी सुजीव– साधु स्वभाव

---

१. मृतक २. भाकला ३. जन्मी ४. "तूंबिका नागर लता न होयबा बावली न केली केलो" पाठ है। ५. गोका ६. कागणि ७. कोकिला ८. जणिवा ६. प्रबोध।

का नहीं हो सकता। गधे के शब्द (आवाज कभी भी) मधुरवाणी नहीं हो सकते (और) कृष्ण लीला के बिना श्वान कभी भी (भोंकना छोडकर) गंभीर नहीं हो सकता। लुचित केशा अथवा गंजी (स्त्री) का जन्मा (पुत्र) गजा (ही) नहीं होता, कृष्ण लीला के बिना रीछ कभी भी (अपने मैले–कुचैलेपन को छोडकर) पवित्र नहीं हो सकता।

बिल्ली की (जिह्वा) इंद्रिय (को) कभी भी संतोष नहीं हो सकता (चाहे कितना ही खाने को मिले पर बिल्ली अपनी जीभ होठो पर फेरती ही रहती है) श्री कृष्ण लीला के बिना शुष्क हृदय (कभी भी) सरस नहीं हो सकता। मुर्गी का बच्चा कभी भी मोर नहीं बन सकता (और) कृष्ण लीला के बिना (चुभने वाला) "भाखला" (वस्त्र कभी भी) मलमल जैसा मुलायम वस्त्र नहीं हो सकता।

नीम के पेड पर (कभी भी) नारियल नहीं हो सकते (और) कृष्ण लीला के बिना तलैया में हीरे नहीं हो सकते। इन्द्रायण–वेल (कभी भी) नागर–वेल नहीं हो सकती (और) कृष्ण–लीला के बिना "बबूली" (वृक्ष कभी भी) खेजडी (अेव) खेजडे का (पेड) नहीं हो सकती। (पृथ्वी पर चलने वाला) गोवत्स (कभी भी आकाश मे उडने वाला) पक्षी नहीं हो सकता (और) कृष्ण–लीला के बिना भील (कभी भी जीवों पर) दया– पालन नहीं कर सकता। शूकरी का बच्चा, हस्ती नहीं हो सकता (और) कृष्ण–लीला के बिना नाटा कभी भी (लम्बा) पूरा नहीं हो सकता। कौओ का बच्चा (रंग सादृश्य होने पर भी) कोयल नहीं हो सकता (और) कृष्ण–लीला के बिना बगुली हंस को जन्म नहीं दे सकती। (इसी प्रकार) ज्ञानी के हृदय में (मेरा उपदेश सुनकर जहां) प्रसन्नता उत्पन्न होती है (वहा) अज्ञानी को (मेरा उपदेश) चुभने वाला लगता है।*

(१५)

सुरमां[1] लेणा झींणा शब्दूं[2] म्हे[3] भूल न भाण्या[4] थूलूं
सो पति विरषा[5] सींच[6] प्राणी जिहिं का मीठा मूल समूलूं
पाते भूला मूल न खोजो[7]? सींचो[8] कांय[9] कुमूलूं[10]
विष्णु विष्णु भण अजर जरीजै, यह जीवन का मूलूं
खोज प्राणी ! अैसा विनाणी, केवल ज्ञानी ज्ञान गीहीरूं
जिहिं[11] कै गुणे[12] न लाभत छेहूं[13]
गुरु गेवर गरवा शीतल नीरूं मेवा ही अति मेऊं[14]
हिरदै मुक्ता कमल संतोषी, टेवा[15] ही अति टेऊं[16]
चडकर बोहिता भवजल पार लंघावै सो गुरु खेवट खेवा[17] खेहूं

मेरे (इन) सूक्ष्म (तत्व का निरूपण करने वाले) शब्दों (के भावों को

---

*विशेष – शब्द का प्रतिपाद्य है कि कार्यकारण भाव से मूल कारण के अनुरुप ही कार्य होता है। मिट्टी से घडा ही बनता है, तंतु नहीं। बीज के अनुरुप ही गुण प्रकट होता है।

१. सुरमा २. शब्दों ३ 'म्हे' नहीं है ४. भाषा ५ वर्षा ६. सीचत ७. खोज्यो ८. सींचा ९. काहे न १०. मूलों ११. जिहि १२. गुणै १३ छेहू १४. मेवों १५ टेवां १६. टेवों १७. खेवां।

ब्रह्मबोधिनी वृति से) ग्रहण करना। हमने आचारहीनों के प्रति भूलकर भी (इन शब्दों को) कथित नहीं किया है।

(हे) प्राणी ! उस पति (परमात्मा को भक्तिरूपी) वर्षा से सींचो जिसका मूल व समस्त पंचांग ही मीठा है (अर्थात् उसकी भक्ति प्रत्येक लाभ देने वाली है किंतु तुम तो) पत्तो (सदृश क्षुद्र देवों की उपासना में) भूले हुए हो, (तुम ऐसा कर) मूल (विश्वमूल परमेश्वर) को नहीं खोज रहे हो। (तुम) कुमूल (क्षुद्र देवों के तैलादि चढाकर) किसलिये सींचते हो ?

(हे भाई) विष्णु–विष्णु (ऐसा मूल परमेश्वर का) नामोच्चारण करो (जिससे) अजर काम क्रोधादि का दमन किया जा सके, जीवन का (देखा जाय तो) मूल (उद्देश्य) यह (ही) है।

हे प्राणी ! ऐसे विज्ञानी, कैवल्य (और) ज्ञान–गंभीर की खोज कर जिसके गुणों का अंत नहीं मिलता।

(वह) गुरु (परमात्मा) गौरव–गिरि है, जल के समान शीतल अर्थात वह अपने भक्तो को ज्ञान–वारि से शीतल करने वाला है। (वह) मेवों में अति मिष्ट मेवे के समान है। (उसका) हृदय–कमल उदार (और) संतोषी है। (वह) तीनो काल को जानने वाली ज्योतिर्विद्याओं के भी ज्योतिर्विद है (अथवा जो उसकी) टेव (आशा) रखता है उसकी वह टेव (आशा) की पूर्ति करने वाला है। उस गुरु की सेवा करो (जो तुम्हारी) जीवनरूपी जहाज को (भवसागर से) मल्लाह बन कर पार लगादे।

(१६)

लोहे हूंता कंचन घडियो, घडियों[1] ठाम[2] सुठाऊं
जाटा हूंता[3] पात करीलूं[4], यह कृष्ण[5] चरित[6] प्रवाणों[7]
बेड़ी काठ[8] संजोगे[9] मिलिया, खेवट खेवाळ खेहू[10]
लोहा नीर किसी विध[11] तरिया[12], उत्तम संग सनेहूं[13]
विन क्रियारथ बैसैला, ज्यो काठ[14] सगीणी लोहा नीर तरीलूं[15]
नागड[16] भांगड भूला महियल, जीव हतै[17] मड खाईलो

(जो व्यक्ति) लोहे (सदृश कलुषित हृदय) थे (उनको मैंने अपने उपदेश द्वारा) कंचन बना लिया (और फिर उस कंचन की) आभूषण के समान प्रतिष्ठा की।

जो जाट थे (उनको मैंने अपने ज्ञानवारि से) पवित्र कर लिया (मेरा) यह (कार्य) कृष्ण चरित्र को प्रमाणित करता है अर्थात् मेरा यह चरित्र कृष्ण–सामर्थ्य का द्योतक है।

(मैं तुम्हे) संयोग से काठ की नाव (की भाति) मिल गया, (मैं तुम्हे) मल्लाह

१ घडियो २. ठाल ३. हूता ४. करीलों ५. विष्णु ६ चरित्र ७. परिमाणु ८. काष्ठ ९. सयोगे १०. खेओ ११. पर १२. तिरवा १३ सनेहू १४. काष्टा १५. तरीलों १६ नागड १७. हतैं।

(की भांति) खेकर (भवसागर से) पार लगा दूंगा।

पानी पर लोहा किस विधि से तर सकता है ? (मात्र काठ के संयोग से, वैसे ही तुम) उत्तम संगति के स्नेह से तर सकते हो।

(जो) बिना (किसी पूर्व के शुभ) क्रिया (के भी मेरी सगीत में) बैठेगा (वह) जैसे पानी में काठ के साथ से लोहा तरता है (वैसे भवसागर से तर जायगा)।

संसार के लोग तो नग्न (अथवा) उदण्ड स्वभाव वाले भांगेडी (तथा) जीवों को (भिरवादि के) "मंड" पर मार कर खाते है (उन्हीं को) साधु मानकर (उनके) भुलावे में आ गये हैं।

(१७)

मोरै राहजे सुंदर[1] लोतर[2] वाणी[3] अैसो[4] भयो[5] मन ज्ञानी
तईया[6] सासूं[7] तईया मासूं[8] रक्तूं[9] रुहीयों खीरूं नीरूं
ज्यों कर देखूं ज्ञान अंदेसूं, भूला प्राणी कहै[10] सो करणों
अई अमाणों तत्व[11] समाणों, अइयालो[12] म्हे[13] पुरुष न लेणा नारी
सोदत[14] सागर सो[15] सुभ्यागत भवण[16] भवण भिखियारी
भीखीलो भिखियारीलो[17], जे[18] आदि परम तत्व लाधो
जाके याद विराम विराशो[19] श्यासो[20] तानै[21] कौन कहसी[22] साल्हिया साधु[23]।

मेरे (तो) सहज (और) योग्यता वाली वाणी ही (एकमात्र) स्त्री है, इस प्रकार मेरा मन ज्ञानी हो गया है।

(यदि) क्षीर–नीर वाली ज्ञान निर्णायक दृष्टि से देखा जाय तो उस (स्त्री–पुरुष) के श्वास, उसके मास, रक्त (और) आत्मा मे (कोई मौलिक भेद नहीं है) जिसमें ज्ञान संशय है (क्या उस) भ्रमित प्राणी की कही हुई बात माननी चाहिये ? हे आगन्तुकों ! हमें न (किसी) पुरुष से कुछ लेना है (और) न (किसी) स्त्री से, अरे ! (सर्वत्र) पूर्णरूप से (सबमे) ब्रह्मतत्व समाया हुआ है।

---

१. संदरी २. लोत्र ३. याणी ४. ऐसा ५. भया ६. लइया ७. स्वासो ८. मासो ६. रक्तो १०. कह ११. तत् १२. "अइयालो" नहीं है १३. "म्हे" नहीं है। १४. सौदत १५. सौ १६. भुवन भुवन १७. भिखियारीलों १८. जिन १६. विरासो २०. सांसो २१. "तानै" नहीं है २२. कहिसी २३ सोधो। विशेष :– भिक्षा के संबंध में (१) भिक्षा हमारी कामधेनि है। २. गुरु प्रसादै भिष्या खाइवा अंतिकालि न होगी भारी– गोरखवाणी

धूतारा ते जे धूतै पाप, भिष्या भोजन नहीं संताप।
अहूठ पटणमैं भिष्या करै, ते अवधू सिवपुरी संचरै।
और अपरचै पिंड भिष्या खात है, अंतकालि होगी भारी

कबीर कहते हैं.– कबीर सतगुरु ना मिल्या, रही अधूरी सीख।
स्वांग जती का पहरिकरि, घरि घरि मांगै भीख।

(जो) सागर (के समान ज्ञान-गंभीर गुरु को) खोजता है (वह) सुम्यागत है (पर जो गुरु को न खोज कर) घर-घर भटकता है (वह) भिखारी है। (वह) भिखारी (भले ही) भीख ले यदि (उसको) आदि परमतत्त्व की उपलब्धि हो गई है।

जिसके वाद (-विवाद) राग-द्वेष, संशय (अथवा) क्लेश हैं उन्हें साल्हिया (संस्कारी व धर्मदीक्षित) कौन कहेगा ?

(१८)

जां कुछ जां कुछ कछू न जाणी
ना कुछ ना कुछ तां[1] कुछ जाणी
ना कुछ ना कुछ अकथ कहांणी
ना कुछ ना कुछ अमृत वाणी
ज्ञानी सो तो ज्ञानी[2] रोवत
पढिया रोवत गाहैं[3]
केल करंता मोरी मोरा रोवत
जोय जोय पगां दिखाहीं[4]
उर्ध[5] खैंणी[6] मन उन्मन रोवत
मुरखा[7] रोवत धाहीं
मरणत माघ संघारत[8] खेती
के के अवतारी रोवत राही
जड़िया बूंटी[9] जे जग जीवै
तो ! वैदा[10] क्यों मरजाई[11]
खोज प्राणी ऐसा विनाणी
नुगरा[12] खोजत नाहीं
जां कुछ होता ना कुछ होयसी
वल[13] कुछ होयसी ताहीं[14]।

जो (व्यक्ति अभिमान से यह कहता है कि मैंने उस परमात्मा को) कुछ जान लिया है (उसने परमात्मा को) कुछ भी नहीं जाना। जो अकिंचन भाव से यह कहता है कि मैंने (परमात्मा को) कुछ भी नहीं जाना है, उसने कुछ जाना है। (ईश्वर की) अकथनीय कहानी को (मैं) तुच्छ व्यक्ति कुछ भी नहीं समझता हूं (एसे) "ना कुछ- ना कुछ" (कहने वाले सरल-हृदय भक्त की) वाणी अमृतमयी है।

(जो मात्र वाचक) ज्ञानी है वे अपने कथन मात्र को ही ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति मानते हैं (और जो) पढे लिखे है-शास्त्रो के ज्ञाता 'पंडित हैं' वे (सुरुचिपूर्ण ढंग से) कथा-कथन में ही (अपनी) शास्त्रज्ञता समझते हैं।

---

१ ना २. ज्ञाने ३. गाहे ४. दिशाहीं ५. उर्द्ध ६. खैणी ७. मूरख ८. संहारत ९ बूंटी १०. वैद्या ११. मरजांही १२. निर्गुरु १३. वले १४. तांही।

(जैसे) मयूरी के सामने विनोदमय क्रीड़ा करता हुआ मयूर अपनी कमजोर (अथवा) कुरूप टांगों को देखकर रोता है (वैसे ही वे तथाकथित ज्ञानी और कथा वाचक ज्ञानी सिद्ध होने एवं कथाकुशल होने के लिये आतुर होते हैं)।

योगी जन ऊपर को उठाने वाली उन्मनी मुद्रा को साधने के लिये आतुर रहता है (परन्तु) मूर्ख (अपनी उदरपूर्ति के लिये सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये ही) दहाड़ मार कर रोता है (अथवा) उन पदार्थों के पीछे मारा–मारा दौडता है।

मृत्यु के मर्म को समझो (वह संसार रूपी रण) खेत में (सबका) संहार करता है। कई–कई अवतारी (पुरुष) इस मार्ग को न जानने वालों पर रोते है।

यदि संसार के लोग जडी बूटी से जीवित रहें तो (फिर) वैद्य क्यों मर जाते हैं ? हे प्राणी ! ऐसे विज्ञान स्वरूप परमात्मा की खोज कर जिसकी खोज "निगुरे" नहीं करते।

जो (परमात्मा वास्तव में) प्राप्त होने वाला है (वह) अकिंचन को ही (प्राप्त होगा), (मैं) पुन (यह कहता हू कि वह) उसी के पास कुछ होगा। विशेषः— भक्ति मार्ग में साधक को अपने प्रभु के सामने अपना अस्तित्व सर्वथा मिटा देना पडता है। जब तक अपनापन रहेगा तथा भक्त अपनी चर्म चक्षुओं से उस परमेश्वर को देखना चाहेगा तब तक वह प्रभु उसकी आखों में नहीं उतरेगा। प्रभु को प्रभु की आखों से ही देखा जा सकता है। यह शब्द इसी भाव की ओर निर्देश करता है।

(१६)

रूप अरूप रमूं[1] पिंडे ब्रह्मडे, घट घट अघट रहायो
अनन्त जुगां[2] मैं अमर भणीजूं[3] ना मेरे पिता ना मायों
ना मेरे माया ना छाया रूप न रेखा
बाहर भीतर अगम अलेखा
लेखा[4] अेक निरंजन लेसी[5], जहां चीन्हों तहां पायों
अडसट तीरथ[6] हिरदा[7] भीतर, कोई[8] कोई गुरुमुख विरला न्हायों

(मैं) रूप (दृश्य और) अरूप (अदृश्य भाव से) पिंड में, ब्रह्माण्ड में (तथा) प्रत्येक प्राणी के हृदय में पूर्णरूपेण परिव्याप्त रहता हूं।

(मैं) अनत युगों में (भी सर्वथा) अमर कहलाता हूं, मेरे न पिता है (और) न माता। मेरे में न माया है, न छाया (अविद्या) है (और) न (मेरे ब्रह्म–स्वरूप में किसी प्रकार की) रूप (तथा) रेखा ही है (मैं तो ब्रह्मात्मभाव से) बाहर (और) भीतर (सर्वत्र ही) अगम्य (तथा) अपरिमित हूं, उसको वही पा सकेगा (जो) एक निरजन का ही हिसाब (पता) करेगा, उस (परमात्मा को) जहां देखा वहीं (वह) प्राप्त हुआ।

अडसठ तीर्थ हृदयदेश के भीतर हैं (किंतु उसमें) कोई–कोई बिरला ही गुरुमुखी अवगाहन कर सकता है।

---

१. रमैं २. युगांमैं ३. भणीजै ४. इस पुस्तक में "लेखा" नहीं है। ५. लहसी ६. तीर्थ ७. हिरदे ८. को को।

जां जां[1] दया न मया
तां तां[2] विकरम[3] कया
जां जां आव न वैसूं[4]
तां तां स्वर्ग न जैसूं
जां जां जीव न जोती[5]
तां तां मोख[6] न मुक्ती
जां जां दया न धर्मूं
तां तां विकरम कर्मूं
जां जां पाले न शीलूं
तां तां कर्म कुचीलूं
जां जां खोज्या न मूलूं
तां तां प्रत्यक्ष थूलूं
जां जां भेद्या न भेदूं
तो ! स्वर्गे किसी उमेदूं
जां जां घमंडै स घमंडू
ताकै ताव न छायों
सूतै सास[7] नसायों[8]

जहां–जहां दया–मया का अभाव है, वहां–वहां बुरे कर्म ही कहे जायगे। जहां–जहां (किसी का) आदर सत्कार नहीं है, वहां–वहां स्वर्गीय आनन्द जैसी (वस्तु) कहाँ ? जहां–जहां (जिन–जिन प्राणियों में) ज्ञान ज्योति का अभाव है, वे (इस ससार से) मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त नहीं होंगे।

जहा–जहां दया–धर्म का (पालन) नहीं है, वहां–वहां खोटे (नृशंस) कर्मों की ही प्रधानता है। जहां–जहां शील व्रत का पालन नहीं होता वहां–वहां (सब) कर्म अपवित्र हैं।

जहां–जहां मूल (परमेश्वर) की खोज नहीं हुई, वहां–वहां (सबही) प्रत्यक्ष (रूप से) थूल (गुरु विहीन) हैं। जहां–जहां (परमात्मा के) रहस्य को नहीं जाना गया है तो (उसे) स्वर्ग किस आशा पर (प्राप्त होगा)।

जहा जहां अभिमान से भी घमण्ड (अति दर्प) किया जाता है उसको न उष्णता ही (प्राप्त होगी और) न शीतलता ही अर्थात् ऐसे प्राणी उद्बोधन और शाति दोनों से वंचित रहेंगे, (उन्होंने तो) सोकर (व्यर्थ में ही अपने) स्वासों का नाश किया है।

---

१ जहां २. तहां ३. विकर्म ४. बैसों ४. ज्योति ६ यहां "मोख न" नहीं है, इस प्रकार है–"तहां तहां मुक्ति न होती" ७. स्वास ८ नशायो।

जिहिं के[1] सार असारूं पार अपारूं
थाघ अथाघूं उमग्या समाघूं
ते सर कित नीरूं
वाजा लो भल वाजा लो, वाजा दोय गहीरूं
अेकण वाजै नीर वरसै[2] दूजै मही विरोलत खीरूँ
[3]जिहिं के सार असारूँ पार अपारूँ
थाघ अथाघूं उमग्या समाघूं[3] गहर गंभीरूं
गगन पयाले वाजत नादू[4]
माणक पायो फैर[5] लुकायो नहीं लखायो
दुनियां राती वाद वियादे[6]
वाद वियादे दांणू खीणा[7] ज्यों[8] पहूपे[9] खींणा[10] भवरी भवरा
मार्वं जाण म[11] जाण प्रांणी, जोलै का रिप[12] जवरा[13]
भेर[14] वाजा तो अेक जोजनो[15] अथवा दोय[16] जोजनो
मेघ वाजा तो पंच जोजनो अथवा[17] दश जोजनो
सोई[18] उत्तम ले रे[19] प्रांणी जुगां जुगाणीं[20]
सत[21] करु[22] जाणी[23] गुरु का शब्द जो[24] वोलो
झींणी वाणी जिहिं का दूरां हूंतै दूर
सुणीजे सो शब्द गुणाकारूँ
गुणा सारूँ वले अपारूँ

जिस (योगी) के सार (और) असार, पार (और) अपार, थाह (और) अथाह (तथा) उदय (और) अस्त होना, (एक समान है) वे सरोवर (और वैसा) पानी अन्यत्र कहाँ हैं ? (अर्थात योगी ही निश्चल–काम होता है)।

बाजा (वाद्य) लो, अच्छा बाजा लो (परंतु) गहरे (शब्द करने वाले) दो (ही) बाजे हैं। एक (तो बादलों का वह) बाजा है (जिसकी गर्जना के साथ) पानी बरसता है (और) दूसरे (बाजे वे हैं जिनसे) छाछ (या) दूध (को) विलोड़ित किये जाते समय शब्द होता है।

(परंतु) जिस (योगी) के सार–असार, पार–अपार, थाह–अथाह, उदय–अस्त, मुखर (और) मौन समान हैं (उस योगी के) गगन (और) पाताल (समाधि– अवस्था) में सोहं अथवा अनाहत नाद बजता है। (उसी योगी को समाधि–अवस्था मे सच्चा)

---

१. कै २. वर्षे ३. तीन से तीन के बीच की पंक्ति इसमें नहीं है। ४. नादों ५ फेर ६. बिवादूं ७ खीणां ८. इसमें "ज्यो" नहीं है। ६. पुष्पे १०. क्षीणां ११. अ १२. रिपु १३ जंवरा १४. भरद्वाजा १५. योजनो १६. तो द्वि १७ तो १८. सो १६. लहरे २०. युगा युगाणी २१ सत्य २२. कर २३. जांणी २४. जु।

भेर (नाम का) बाजा तो एक योजन तक (शब्द करता है) अगाज (?) दो योजन तक (सुनाई देता है) भादवे की (गर्जना-रूपी) बाजा पांच योजन तक अथवा दश योजन तक (सुनाई देता है)।

(हे) प्राणी ! (तुम तो) यही सनातन गुरु के "शब्द" (रूपी) उत्तम (वचनों को) सत्य जानकर लो। यदि (तुम उस गुरु की) सगुण (ज्ञान-प्रतिपादनी) वाणी को बोलो, (जिसके शब्द) जो दूर से भी दूर है (उनको भी) सुनाई देते हैं, यही शब्द लाभप्रद है (परन्तु यह) गुणी जनों के लिये है और (यह) अपार है।

(२२)

लो लो रे राजेन्दर रायों, बाजे बाव[1] सुभायों
आभे[2] अमी झुरायों
कालर करषण कीयों, नेपै कछु न कीयों[3]
अइया उत्तम खेती, को को अमृत रायों
को को दाख दिरायों, को को ईख[4] उपायों
को को नींब निंबोली, को को ढाक ढकोली
को को तूषण[5] तूंबण[6] बेली, को को आक अकायों
को को कछु कवायों[7]
ताका मूल कुमूलूं, डाल कुडालूं ताका पात कुपातूं
ताका फल बीज कुबीजूं तो नीरे दोष किसायों ?
क्यों क्यों भये भागे ऊंणा, क्यों क्यों कर्म विहूंणा
को को चिड़ी चमेड़ी को को उल्लू[8] आयों
तांके ज्ञान[9] न जोती[10], मोक्ष न मुक्ती[11] यांके कर्म इसायों[12]
तो नीरे दोस किसायों ?

(अरे) राजेन्द्र (एव) राजाओं लो-लो ! (यह सुनो) वायु (अति) सुहावनी (खेती को लाभ पहुंचाने वाली) चलती हो, (और) आकाश से अमृत (तुल्य पानी)

---

१. वायु २. आभय ३. कार्यों ४. इक्षु ५. तूसणि ६. तूंबणि ७ कवायों ८. उलूक ९. विज्ञान १० ज्योति ११. होती १२. असायों।

झरता हो। (इस पर भी यदि किसी ने) ऊसर भूमि में कृषि कार्य किया तो (वह) कुछ भी उत्पादन नहीं कर सकेगा। इसी प्रकार (जिसने) उत्तम भूमि में खेती की, उसको अमृत (तुल्य पदार्थों का) लाभ रहा। किसी ने दाख आदि को (तो) किसी ने ईख का उत्पादन किया। (उसी पानी से) कहीं–कहीं नीम और निबोली (तो) कहीं–कहीं ढाक (और) ढाक–फल (पलासपापडा पैदा हुआ)।

(उसी पानी से) कहीं–कहीं सन (और) इन्द्रायण बेल (पैदा हुई) कहीं–कहीं आक (और) आक–फल (पैदा हुए) कहीं–कहीं (जिसने) जो बोया (वही प्राप्त हुआ)।

जिसका मूल कुमूल (खराब) है, डालियां खराब हैं, (और) जिसके पत्ते निकृष्ट हैं। जिसका फल (और) बीज निकृष्ट हैं तो इसमें पानी का क्या दोष ? (पानी तो सब पर समान रूप से ही बरसता है, दोष है तो प्रकृति का है)।

(जो) ज्ञान (रिक्त हैं उनका) भय क्यों भागने लगा ? क्योंकि वे शुभ कर्मों से सर्वथा रहित हैं।

कोई–कोई (इस संसार में) चिड़ी (तथा) चमगीदड (और) कोई–कोई उल्लू (की प्रकृति जैसे पुरुष) आये हैं। जिसके (हृदय में) न ज्ञान है (न) प्रकाश है (उसकी न) मोक्ष है न मुक्ति है (क्योंकि) उनके कर्म ही ऐसे हैं। तब पानी को कैसा दोष ?

(२३)

सालिहया हुवा[1] मरण भय[2] भागा, गाफल[3] मरणै घणा[4] डरै
सत गुरु मिलियो सतपंथ बतायो, भ्रांत[5]-चुकाई मरणै बहु उपकार[6]
करै[7]
रतन काया सोभंति लाभै, पार गिरायें जीव तिरै[8]
पार गिरायें[9] सनेही[10] करणी, जंपो विष्णु[11] न दोय[12] दिल करणी
जंपो विष्णु[13] न निंदा[14] करणी
मांडो कांच विष्णु कै सरणै, अतरा बोल करो जे सांचा[15]
तो पार गिरांय[16] गुरु की वाचा
रवणा[17], ठवणा, चवरा भवणा, ताहि परै[18] रै रतन काया छै
लाभै किसे विचारे?
जे नवीये नवणी खवीये[19] खवणी, जरिये जरणी-
करिये करणी तो[20] सीख हुवां[21] घर[22] जाइये
रतन काया सांचै की ढोली, गुरु[23] परसादे[24] केवल ज्ञाने-
धर्म अचारें[25] शीले[26] संजमें सत गुरु तुठे पाइये।

---

१. हूवा २. भव ३. गाफिली ४. घणौं ५. भ्राति ६. उपगार ७. करैं ८. तरैं ६. गिराय १०. सनेही ११. विसन १२. दोई १३. विसन १४. निंदा १५. साचा १६. गिरांई १७. यहां "ण" पर सभी जगह अनुस्वार है। १८. परे १६. खेवीये २०. यहा "तो" नहीं है। २१ हुई २२. घरि २३. गुर २४. प्रसादे २५. अचारें २६. सीले।

(जो गुरु द्वारा) उपदिष्ट हो गया है (उसका) मृत्यु–भय जाता रहा, (पर जो गुरु की शिक्षाओं से अनजान रह गये, वे) मरने से बहुत डरते हैं। (विशेष– "साहिल्या" जनो को देहावसान में माया से सर्वथा मुक्त होने का अवसर मिलता है अतएव उन्हें मृत्यु से भयभीत होने का कोई कारण नहीं, पर जो गुरु की शिक्षाओं से अनभिज्ञ रहते हैं, वे माया–मोह की पाश में आवद्ध होने के कारण मृत्यु से डरते हैं)।

(जिसको) सद्‌गुरु मिला, (उसको सद्‌गुरु ने) सत्य का मार्ग बताया (और उसकी समस्त) भ्रांतियो को निवृत्त कर (यह बता दिया कि) मृत्यु भी (मनुष्य का) बहुत उपकार करती है। (अच्छे कर्म करने वाले व्यक्ति को मरणोपरांत) उज्ज्वल रत्नों (जैसी) शोभा देने वाली (दिव्य) देह मिलती है (उसकी) मोक्ष होती है (तथा) जीवात्मा (भवसागर से) तर जाता है। मोक्ष (शुभ कर्मों से) स्नेह करने से होती है। (हे मोक्षाभिलाषियों !) विष्णु को एकाग्र होकर जपो। विष्णु को जपो (और किसी की) निंदा न करो।

विष्णु के आगे (अपने अहं को छोड कर) सिर झुका दो (उसी के) शरण हो जाओ, (तुम) यदि (मेरे) इन (उपदेश) वाक्यों को सच्चा (प्रमाणित) करो तो (यह) गुरु के वचन हैं, (कि तुम्हारी) मोक्ष होगी।

रहन–सहन, (उत्तम) स्थान (तथा) श्रेष्ठ भवन हैं उनसे आगे "रतन काया" (मोक्षपद) है। परंतु यह कौन से विचार से उपलब्ध होता है?:–

यदि नमस्कार करने योग्य को नमस्कार किया जाय, क्षमा करने योग्य पर क्षमा की जाय, पचाने योग्य (काम–क्रोधादि) को पचाया जाय अर्थात् शमन किया जाय (और) करने योग्य कर्म किये जायं तो (इस प्रकार की) शिक्षा से (प्रशिक्षित) होने से (ही असली) घर (मोक्ष–धाम) जाया जाता है।

"रतनकाया" (मोक्ष) सत्यत्व की (एक) आकृति है, (यह) गुरु के प्रसाद से, कैवल्य ज्ञान से, धर्माचरण से, शील से, संयम से (तथा) सतगुरु के तुष्टमान होने से प्राप्त होती है।

(२४)

आसण बैसण कूड़ कपट्टण
कोई कोई चीह्नत वोज् बाटे
वोज् बाटे जे नर भया
काची काया छोड़-
कैलाशै गया[1]

---

१ पाठान्तर (श्री जम्भसागर –लीथो)
आसण बैसण कूड कपटो, के के चीन्हैं आजूं बाटो
ओजू बाटों जे नर भया, काची काया छोडि किपलासे गया।

(साधु होने के कारण ही जिसको) बैठने को ऊचा आसन (मिला फिर भी ादि वह) मिथ्या और कपट का (कार्य करता है, उनमे) कोई विरला ही उस रमात्मा की प्राप्ति के) सरल एवं निष्कपट मार्ग को जानता है। जो मनुष्य सरल ाथा निष्कपट होकर (परमात्मा के) मार्ग पर अग्रसर हुआ (वह इस) नश्वर शरीर को छोड कर परमधाम–शिवलोक को (चला) गया।

(२५)

राज न[1] भूलीलो राजेन्द[2] दुनी[3] न बंधै[4] मेरूं[5]
पवणा झोलै बीखर जैंला, धुंवर[6] तणा जाँ[7] लोरूं[8]
योलस[9] आभ तणां लह[10] लोरूं
आडाडंबर केती बार विलंबण ओ संसार अनेहूँ
भूला प्राणी विष्णु न[11] जंप्यो[12], मरण विसारो केहूँ?
म्हां देखंता[13] देव दाणूं[14] सुर नर खीणा जंबू मंझे-
राचि न रहिबा थेहूं
नदिये नीर न छीलर पाणी, धूंवर तणा जे मेहूँ,
हंस उडाणो पंथ विलंब्यो आशा[15] श्वास[16] निराश[17]-
भईलो ताछै होयसी रंड निरंडी देहूँ
पवणा झोलै बीखर जैला गैण विलंबी खेहूँ

हे राजेन्द्र (तुम अपने) राज्य के (मद मे कभी) न भूलना (और) न (ही) तुम) दुनिया के ममत्व से बंधना (यह राज्य–वैमव और ससार का ममत्व एक दिन इस प्रकार नष्ट हो जायेगा जिस प्रकार) पवन के झोंको से आकाश में उल्लसित कुहरे के घटाटोप बादल छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। आकाश में स्थित बादलों के घटाटोप कितनी ही बार नष्ट हो जाते हैं (इसी प्रकार) यह संसार (नष्ट हो जाता है अत. यह) स्नेह करने योग्य नहीं है।

हे (अज्ञान में) भूले हुए प्राणी! (तुमने यह अच्छा नहीं किया कि तुमने) विष्णु का सुमरण नहीं किया (ऐसी गलती कर तुम) मृत्यु को क्यों भुला रहे हो। हमारे देखते हुए (जब) देव, दानव (और) सुर–नर क्षय को प्राप्त हो गये (तब) जम्बूद्वीप में (भी) कोई निर्मित वस्तु (स्थाई) कैसे रहे। (वह सब प्रकार से) ध्वस्त हो ही जायेगी।

(सच्चे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये, उसी की उपासना से मनुष्य को लाभ होता है अन्यथा नहीं जैसे) धुवर (कुहरे) की वर्षा से न नदियो के जल मे वेग और) न (ही) तालाब मे पानी आ सकता है।

---

1. "न" यहां "न्" हलन्त होने से राजा का संबोधन "राजन्" जैसा लगता है।
2. राजिन्दर ३. दुर्नी ४. बधी ५. मेरौं ६ धंवरि ७. "ज" यहां नहीं है ८. लहलोरौं ९. उंल्हसि १०. लहि ११. यहां "न" नहीं है १२. जपोरे १३. देखंतां १४. दाणौं १५ आसा १६. सास १७. निरास।

(जैसे ही) हंस (जीवात्मा) ने महाप्रयाण कर मृत्यु मार्ग का अवलम्बन किया (कि प्राणी के) श्वासो (जीने) की आशा निराशा में बदल गई (और) तत्पश्चात (वह) देह (जीवात्मा पति के बिना) विधवा (रड) हो गई (और उसके बाद में तो वह) विधवा भी न रही (अर्थात् वह राख मात्र रह जायेगी और वह) राख आकाश में जा लगेगी (एक दिन वह भस्म आकाश से भी) पवन के झोंकों से कहीं की कहीं जा गिरेगी।

(२६)

घण तण जीम्यां[1] को गुण नाहीं मल भरिया भंडारुं
आगै पीछै माटी झूलै, भूला वहै'ज भारुं[2]
घणां दिनां का वड़ा न कहिया, वड़ा न लंघिया[3] पारुं
उत्तम कुली का उत्तम न होयवा[4] कारण क्रिया सारुं
गोरख दीठां सिद्ध[5] न होयवा[6], पोह उतरवा[7] पारुं
कलजुग वरतै चेतो[8] लोई ! चेतो चेतण हारुं
सतगुरु मिलियो सत पंथ बतायो[9], भ्रांति चुकाई विदगा रातें उदगा गारुं।

(पेट में) अधिक ठोंस–ठोंस कर भोजन करने में कोई (विशेष) गुण नहीं है, (ऐसा करना तो उदर रूपी) भंडार में मल को (ही) भरना हुआ। (अधिक भोजन करने वाले की आगे तोद और पीछे नितम्ब बढ जाने से उसके) आगे पीछे मांसल भाग झूमता रहता है, (ऐसे पेटार्थी) अपने मानव जीवन के (असली) उद्देश्य को भूल रहे हैं।

(कोई अधिक) वयोवृद्ध होने मात्र से ही, बडा नहीं हो सकता (और) न (कोई आयु मे) बडा होने से (भवसागर से ही) पार लंघ सकता है। उत्तम कुल में जन्म लेने मात्र से (कोई) श्रेष्ठ नहीं हो सकता, (श्रेष्ठता का) कारण तो उत्तमता के सपादन पर निर्भर है।

गोरख को देखने मात्र से (कोई आत्म) सिद्ध (योगी) नहीं हो सकता (अर्थात् गोरखनाथ के) मार्ग का अनुसरण करने वाला (आत्म–सिद्ध योगी) ही भवसागर से पार उतर सकता है।

हे कल्याण की इच्छा वाले लोगों कलियुग का समय चल रहा है (अत. पाखंड जाल की ओर से) सावधान रहो। (तुम्हें) "सतगुरु" मिल गया, (जिसने तुम्हें) सत्य का मार्ग बताया (और उसने तुम्हारी नाना) भ्रांतियों को (इस प्रकार) समाप्त कर दिया (जिस प्रकार) सूर्य उदय होकर रात्रि के अंधकार को भगा देता है।

---

१ जीम्य २. जभारौं ३. लंघवा ४. ह्यैबा ५. सिधि ६ हाइबा ७. उतरबा ८. चेतौ ९. बतायौ।

(२७)

पढ[1] कागल वेदूं शास्त्र[2] शब्दूं[3] पढ[4] सुन[5] रहिया
कछु न लहिया नुगरा[6] उमग्या[7] काठ पपाणों
कागल पोथा ना कुछ थोथा ना कुछ गाया गीऊं[8]
किण दिश[9] आवै किण दिश जावै माय[10] लखै[11] ना[12] पीऊं[13]
इंडे मध्ये[14] पिंड उपन्ना[15] पिंडा मध्य[16] बिंब[17] उपन्ना[18] किण[19]
दिश पैठा जीऊं
इंडा मध्ये[20] जीव उपन्ना सुण[21] रे काजी सुण रे[22] मुल्लां[23]-
पीर ऋपीश्वर[24] रे मस[25] बारी तीर्थ[26] बारी किण घट पैठा[27] जीऊं
फंसा शब्दे[28] कंस लुकाई, बाहर[29] गई भ रीऊं[30]
क्षिण[31] आवै क्षिण बाहर जावै रुत[32] कर[33] बरसल सीऊं[34]
सोवन लंक मदोदर[35] काजै, जोय-जोय भेद विभीपण[36] दीयों
तेल लियो खल चौपे जोगी, तिहिंका[37] मोल थोड़े रो कीयों
ज्ञाने ध्याने[38] नादे बेदे जे नर लेणा तत ही लाही लीयों
करण[39] दधीच सिंवर[40] बल[41] राजा, हुई का[42] फल लीयों
तारादे रोहितास हरिचंद, काया दशबंध दीयों[43]
विष्णु[44] अजंप्या[45] जन्म[46] अकारथ आके डोडा खींपे[47] फलियों
काफर बिवरजत रुहीयों[48]
सेतूं[49] भौंतू बहु रंग लेणा सब रंग लेणा रुहियों[50]
नाना रे बहु रंग न राचै काली ऊंन कुजीऊं
पाहे[51] लाख मजीठी[52] राता मूल[53] न जिहिं का रुहियों
कब ही बह[54] गृह ऊथरी[55] आवै शैतानी[56] साथै लीयों
ठोठ गुरु वृपली[57] पति नारी जद[58] बँकै जद[59] बीरुं[60]
अमृत का फल एक मन रहिया[61], मेवा मिष्ट सुभायों

---

१. पढि २. सास्त्र ३. सबद ४. पढि ५ गुणि ६. निगुरा ७. उमंग्या ८. गीयौं ९. दिस १०. माई ११. लख १२. न १३. पीयौं १४. मंधे १५. उपनों
१६. मधे १७. जीव १८. उपनों १९. "किण दिश पैठा जीऊं" यह पाठ इसमें नहीं है। २०. "इंडे मध्ये जीव उपन्ना" इसमें नहीं है २१. सुणि २२. "सुणि रे" यहां अधिक है। २३ मुलां २४. रपेसर २५. मिस २६. तीरथ २७. पैठा २८. सबदे २९. बाहरि ३०. रीवों ३१. खिण ३२. रुति ३३. करि ३४. सीवों ३५ मंदोवरि ३६ भभीषण ३७. तिहको ३८. यहां "सीले संजमे" अधिक है। ३९. करन ४०. सींवर ४१. बलि ४२. हुईका ४३. यहां "काया दश बंध दीवों" की जगह "धन जादा सब कीयों" पाठ है। ४४. विसन ४५. अजप्यां ४६. जनम ४७. खोयें ४८. रुईयों ४९. सेतों भांतों ५०. रुईयों ५१. पहि ५२. मजीठ ५३. मोल ५४. ओग्रह ५५. ऊथिरि ५६. सैतांनी ५७. विषली ५८. जदि ५९. तब ६०. बीहों ६१. रखिवा

अशुद्ध[1] पुरुष[2] वृपली पति नारी, विन[3] परचै[4] पार गिराय न जाई
देखत अंधा सुणता बहरा, तारों कछु न बसाई

कागज (पर अंकित) वेद (और) शास्त्रों के (मात्र) शब्दों को पढ़ कर (एवं) सुनकर (तुमने) कुछ भी नहीं लिया (,खाली ही) रह गये (अपितु) "नुगरे" काठ (एवं) पाषाणों (की मूर्तियो की ओर) उमंगित हुए। (मात्र) कागज के पोथे कुछ भी नहीं है (निरे) थोथे हैं (और उनमे) गाये गये गीत भी कुछ नहीं।

(यह जीवात्मा गर्भावस्था में) किस ओर से (अंदर) आता है (और) किस ओर से (बाहर) जाता है, (इस रहस्य को) न माता जानती है (और) न (ही) पिता। (यदि कोई कहे कि यह जीवात्मा शरीर के किसी नासिकादि द्वार से गर्भ में प्रवेश करता है तो बताओ?) अण्डे में (जो) शरीर बना (और उस) शरीर में (जो) चैतन्य उत्पन्न हुआ (वह) जीवात्मा किस ओर से (गर्भ में) प्रवेश हुआ? (अण्डे में तो छिद्र नहीं होता?)

अरे काजी ! सुन, अरे मुल्ला सुन ! अरे पीर, ऋषीश्वर, मस्जिद में निवास करने वाले, तीर्थों में वास करने वाले (तुम भी सुनो) अण्डे मे जो जीव उत्पन्न हुवा (वह) जीव (माता के गर्भ में) कौन से मार्ग से (जा) बैठा? (माता के गर्भ में जीवात्मा का प्रवेश व्यापार उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार) कांसी (के) (बर्तन) से निनादित शब्द (पुन उसी) कांसी (के बर्तन) में लय हो जाता है (कांसी से निनादित वह) शब्द ध्वनि न (कहीं) बाहर (से) आयी (और न ही वह बाहर गयी। यही प्रक्रिया जीव के गर्भ में आधान होने की है। वह) क्षण में आता है (और) क्षण में ही बाहर चला जाता है (यह सब उसी प्रकार स्वाभाविक होता है जिस प्रकार) ऋतु के अनुसार सर्दी (व गर्मी व वर्षा) बरसती है।

"सोवन.........दीयो" का अर्थ संदिग्ध है।

(तिलो में से) तैल निकालने के पश्चात (शेष बची) खली (केवल) चौपायों के योग्य रहती है (और) उसकी कीमत भी थोडी ही (अंकित) की जाती है।

ज्ञान से, ध्यान से, (समाधि मे) नादानुसंधान से (और) वेद से (यदि कोई) मनुष्य (उपदेश व उस परमात्मा को अपने अनुभव में) लेता है। तत्व (ब्रह्म तत्व) भी (वास्तव मे) उसी ने लिया। (महादानी) कर्ण (महर्षि) दधीचि, राजा शिवि (और) बलि ने (अपने) कर्मानुसार फल प्राप्त किया। (महासती) तारादे, रोहिताश्व, (और सत्यवादी राजा) हरिश्चन्द्र ने (अपने) शरीर पर (संयम रूपी) अनुबंध लगाया।

(जिसने) विष्णु का जप–स्मरण नहीं किया (उसका जन्म उसी प्रकार) व्यर्थ ही (चला गया जिस प्रकार) आक का फल (और) खींप की फलियां (बिना किसी उपयोग के जंगल मे सूख कर व्यर्थ चली जाती हैं। उसी प्रकार) काफिर (आत्म भाव से) रहित (होने के कारण नष्ट हो जाता है)।

श्वेत (वस्तु) भांति–भांति के बहुत से रंग ग्रहण कर लेती है, (श्वेत होने

---

१. असध २. पुरय ३ विण ४. परच

के कारण) रूई (भी) सब रंग ग्रहण कर लेती है, (परन्तु) अरे ! काली ऊन (और) कुजीव किसी भी प्रकार के रग से नहीं रंगे जा सकते।

(और जो) लाखा (और) मजीठ (सांसारिक भाग वासना) की पाह (भावना) से रंग कर लाल (अनुरक्त) हो गया है, उसकी (आत्मा अपने) मूल (वास्तविक स्वरूप में) नहीं (रही, सांसारिक वासनाओं में) कलुषित हो गई। (जिसने) शैतान को साथ लिया है (न जाने उसका) घर कब उखड जाय?

मूर्ख गुरु (और किसी) पति की वृषली पत्नी जब भी बोलते हैं तब वीरों की तरह अधिक बोलते हैं। (परंतु) अमृत फल तो एकाग्र मन रहने से (और) स्वभाव को मिष्ट मेवे (के समान रखने से मिलता है)। अशुद्ध (आत्मा वाला) पुरुष (और) कामी नारी–पुरुष बिना आत्मज्ञान के (भवसागर से) पार (और) मोक्ष को नहीं पा सकते।

(२८)

ओ३म[1] मच्छी[2] मच्छ फिरे जल भीतर तिहिं का माघ न जोयबा
परम सत्व[3] है ऐसा[4] आछै[5] उरवार न ताछै पारू
वोवड़ छोवड़ कोई न थीयों तिहिं का अन्त लहीया कैसा[5]
ऐसा लो भल ऐसा लो भल कहो न कहा[6] गहीरूं
परम सत्व[7] कै रूप न रेखा लीक न लेहूं[8] खोजन
खेहूं[9] वरण बिवरजत भावै खोजो बांवन बीरूं
मान[10] का पथ मीन ही जाणै, नीर सुरगम[11] रहियों
सिध का पंथ कोई साधु जाणत[12] बीजा बरतन[13] बहियों

मछली (और) मच्छ पानी के भीतर फिरते हैं (परंतु) उसका (वह जलीय) मार्ग (किसी के) देखने में नहीं आता, "परमतत्व" (का मार्ग भी) ऐसा ही (दुर्बोध) है, (उसके) इस (और) उस (किनारे का अंत) पार नहीं है। (उस परमतत्व) के ओर–छोर की (आज–तक) किसी ने थाह नहीं ली, (उसका) अंत लिया भी कैसे जा सकता है? (उस परमतत्व को) ऐसा (असीम और अनंत ही) जानो, (उसकी) गंभीरता के संबंध में (कोई) क्या कहे?

परमतत्व (शुद्ध ब्रह्म) के न (कोई) रूप है, न (कोई) रेखा है, न (उसमें किसी पूर्वापर) परम्परा का लेश है (और न ही उसका कोई) पदचिह्नह दिखाई (पडता है, वह) मृत्यु से रहित है (उसको) चाहे बावन वीर (ही) क्यों न खोजें (पता नहीं पा सकते)।

---

१. नहीं है २ मछीमछ ३. तत ४ ऐसो ५. "आछै......कैसा" इसमें यह पंक्ति नहीं है ६ काहा ७. तत ८. लेहों ९. खेहों १०. मीन ११ सुरंगम १२. जानत १३ वरतणि।

(जिस प्रकार) मछली का (वह जलीय) मार्ग स्वयं मछली ही जानती है, जिस जल-सुरंग में (वह) रहती है। (उसी प्रकार) सिद्ध पुरुषों के (आध्यात्मिक) मार्ग को (कोई अध्यात्मवादी) साधु ही जान सकता है, दूसरे (सांसारिक लोग उस) मार्ग को (नहीं जान सकते, क्योंकि वे उस मार्ग) पर चले ही नहीं।

(२६)

(इलोल सागर)

गुरु[1] के शब्द[2] असंख्य[3] प्रबोधी[4], खार[5] समंद परीलो[6]
खार समंदर परै[7] परे रै चौखंड[8] खारूं
पहला अंतन पारूं
अनंत कोड़[9] गुरु[10] की दावण विलंबी करणी साच तरीलो[11]
सांझी[12] जमों[13] सवेरे थापण[14], गुरु की नाथ डरीलो[15]
भगवीं टोपी थलशिर आयो, हेत मिलाण[16] करीलो
अम्याराय बधाई बाजै, हृदै[17] हरी[18] सिंवरीलो[19]
कृष्ण[20] मया चौखंड कृपाणी[21], जम्बूद्वीप चरीलो[22]
जम्बूद्वीप ऐ[23] सोचर आयो[24] इसकंदर[25] चेतायों
मान्यो शील[26] हकीकत[27] जाग्यो हक की रोजी धायों
ऊंनथ नाथ[28] कुपह का पोहमा[29] आंण्या पोह का धुर[30] पहुँचायों[31]
मोरे धरती ध्यान वनस्पति[32] वासो ओजू[33] मंडल छायों
गिंदू मेर पगांणी[34] पर्वत[35] मन्सा[36] सोड़ तुलायों
ऐ जुग चार छतीसां और छतीसां आश्रा[37] वहै[38] अंधारी[39]
म्हेतो[39] खड़ा विहायों
तेतीसां की वरग वहीं म्हे थारां काजै आयों
बारा थाप[40] घणा न ठाहर मतां तो डीलै डीलै[41] कोड रचायों
म्हे ऊंचै[42] मंडल का रायों
समंद विरोल्यो वासग नेतो मेर मथांणी थायों
संसा[43] अर्जुन[44] मार्‌यो[45] कारज सार्‌यो[46] जद म्हे रहस दमामा[47]
वायों[48]
फेरी सीत लई जद लंका तद म्हे ऊथे[49] थायों
दहशिर[50] का दश[51] मस्तक छेद्या वाण भला निरतायों

१. गुरकै २. सबद ३. असण ४. परमोधी ५. खारै ६. परेलों ७ परैं ८. चोखंड ९. कोडि १०. गुर ११. तरीलो १२. साझे १३. जमौं १४. थापणि १५ लों १६ मेल्हाण १७. हिरदै १८. हरि १९. सुमरीलों २०. विसन २१ किरसाणी २२. लो २३ अ २४ आयो २५ इसकदर २६. सील २७. हकीकथ २८. नाथि २९. पोम्हे ३०. धुरि ३१ पहुँचायो ३२ वणासपति ३३ ऊजु ३४. पगाणो ३५ परबत ३६. मनसा ३७. असरां ३८. अधारा ३९ म्हा। ४०. काज ४१. डील्ह ४२. ऊँच ४३. सहसा ४४. अरजन ४५ मार्‌यौ ४६ सार्‌यौ ४७ दमांमा ४८ वार्यौं ४९. उथे ५०. सिर ५१. दस।

म्हे खोजी था[1] पण[2] होजी नाहीं लह लह[3] खेलत[4] डार्यो
कंसासुर सूं जूवै रमियां सहजे नन्द हरार्यो
फूंत कुंयारी[5] कर्ण[6] समानों[7] तिहिं का पोह पोह पड़दा छार्यो
पाहे लाख मजीठी[8] पाखों[9] वन फल राता पीझू पाणी के रंग धार्यो
तेपण धाख न धाख्या भाख न भाख्या जोय जोय लियो फल फल केर रसार्यो
थे जोग न जोग्या भोग न भोग्या न चीन्हों सुर रार्यो
कण विन कूकस कांये[10] पीसो[11] निश्चै[12] सरी न कार्यो
म्हे अवधू निरपख[13] जोगी सहज[14] नगर का रार्यो
जो ज्यों आवै सो त्यों थरपां साचा सों सत भार्यो
मोरे[15] मन ही मुद्रा तन ही कंथा जोग मारग[16] सहडार्यो
सात सायर म्हे कुरलै कीयों[17] ना म्हें पीया न रह्या तिसार्यो
डाकण साकण निन्द्रा खुधा ये म्हारै ताम्बे कूप छिपार्यो
म्हारै मन ही मुद्रा तन ही कंथा जोग मारग सह लीर्यो
डाकण शाकण निन्द्रा खुध्या ये मेरै मूल न थीर्यो

गुरु के शब्दोपदेश से असंख्य (अथवा शंकाशील व्यक्ति) प्रबोधित हुवे हैं, खार समुद्र परे के (और उस) खार समुद्र से भी परे के परे (जो) चारों ओर से खारा है (जिसके) उस (किनारे का) अत पार नहीं है। (वहां के) अनत कोटि (जीव) गुरु का दामन पकड़े हुए हैं, करणी की सच्चाई के बल पर (उनका) अवतरण हो जायेगा।

गुरु के शासन को मानकर शाम को–रात्रि में जागरण (और) प्रात.काल (कलश) की स्थापना करो। (मैं) भगवीं टोपी वाला मरुस्थल (भूमि) पर आया हूं (मुझसे) आत्मीयता करो (और मेरी शिक्षाओं से) सहमत हो जाओ।

भगवान् के (यहां मधुर–स्मृति में) बधाई के (बाजे) बज रहे हैं, हरि ने (हर्षोत्फुल्ल होकर आज अपने) हृदय में (उस बात को) स्मरण किया (कि मुझे जीवों के कल्याण के लिये अवतार लेना है और) कृष्ण की कृपा से (जिस देश में) चतुर्दिक् किसान (बसते हैं, उस) जंबूद्वीप (में वही हरि) आया (हूँ मैं) जबूद्वीप में यह सोच कर आया (और उसके अनुसार मैंने आकर बादशाह) सिकदर (लोदी) को "चेतायो"– चमत्कृत किया। (वह मेरे) शीलाचरण को मान गया, यथार्थता को समझ गया। (और वह) सत्य की आजीविका से (अपना) निर्वाह करने लगा।

(मैंने जंबूद्वीप में अवतार लेकर) अनथ को नाथा, कुमार्गियों को सुमार्ग पर लगाया (और जो) सुमार्ग पर थे (उनको) "ध्रुव" (स्थान) पहुंचाया।

---

१. थां २. विड ३. लहि–लहि ४. खेलां ५. कंवारी ६ करण ७. समाणो ८. मजीठैं ६. पाखौ १०. कायों ११. पीसो १२. निहचै १३ त्रिपेखी १४ सैल १५ मेरे १६. जुगति १७. कीया।

मेरा धरती (ही) ध्यान है, वनस्पति में (ही मेरा) निवास है (और मेरा ही) ओज (समस्त) मंडलों में छाया हुआ है। सुमेरु (पर्वत मेरा) गेंदुआ है, पाद–स्थान की जगह (मेरे हिमालय) पर्वत है (और मेरी) मनसा (ही ओढने वाली) रजाई के समान है।

यह (संसार) चार युग की "कई छतीस वार" (और) "कई छतीस वार" की (आवृत्ति से) लगातार अंधेरे में चल रहा है (परंतु) हम तो (तब से ही) उषाकाल के (प्रकाश का) अनुभव करते हैं। हम तेतीसों (कोटि देवताओं) के आदर्श पर चल रहे हैं (और हम) बारह (करोड़ प्राणियों के उद्धार के) लिये आये हैं।

यदि विचार करें तो (हमने) बारह (कोटि प्राणियों को उद्धार के लिये) चुना, अनेकों को (कल्याण के लिये) निश्चित किया, (और मैंने यहां अवतरित होकर) प्राणियों के हृदय में (परमात्मा का) प्रेम अंकित किया। हम ऊंचे मंडल के राजा हैं।

(हमने ही) मेरु (पर्वत) को मथानी के (रूप में) स्थिर कर (और) वासुकि नाग को नेत्रा बनाकर समुद्र को विलोडित किया था। (परशुराम के रूप मे हमने) सहस्रार्जुन को मारा (और ऋषि के) कार्य को संपूर्ण किया, उस (समय) हमने रहस्य के बाजे बजाये। (रावण द्वारा अपहृत) सीता को (जब) वापस लौटाया तब मैं वहां मौजूद था। (हमने) बाणों के (उस) गजब के नृत्य से रावण के दस सिरों का उच्छेदन किया।

(हम सत्यमार्ग पर अग्रसर होने वाले जीवों की) खोज करने वाले हैं (परन्तु) तुम्हें (इस बात का) पता नहीं है (हम) दाव ले लेकर खेलते हैं। कंसासुर से (हमने) मल्लयुद्ध किया (और) सहज ही में उसे हरा दिया।

(राजा) कर्ण कुमारी कुंती (के) (गर्भ में) समा गया, उस (राजा और दानवीर कर्ण के) यश–पट मार्ग–मार्ग पर फहराने लगे।

लाख (और) मजीठ की भावना लगने वाले रंग के अतिरिक्त (जितने) वन–फल लाल रंग के (दीख रहे हैं वे सब) रंग पानी के आगे बह जाते हैं (वे) चखकर (भी) बिना चखे के समान हैं, (वे) उपभोग होकर (भी) अपभोग (ही) रहे, फल को देख कर लो, करील फल मे क्या रसलीन होते हो।

तुमने योग का अनुभव नहीं किया (न तुमने) भोगों का ही उपभोग किया (और) न (ही तुमने) विष्णु को पहचाना। (अरे!) कण रहित "कूकस" (भूसा) को क्यों पीसते हो, निश्चय ही (तुम्हारा इस कुकस से) कार्य नहीं सधेगा। हम अवधूत, निरपेक्ष योगी (और) सहज नगर के राजा हैं।

जो जिस (भाव से हमारे पास) आता है (हम) उसको उसी रूप में स्वीकार करते हैं (जो) सच्चे हैं (उनको) सत्य अच्छा लगता है।

मेरे मन ही मुद्रा है, शरीर ही "कंथा" है (और मैंने) योग–मार्ग को पार कर लिया है। (हमने) सातो समुद्रो का (तो) "कुल्ला" किया (फिर भी) हमने (उस समुद्रजल को) न पीया (और न ही उसे बिना पिये) प्यासे ही रहे। डाकिन, साकिन, निन्द्रा (और) क्षुधा ये (सब) हमारे तम्बे के कूए मे छिपी हुई हैं।

मेरे मन में ही (योग की समस्त) मुद्रायें हैं (मेरा) शरीर ही (मेरी) कंथा है (मैंने) योग के समस्त मार्गों को पार कर लिया है (अतएव) डाकिन, साकिन, निन्द्रा और क्षुधा (आदि) मेरे पास ही नहीं फटकती।

(३०)

(विष्णु कूंची)

आयो हंकारो[1], जिवड़ो बुलायो कह[2] जिवड़ा क्या[3] करण कमायो
थरहर कंपै जिवड़ो डोलै, उतमाई[4] पीव न कोई बोलै
सुकरत[5] साध[6] संगाई[7] चालै[8]
स्वामी पवणा पांणी नवण करंतो, चंदे सूरे शीस नवन्तो
विष्णु[9] सुरां पोह[10] पूछ लहन्तो, इहं[11] खोटे[12] जनमन्तर स्वामी
अहनिश[13] तेरा[14] नाम जपन्तो
निगम कमाई मांगी मांग सुरपति साथ सुरा सू रंग सुरपति[15] सुरां सूं मेलो
निज पोह[16] खोज[17] ध्याइये
भूम[18] भली कृपाण[19] भी भला, यूठो है जहाँ[20] बाहिये[21]
करपण[22] करो[23] सनेही खेती, तिसिया साख निपाइये
लुण[24] चुण लीयो मुरातब कीयो, कण काजे खड गाहिअे
कण तुस झेडो होय[25] नवेड़ो, गुरु[26] मुख पवन उडाइये
पवणा[27] डोलै तुस उड़ेला, कण ले अर्थ[28] लगाइये
यों क्यों? भलो जे आप न जरिये, औरां अजर जराइये
यों क्यों? भलो?? जे आपने[29] फरिये[30], ओरां अफर फराइये
यों क्यों भलो जे आप न डरिये, ओरां अडर डराइये
यों[31] क्यों[32] ? भलो? जे आप न मरिये, ओरां मारण धाइये
पहले[33] क्रिया आप कमाइये, तो ओरांने[34] फरमाइये
जो कुछ कीजे मरणै[35] पहलै[36], मत भलके[37] मर[38] जाइये
शीच[39] स्नान[40] करो क्यों[41] नाहीं, जिवड़ा काजै न्हाइये
शौच स्नान कियो जिन नाहीं, होय[42] भंतूला[43] बहाइये[44]

---

१. हकारो २. कहि ३. के ४. माई ५. सुक्रत ६. साथ ७. सगाई
८. चाले ६. विसन १०. पह ११. इहि १२. खोटै १३. निस १४. तेरो
१५. "साथि" अधिक है १६. पो १७. खोजि १८. भोमि १६. क्रिसाण २०. जे २१. बाहीये
२२. किरसण २३. कीयो २४. लुणिचुणि २५. होई २६. गुर २७. पवना २८. अरथ
२६. न ३०. "क्यो" अधिक है ३१. यौं ३२. क्यूं ३३. पहलू ३४ नै ३५. मरण ३६. पहेलू ३७. "ही" अधिक है ३८. मरिजाइये ३६. सौंच ४०. सिनान ४१. क्यूं ४२ होइ
४३. बंतुला ४४. बहिअे।

शील[1] विवर्जित[2] जीव दुहेलो, यमपुरी[3] ये संताइये
रतन काया मुख सुवर यरगो? अवखल झंखे पाइये
सवामण सोनो करणे[4] पाखो किण पर वाह[5] घलाइये
ओक गऊ ग्वाला ऋषि[6] मांगी, करण पखो किण[7] सुरह सुवच्छ[8] दुहाइये
करण पखो किण कंचन[9] दीन्हों राजा कवन[10] कहाइये
रिण ऋध्ये[11] स्वामी[12] पाखो[13], कुण[14] हीरा डसन[15] पुलाइये[16]
किंहि निश[17] धर्म हुवे[18] धुर[19] पूरो, सुर की सभा समाइये
जे नविये[20] नवणी खविये[21] जरिये जरणी करिये करणी-
तो सीख हुयां[22] घर जाइये
अहनिश[23] धर्म[24] हुवे[25] धुर पूरो, सुर की सभा समाइये
किंहि गुण[26] विदरो पार[27] पहूंतो, करणै फेर यराइये
मनमुख दान जो[28] दीन्हों करणै आवागमण जु[29] आइये
गुरमुख दान जू दिन्हों विदरै, सुर की सभा समाइये
निज पोह[30] पाखो पार[31] असीपुर[32], जाणी गीत विवाहै[33] गाइये
भरमी भूला वाद विवाद
अचार विचार न जाणत स्वाद
कीरती के रंग राता मुरखा मनहट मरै[34] पार गिराये कित उतरै[35]

(परमात्मा के घर से) यमदूत (मृत्यु निमंत्रण लेकर) आया है (उसने जीवात्मा को यह कह कर अपनी पाश मे बांध लिया कि) जीवात्मा को (परमात्मा ने) बुलाया है। (वहां परमात्मा ने जीवात्मा से पूछा) हे जीव ! कहो, (तुमने) क्या (शुभाशुभ) कर्म किये?

(वहा परमात्मा के सामने कर्तव्यच्युत) जीवात्मा थरथर कापने लगा, (वह वहां) विचलित हो उठा (वहां जीवात्मा की सहायता के लिये) न माता (और) न पिता (आदि ही) कुछ बोल सकते हैं। (मरणोपरांत तो) जीवात्मा के साथ (उसकी) सुकृत की साधना (ही) चलती है।

(सुकृत साधने वाले जीवात्मा ने परमात्मा से निवेदन किया) हे स्वामी ! (मैं आपकी सृष्टि के प्रधान तत्वों) पवन (और) पानी को नमस्कार करता था, सूर्य

---

१ सील २. विवरजत ३. जमपुरिये ४. करणै ५ किहिमर वाह
६ रिख ७. किंहि ८. सुवछ ६ कंचण १०. कौंण ११. रूधै १२. स्वांमीं १३. करणैं
१४ किण १५. डसण १६. फलाईये १७. निस १८. हूवै १६. धुरि २०. नवीये
२१. खवीये २२. हुई २३. इहि २४. धरम २५. हूवै २६ गुणि २७. पारि २८. "ज" स्वीकृत पाठ मे "जो" है यह वस्तुत. "दानज" दान के साथ मात्र ज प्रत्यय है।
२६. "ज" (प्रत्यय है) ३०. पो ३१ पारि ३२. असीपरि ३३. विवाहे
३४ "तो अधिक है। ३५. उतरैं।

(एवं) चन्द्रमा को शीश झुकाता था (और) विष्णु (तथा) देवताओं के (आदर्श) मार्ग को (सद्गुरु से) पूछकर (उसका) अनुसरण करता था, हे स्वामी ! इस मिथ्या संसार में (मैं तो) रात–दिन तेरा नाम जपता था। (परमात्मा ने प्राणी के) शुभाशुभ कर्मों को देखा (और प्राणी के शुभ कर्मों को देखकर) परमात्मा ने (उस प्राणी को) देवताओं का सा दिव्य रूप देकर विष्णु (और) देवताओं से मिलाप करवा दिया (ऐसी स्थिति को चाहने वालों को परमेश्वर विष्णु के) निज–मार्ग (भक्ति) को खोज कर (उस विष्णु का) सुमरण करना चाहिये।

भूमि (भी) अच्छी हो (और) किसान भी भले हों (पर) जहां पानी बरसता है (वहां) खेती बोनी चाहिये (अर्थात् गुरु के उपदेश रूपी वर्षा से ज्ञान रूपी खेती बोनी चाहिये, यह) स्नेह करने योग्य खेती है (इसके लिये) मेहनत करो (और जो ज्ञान के) प्यासे (जिज्ञासु) हैं (वे ज्ञान रूपी) खेती को फलीभूत करेंगे।

(खेती से विविध वस्तुओं को) लुनित (और) चुनकर ढेर लगा दिया (अब) कन (आत्मा की प्राप्ति) के लिये भूसे (रूपी मिथ्या माया) का मर्दन करना चाहिये (तब) कण रूपी (आत्मा और) तुष (रूपी माया का) विभाजन होगा (फिर उस माया को) "गुरुमुख" से सुने ज्ञान (रूपी) पवन से (उस मिथ्या माया आदि को) उडाइये। (वह माया रूपी) तुष (ज्ञान रूपी) पवन के चलने से ही उड़ेगा। (फिर उससे प्राप्त) कण (रूपी आत्मा को) शुभ कार्य में प्रवृत्त करना चाहिये।

(कोई) यों कैसे भला कहा जा सकता, (यदि वह) स्वयं तो (काम क्रोधादि का) दमन नहीं करता है (परन्तु) दूसरों को (कामक्रोधादि) "अजर" (शत्रुओं को) दमन करने का उपदेश देता है।

इस प्रकार (कोई) कैसे अच्छा कहला सकता है, यदि (वह) स्वयं तो बोलता ही नहीं (और) दूसरों को कटुवाक्य बोलने को प्रेरित करता है।

इस प्रकार वह कैसे अच्छा कहा जा सकता है जो स्वयं तो बुराई से भयभीत नहीं होता पर दूसरों को निडर न रहने के कारण भयभीत करता है।

इस प्रकार (वह) कैसे अच्छा कहा जा सकता है जो स्वयं तो (दूसरों के लिये) मरने को तैयार नहीं (पर वह) दूसरों को मारने दौड़ता है।

(मनुष्य को) प्रथमतः स्वयं को ही (अपने) शुभ कर्मों का उपार्जन करना चाहिये (तत्पश्चात) दूसरों को (वैसा करने का) उपदेश देना चाहिये। जो कुछ (भी) करना हो (मनुष्य को वह) मरने से पहले (जीवितावस्था में ही) कर लेना चाहिये। (बिना अभीष्ट साधे) सहसा ही (आदमी को) काल–कवलित नहीं हो जाना चाहिये।

(हे मनुष्यों तुम) पवित्रता के (लिये) स्नान क्यों नहीं करते हो? जीवात्मा के कल्याण के लिये (प्रत्येक आदमी को प्रतिदिन प्रातः) स्नान (अवश्य) करना चाहिये। जिन्होंने पवित्रता के (लिये) स्नान नहीं किया है (वे) "वातचक्र" (भंतूला) होकर (आकाश में) मंडरायेंगे। शील से रहित जीव बडा दुखी होगा (वह) यमपुरी में (बुरी तरह) सताया जायेगा।

(मनुष्य का यह) नर–तन (अमूल्य) रत्न के समान है (इस पर भी यदि वह अपने) मुंह से (गंदी वाणी) बोलता है (तो उसका मुंह) सूअर जैसा (गंदा है और वह निश्चय ही) नाश को प्राप्त होगा।

(राजा) कर्ण के बिना सवामन सोने का (दान दूसरा कौन प्रतिदिन दे सकता था) (इस पंक्ति की "किण.....चालाइये" की अर्धाली का अर्थ स्पष्ट नहीं होने के कारण छोड दिया है)

गालव (ऋषि) ने (किसी राजा से) एक गाय (दान में) मांगी किंतु बिना कर्ण के (उस ऋषि को) दुधारू "कपिला गाय" दूसरे किसने दी? कर्ण के बिना कंचन का (दान) किसने दिया? आज भी (कर्ण के सिवाय) राजा कौन कहलाता है?

(राजा) कर्ण के अतिरिक्त (अपने) स्वामी (के लिये) रणभूमि में (शत्रुओं से) अवरुद्ध होने पर (भी याचकों के मांगने पर) दांतों मे लगा (स्वर्ण) किसने (देना) आरंभ किया?

(यह स्वगत प्रश्न है.–) देवताओं की सभा मे प्रवेश पाया जा सके (ऐसा) ध्रुव–धर्म किस निश्चय से पूर्ण होता है? (समाधान है–) यदि (कोई पुरुष) नम्रता से झुकता है, (दण्ड देने में) सक्षम (होकर भी) क्षमा भाव अपनाता है, दमन करने योग्य (काम क्रोधादि शत्रुओ का) दमन करता है (तथा) करने योग्य कर्म करता है तो (वह प्राणी इस प्रकार) धर्म की शिक्षा पाकर (अपने परमात्मपद) घर को जाता है। इस प्रकार रात दिन ध्रुव कर्म के पूर्ण होने से (ही) प्राणी देवताओ की सभा में समाविष्ट हो सकता है।

विदुर कौन से गुण के (प्रताप से भवसागर से) पार हो गया (और) कर्ण को (किस कारण) पुन. संसार में आना पडा? कर्ण ने "मनमुख" दान किया था (इसीलिये उसे) जन्म–मरण के चक्र मे आना पडा।

विदुर ने (जो) "गुरमुख" दान दिया था (उसके प्रभाव से वह) देवताओं की सभा में प्रवेश पा सका।

"निज.......गाइये" का अर्थ ठीक नहीं बैठता। (जो) भ्रमी हैं (वे) वाद–विवाद में भूले हुवे हैं, (उनके किसी प्रकार का) आचार (और) विचार नहीं है (वे तो केवल) जीभ का स्वाद (लेना) जानते हैं। (जो) मूर्ख हैं (वे लौकिक) कीर्ति के रंग में अनुरक्त हैं। (ऐसे) मनहठ वाले (दुराग्रही) मरते हैं (वे) मोक्ष धाम पर कहां उतर सकते हैं?

भल मूल सींचो रे प्राणी ! ज्यों का भल बुद्धि[1] पावै
जामण[2] मरण भव काल[3] चूकै, तो[4] आवागवण न आवै
भल मूल सींचो रे प्राणी ! ज्यों तरवर मेलत डालूं
हरि[5] पर हरि[6] का आण न मानी, झंख्या भूला आलूं
देवा[7] सेवां टेव न जांणी, न बंच्या जम कालूं
भूलै[8] प्राणी विष्णु[9] न जंप्यो, मूल न खोज्यो[10] फिर[11] फिर
जोया डालूं
बिन रैणायर हीरे[12] नीरे, नगन[13] सीपे[14] तके न खोला नालूं
चलन[15] चलन्तै[16] वास[17] वसन्तै, जीव जीवन्तै[18][19] काया नवन्तीं[20]
कौंयरे

प्राणी ! विष्णु न घाती भालूं
घड़ी घटंतर पहर पटंतर रात दिनंतर मास पखंतर क्षिण[21]
ओल्हरवा[22] कालूं
मीठा झूठा मोह विटंबण मकर समाया जालूं
कयही को बाइन्दो बाजत लोई ! घड़िया मस्तक तालूं
जीवां जूंणी पड़ै[23] परासा[24] ज्यूं झींवर मच्छी मच्छा[25] जालूं
पहलै[26] जिवड़ो[27] चेत्यो[28] नांही, अब ऊंडी पड़ी पहारूं
जीव र पिंड बिछोड़ो[29] होयसी, ता दिन थाकै[30] रहै[31] सिर मारूं

हे प्राणी! (तुम) भली प्रकार से (विश्व) मूल (परमात्मा) को सींचो अर्थात् उसकी उपासना करो। जिसके (फलस्वरूप तुम्हारी) बुद्धि उत्तमता को प्राप्त हो। (ईश्वरोपासना से) जन्म–मरण (रूप) काल की निवृत्ति होती है (और प्राणी का कभी भी संसार में पुनः) आवागमन नहीं होता। (इसलिये) हे प्राणी! (तुम) श्रेष्ठमूल (ईश्वर) को सींचो अर्थात् ईश्वरोपासना करो, वृक्ष को (सींचने से) जैसे (वह वृक्ष) शाखाओं की वृद्धि करता है (उसी प्रकार मूल विष्णुदेव का सुमरण करने से, मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है।)

(अपने हृदय से) हरि को दूर कर (तुमने उस) हरि की मर्यादा को नहीं माना (और उल्टे तुमने) भ्रम में पड कर निरर्थक बकवास किया। (जिस प्राणी ने) देवताओं की सेवा–विधि को नहीं जाना (वह) यमराज के (हाथों) मृत्यु से नहीं बचा। भ्रम मे पड कर (जिस) प्राणी ने विष्णु भगवान को नहीं जपा, मूल (विष्णु) की खोज नहीं की (अपितु मूल वृक्ष को छोड कर) शाखाओं (की भांति अन्य देवों को) देखा अर्थात्

---

१. बुधि २ जामिण ३. काल के बाद "ज" अधिक है जिसका प्रयोग कथन को अधिक बलवान बनाने के अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है। ४. यहां "तो" नहीं है। ५. हर ६. हर ७. देवां सेवा ८. भूला ६. विसन १०. खोज्यों ११. फिरि फिरि १२. हीर न नीरे १३. नगेन १४. सीपे १५. चलण १६. चलतैं १७. वास वसन्तैं १८. जीवन्तैं १६ यहां "सास फुरन्तै" अधिक है। २०. नवती २१. खिण २२. वोल्हरिबा २३ पडी २४ परासौ २५ मछी मछा २६. पहलू २७. जीवडो २८. चेत्यौ २६ बिछोडौ ३०. थांकि ३१. रही।

उनकी उपासना में लगा रहा। (परंतु हे प्राणी! तुम) रत्नाकर जल के बिना हीरे (जैसे बहुमूल्य जवाहरात और) बिना सीपों के मोती (अन्यत्र) ना लों एवं गड्ढों में मत देखो (अर्थात् बहुमूल्य मोती आदि समुद्र में से ही प्राप्त हो सकते हैं न कि बरसाती नालो–खोलो मे, सार है कि बिना ईश्वरोपासना के चिरंतन सुख अन्योपासना में नहीं मिलता)।

(मनुष्य की आयु पर) मृत्यु, घडी, (घडी) के (क्रम से) घट कर प्रहर के पटाक्षेप से, रात–दिन के अंतर से (और) मास (एवं) पक्ष के अंतर से (आघात कर उसे) नाश करने के लिये झुका हुआ है। (अतएव मनुष्य को) सांसारिक मोह के मीठा (पन से) लिपटना व्यर्थ है (मोहासक्त प्राणी एक दिन काल की पकड़ में इस प्रकार आयेगा जिस प्रकार) मछली (धोखे से कालरूप शिकारी के) जाल में समा जाती है। (जिस दिन) जीव और शरीर का विछोह होगा उस दिन (परिवार के लोग मृतक प्राणी के मोह में) सिर मार कर हैरान रह जायेंगे।

(३२)

कोट[1] गऊ जे तीरथ दानों
पांच[2] लाख तुरंगम दानों
कण कंचन[3] पाट पटंवर दानों
गज गैंवर हस्ती अति बल[4] दानों
करण दधीच सिंवर बलराजा[5]
श्रीराम ज्यों बहुत करै आचारूं
जां जां वाद विवादी अति[6] अहंकारी·
लबद सवादी[7]
कृष्ण[8]चरित बिन[9] नाहिं[10] उतरिबा[11] पारूं

यदि (कोई) तीर्थ (तट पर एक) करोड गायों का दान करता है। पांच लाख घोडो का दान करता है। अन्न (कण), स्वर्ण (और) रेशम से बुने पीताम्बरो का दान करता है। गज–गयंद (तथा) अत्यन्त बलिष्ठ हाथियो का दान करता है। (महादानी) कर्ण, (महर्षि) दधीचि (राजा) शिवि (और) राजा बलि (तथा) श्रीराम की भाति (कोई) बहुत से आचारों का (पालन) करता है (किन्तु इतना सब कुछ करने पर भी यदि व्यक्ति) वाद–विवादी है, अत्यधिक अभिमानी है (और केवल) (सांसारिक पदार्थों का) लब्ध–स्वादी है–विषयासक्त है (तो वह) बिना (भगवान्) श्रीकृष्ण की लीला के (श्रीकृष्ण चरित्र की बात भिन्न है, अन्यथा वह इस) भवसागर से पार नहीं उतर सकता।

---

१. कोडि २. पच ३ कचण ४. बलि ५. बलिराजा ६. अत ७. स्वादी ८. बिसन ९. बिण १०. ना ११. ऊतरिया।

कवण[१] न हूवा ! कवण न होयसी[२] ? किण[३] न सह्यो[४] दुख भारूं
कवण न गइया कवण न जासी, कवन रह्या संसारूं
अनेक अनेक चलंता दीठा, कलिका माणस कौण विचारूं
जो चित होता सो चित नाहीं, भल खोटा संसारूं
किसकी माई किसका भाई किसका पख परवारूं
भूली दुनियां मर मर[५] जावै, न[६] चीन्हों करतारूं
विष्ण विष्णु[७] तू भण[८] रे प्राणी! बल बल[९] वारम्वारूं
कसणीं कसवा[१०] भूल न बहवा[११], भाग परापति सारूं
गीता नाद कविता[१२] नाऊं[१३], रंग फटा रस टारूं
फोकट प्राणी भूरमे भूला, भलजे यों चीन्हों[१४] करतारूं
जामण मरण बिगावो चूकै, रतन काया ले पार[१५] पहुंचै तो
आवागयण निवारूं

(इस संसार से) कौन (उत्पन्न) नहीं हुआ? (भविष्य में भी) कौन नहीं होगा? (और इस संसार में जन्म लेकर) किसने (संसार के) दु ख (रूप) भार को सहन नहीं किया?

(इस संसार से) कौन नहीं गया? (ऐसा) कौन है (जो इस संसार से) प्रस्थान नहीं करेगा? (और ऐसा) कौन है (जो इस) ससार मे स्थिर रहा? (इस संसार से) अनेकानेक (महान व्यक्तियों को जब) जाते हुए देखा है (तब) कलियुग के बेचारे (अल्पायु) मनुष्य की तो गणना ही क्या है?

(माता के गर्भस्थ प्राणी के) चित्त मे जो (ईश्वर) था वह (जन्मने पर प्राणी के) हृदय में नहीं रहा–प्राणी अपने हृदयस्थ ईश्वर को भूल गया, फिर (वह) ससार में बुरा हो गया।

(इस संसार में कौन) किसकी मां है? (कौन) किसका भाई है? (और कौन) किसका कुटुम्ब–परिवार है? संसार के लोग (मोहासक्ति में बार–बार) मर–मर कर जाते हैं (क्योंकि उन्होंने) परमात्मा को नहीं पहचाना।

हे प्राणी! तू (परमात्मा की) बार–बार (तथा) निरंतर "विष्णु–विष्णु" उच्चारण कर। (तुम संयम की) "कसणी" (रस्सी विशेष) कसो (और) (ससार की) भूल में मत बहो (मनुष्य को) प्राप्ति तो (अपने) भाग्य के अनुसार होती है।

गीता (संभवत. भगवद्गीता) का (उद्घोषमात्र लौकिक कवियो की) कविता नहीं (यह मनुष्य पर चढे लौकिक) रंग को फाड कर (वास्तविक) रस (तत्व) को अलग करती है।

---

१. कौंण २. होइसी ३. किन ४. सह्या ५. मरि मरि ६. ना ७. विसन विसन ८. भणि ९. बलि बलि १०. कसिबा ११. वहिबा १२. कवीता १३. नावों १४. चीन्हैं १५. पारि।

हे प्राणी। (तुम) व्यर्थ में ही भ्रम में भूल रहे हो, (क्या तुमने) भला इस प्रकार परमात्मा की पहचान कर ली है? (परमात्मा को पहचानने पर) जन्म मरण (रूपी) विनाश की निवृत्ति हो जाती है। (वह मनुष्य) मुक्त होकर (भवसागर से) पार हो जाता है (और) तभी (वह अपना) आवागमन मिटा सकता है।

(३४)

फुरण फुहारै[1] कृष्णी[2] माया, घण बरसंता[3] सरवर-नीरे,
तिरी तिरन्ते जे तिस मरै तो मरियों
अन्नों धन्नों दूधूं दहियों, घीऊं[4] मेऊं[5] टेऊं[6] जे लाभन्ता भूख मरै तो
जीवन ही विन सरियों
खेत मुकत[7] ले कृष्णा[8] अर्थो, जे कांध हरै[9] तो हरियों
विष्णु[10] जपन्ता जीभ[11] जु[12] थाकै, तो जीभड़ियां विन सरियों
हरि-हरि करता[13] हरकत[14] आवै, तो ना पछतावो[15] करियों
भीखीलो भिखियारी लो, जे[16] आदि[17] परमतत्व[18] लाधो
जाकै बाद विराम[19] विरांसो, सांसो तानै[20] कौण[21] कहसी[22]
सालिया साधो

(भगवान्) श्री कृष्ण की माया से, बादलो के (पानी) बरसते, (पानी की) बूंदों के फुंवारे पडते (तथा) आकण्ठ पानी से भरे सरोवर के किनारे (यदि कोई मनुष्य) प्यास से (व्याकुल होकर) मरता है तो (भले ही) मरे ! अन्न, धन, दूध–दही, घृत(और) मेवों के उचित (मात्रा में) उपलब्ध होने पर भी यदि (कोई) भूख से मरता है तो (उसे मरने दो) इस प्रकार के जीवन (वाले मनुष्य के) बिना (ही काम) चलाना चाहिये।

(परमेश्वर) श्रीकृष्ण के निमित्त (कोई) मुक्ति का विचार लेकर यदि रण–क्षेत्र में (अपना) शरीर नष्ट करता है तो (उसका) ऐसा करना उचित है।

विष्णु को जपते हुए (यह) जीभ (यदि) थकती है तो (इसे थकने दो) ऐसी जीभ के बिना ही (रहना) अच्छा है (जो विष्णु के जपने से थकती है)। "हरि हरि" (ऐसा सुमरण) करते हुए (यदि शरीर में किसी प्रकार की) गतिशीलता आती है तो (आने दो इसके लिये किसी प्रकार का) पश्चाताप न करना।

(हे) भिखारी! यदि (तुम्हें) "आदि परमतत्व" की उपलब्धि हो गई है तो (चाहे तुम) भिक्षा लो (अर्थात् तुम्हारा भिक्षा लेना निन्दनीय नहीं माना जायेगा किन्तु) जिनके (पल्ले) वाद, अवरुद्धता, रुष्टता (और) संशय है उनको गुरु द्वारा दीक्षित–संस्कारी–साधु कौन कहेगा?

---

१ फुहारे २. विसनी ३. बरसंतै ४. घीवौं ५. मेवो ६. टेवौं ७ मुकति ८. किसना ९. हरतो १०. विसन ११ जिमडी १२. नहीं है १३. करंता १४. हरकत १५ पछितावो १६ जो १७. आद १८. प्रमतत १९. विवाद २०. "सरसा भीलो" अधिक है २१ कौण २२. कहिसी।

(३५)

यल बल भणत व्यासूं[1]
नाना[2] अगम[3] न आसूं[4]
नाना उदक उदासूं
बलबल भई निरासूं
गलमें पड़ी परासूं
जां जां गुरु न चीन्हों
तइया सींच्या न मूलूं
कोई कोई[5] बोलत थूलूं

व्यास (लोग) बार–बार (वेद शास्त्रो का) प्रवचन करते हैं किंतु (उनकी) वेद–शास्त्रों में (वास्तविक) आस्था नहीं है।[6] (परतु वे) दान (लेने में किंचित भी) उदासीन नहीं हैं। (उन्हें) बार–बार (अनेक प्रकार से) निराशा होती है। (उनके) गले में (मोह–माया की) पाश पडी हुई है।

जिन्होंने गुर (परमात्मा) को नहीं पहचाना। (और) जिसने (जगत के) मूल (कारण परमेश्वर) को नहीं सींचा–अराधा, (वे) धर्महीन "थूळ" हैं कुछ का कुछ बोलते रहते हैं।

(३६)

काजी कथै कुराणों[7]
न[8] चीन्हों[9] फरमाणों[10]
काफर थूल भयाणों[11]
जइया[12] गुरु न चीन्हों[13]
तइया[14] सींच्या[15] न मूलूं
कोई कोई[16] बोलत थूलूं

(यद्यपि) काजी कुरान का कथन करता है (किंतु उसने कुरान की) आज्ञा को नहीं पहचाना। (ऐसा न होने के कारण वह) काफिर (और) "थूल" हो गया। जिसने

---

१. वियासौं २. नां नां ३. यहां "अग" "मन" इस प्रकार पाठ है।
४. आसौं ५. को को।
६. पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकश ।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वीपाक् रसं यथा।।
+ + + +
काजी कथै कुराण कूं, पंडित बांचै वेद।
इनकै ज्ञान उपज्या नहीं, मिटा न संसृति खेद।।
७. मुलाणौं ८. ना ९. चीन्हैं १०. फुरमांणौं ११ अयांणौं १२. जईया १३ चीन्हौं
१४. तईया १५ सींच्यौ १६. को को।

गुरु (परमात्मा) को नहीं पहचाना (और) न उसने मूल (परमेश्वर) को सींया अर्थात् आराधा। (वह) मूर्ख (अज्ञानवश) कुछ का कुछ बोलता रहता है।

(३७)

लोहा लंग लुहारुं[1] ठाठा घड़ै ठठारुं
उत्तम कर्म कुम्हारुं
जइया[2] गुरु न चीन्हों[3]
तइया[4] सींच्या[5] न मूलूं
कोई कोई बोलत थूलूं

लौहार (जैसे) लोहे के कार्य में लग कर (नाना प्रकार के) बर्तन बनाता है (वैसे ही) ठठेरा (अपने मन से सोच कर विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाता है और) कुम्हार भी अपने उत्तम कर्म (स्वकर्म) में लग कर मिट्टी से बर्तन बनाता है। (उक्त तीनों प्रकार के बर्तन तत् तत् धातुओं से भिन्न नहीं वैसे ही समस्त चराचर में ब्रह्म की व्याप्ति है। किन्तु जिसने सद्) गुरु की पहचान नहीं की (और) जिसने मूल को नहीं सींचा (ईश्वर की यथार्थता नहीं समझी) उन्हीं में से कोई मूर्ख कुछ का कुछ मिथ्या प्रतिपादन करता रहता है।

विशेष.– जंभसागर (हिसार) में इस सबद का अर्थ इस प्रकार किया है.– "जिस प्रकार लुहार लोहे को भूमि का भाग होते हुए भी उसको भूमि से भिन्न मानता है, उसी प्रकार ठठेरा कांसी–पीतल को पृथ्वी का अंश होते हुए भी पृथ्वी से अलग मानता है।

उत्तम और निर्दोष कर्म कुम्हार का है उसको घटादि बनाने मे परिश्रम भी कम होता है। वह सब स्मृति के घट, मटकी,. मटका और कुडा आदि मृतिका के कार्यों को मृतिका रूप ही जानता है (इस दृष्टांत से कर्म, उपासना और ज्ञान अद्वैत ब्रह्म को सिद्ध करते हैं)।

जिस प्रकार अज्ञान से लोहे को मृतिका से भिन्न मानता है इसी प्रकार तमोगुणी पुरुष विहित कर्म करता हुआ अपने को ब्रह्म से अलग मानता है, जिस प्रकार ठठेरा कांसी–पीतल को मृतिका से अलग मानता है इसी प्रकार रजोगुणी उपासना करता हुआ ईश्वर को अपने से पृथक् मानता है और जिस प्रकार कुम्हार मृतिका के कार्य– घटादि को मृतिका रूप ही मानता है उसी प्रकार सतोगुणी पुरुष को ज्ञान होता है। वह जगत को ब्रह्म रूप ही देखता है।

जिस पुरुष ने अद्वैत ब्रह्म को नहीं पहचाना उसने मूल को नहीं पहचाना। कोई भ्रान्त पुरुष रातदिन झूठ का ही सेवन करते हैं।

---

१ लुहारौं २. जईया ३ चीन्हौं ४. तईया ५ सींच्या।

(३८)

रे रे पिंडस पिंडू[1]
निरघन[2] जीव क्यों[3] खंडू[4]
ताछे खंड विहंडू[5]
घडिये[6] सै घमंडू[7]
अइया[8] पंथ कुपंथूं
जइया[9] गुरु न चीन्हों[10]
तइया[11] सीचा[12] न मूलूं
कोई कोई[13] बोलत थूलूं

अरे अरे! (अति आश्चर्य से) कच्चे शरीर वाले! (तुम) अवध्य (गौआदि) जीवों को क्यों मारते हो? (तुम) उस (निर्दोष जीव को) मारने से (होने वाले) पाप से डरो। (अनधिकार रूप से जीवों को मारना) उस जीव-निर्माता-परमात्मा के सामने (तुम्हारा) घमंड करना है। ऐसा मार्ग (ऐसा करना) कुमार्ग है।

जिसने गुरु (परमात्मा) की पहचान नहीं की है, उसने मूल (परमेश्वर) को नहीं सींचा। (वह) थूल है (और) कुछ का कुछ बोलता रहता है (सारांश है कि ऐसे व्यक्ति के आदेश-उपदेश मानने योग्य नहीं हैं।)

(३९)

उत्तम संग सुसंगू[14]
उत्तम रंग सुरंगू[15]
उत्तम लंग सुलंगू[16]
उत्तम ढंग सुढंगू[17]
उत्तम जंग सुजंगू[18]
ताते[19] सहज सुलीलूं[20]
सहज सुपंथू[21]-
मरतक[22] मोक्ष[23] दुवारूं[24]

श्रेष्ठ (पुरुषों का) साथ (ही) उत्तम संग है। रंगों में उत्तम रंग वही है जो चमकदार है अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का साथ आदमी में उत्तमता की चमक लाता है। श्रेष्ठ (पुरुषों के) संपर्क से (भवसागर) लघा जा सकता है।

(जीवन के लिये वही) उत्तम पद्धति है (जो जीवन को ऊंचा उठाती है)। उत्तम युद्ध (वही है) जिससे (जीवन में) सहज पवित्रता का उदय होता है (और वही)

---

१. पिंडों २. निरघण ३. क्यूं ४. खडों ५ विहंडों ६ घमंडस ७. घमडो ८. अईया ९. जईया १०. चीन्हौं ११. तईया १२. सींच्या १३. को को १४. सुसंगो १५. सुरंगो १६ सुलंगो १७. सुढंगो १८ सुजंगो १९. तातैं २०. सुलीलों २१. सुपंथो २२. मरतै २३. मोख २४. दवारौं।

सहज (एवं) सुमार्ग है (जो मरने पर (मनुष्य को) मोक्ष के द्वार पर ले जाय।

(४०)

सप्त[1] पताले[2] तिहूँ त्रिलोके चवदा भवने गगन
गहीरे, बाहर भीतर[3] सर्व[4] निरंतर[5] जहाँ चीन्हों तहाँ[6] सोई
सतगुरु[7] मिलियो सत पंथ बतायो भ्रांत[8] चुकाई-
अवर न बुझबा[9] कोई

सप्त पाताल, तीनों लोक (और) चौदह भवन मे (यह परमात्मा) आकाश की भाति, बाहर–भीतर (और) सर्वत्र निरंतर (भाव से व्यापक है) जहां देखता हूं वहीं (वह परमात्मा) वह वर्तमान है।

"सतगुरु" मिला (और उन्होंने) "सतपंथ" बताया (और समस्त भेदाभेद) भ्रांतियों को मिटा दिया (अब) किसी और को (कुछ) पूछना (शेष) नहीं (रहा)।

(४१)

सुण[10] राजेन्दर[11] सुण जोगेन्दर सुण[12] शेपिन्दर[13]
सुण सोफिन्दर[14] सुण[15] चाचिन्दर सिद्धक[16] साध कहांणी
झूंठी काया उपजत विणसत[17] जां जां नुगरे[18] तिथी[19] न जाणी[20]

हे राजेन्द्र सुनो! हे योगीन्द्र सुनो! हे शेख सुनो! हे सूफीमुखिया सुनो! सिद्ध (और) साध कहलाने वाले (तुम भी) सुनो! (यह पंचभौतिक) शरीर नाशवान है (यह) उत्पन्न होता है (और) नष्ट हो जाता है (जो इस शरीर की उत्पत्ति–विनाश की) स्थिति को नहीं जानते हैं वे–वे (व्यक्ति) "नुगरे" हैं।

(४२)

आयसाँ काहे[21] काजै खेह भकरूड़ो सेवो भूत मसांणी
घडै ऊंधै बरसत बहु मेहा, तिहिंमां[22] कृष्ण चरित बिन पड्यो
न पडसी पांणी
जोगी जंगम नाथ[23] दिगम्बर, सन्यासी ब्राह्मण ब्रह्मचारी
मनहठ पढिया पंडित[24] काजी, मुल्लां[25] खेलैं आप दुवारी
निश्चै[26] कार्यों[27] वार्यों[28] होयसी[29], जे[30] गुर बिन खेल पसारी

हे योगी, (तुम) कौनसी कार्य–सिद्धि के लिये (अपने शरीर पर) भस्मी (लेपन कर) "राख" जैसे हो गये हो (और किस कार्य के लिये तुम) श्मशान मे (बैठकर) भूतप्रेतादि का "सेवन" (आराधन) करते हो? (लेकिन विपरीत कार्य से किंचित् भी

---

१. सपत २. पयाले ३. भीतरि ४. सरब ५. निरतरि ६. ताहाँ ७. गुर ८. भ्राति ९. बूझिबा। १० सुंणि ११. राजिदर १२. सुंणि १३. सेप्यदर १४. सोफिन्द्र। १५. यहा "सुण" के पहले "सुणि काफिन्दर" पाठ अधिक है। १६. सिधक १७. बिनसत १८. निगुरे १९. थित २०. जांणी २१ काहे २२ तिहिमै २३ नाम २४ पिंडत २५ मुला। २६. निहचै २७. कार्यों २८ बार्यों २९. होईसी ३०. जे।

लाभ होने वाला नहीं) (जैसे) उलटे (औंधे मुंह रखे) घडे पर चाहे जितनी वर्षा क्यो न हो (किंतु) लीलामय कृष्ण की इच्छा के बिना (उसकी इच्छा हो तो भिन्न बात है अन्यथा) न कभी उसमे पानी पडा (और) न (ही कभी) पडेगा।

योगी, जंगम, नाथ, दिगम्बर, सन्यासी, ब्राह्मण (और) ब्रह्मचारी, पडित, काजी (एव) मुल्ला (ये सब) अपने (मन के दुराग्रह से पढ कर) अपने अपने दाव–पेचो से खेलते हैं।

(पर) निश्चय ही जिसने (यदि) गुरु के उपदेश बिना खेल (प्रपच) को फैलाया है तो (उन पाखडियो को) प्रतिकूल फल (ही) मिलेगा।

(४३)

ज्यों[1] राज गए राजेन्दर झूरै खोज गओ नै खोजी
लाछ मुई गिरहायत झूरै, अर्थ[2] विहूंणा लोगी
मौर[3] झड़े कृपाण[4] भी झूरै, विंद गओ नै जोगी
जोगी जंगम जपिया तपिया, जपी तपी तक पीरूं
जिहि[5] तुल[6] भूला पाहण[7] तोलै[8], तिहिं तुल तोल न हीरूं
जोगी सो तो जुग जुग जोगी, अब भी जोगी सोई
थे कान चिरावो चिरघट पहरो, आयसां यह[9] पाखंड तो जोग न होई
जटा बधारो जीव संघारो, आयसां यह पाखंड तो जोग न कोई।

जिस प्रकार राज्य के चले जाने पर राजा और खोजक (खोजी) पदचिह्नों के लुप्त हो जाने पर विलाप करता है। घर–गृहस्थी, गृहलक्ष्मी–पत्नी के मर जाने से विलाप करता है (और) धन–हीन लोग (जैसे) धन के लिये विलाप करते हैं (वैसे ही) योगी वीर्य के निपात होने पर (विलाप करता है।)

(हे) योगी, जंगम, जप करने वाले, तप करने वाले (पंचाग्नि में तपने वाले) तकिये में रहने वाले (और) मुसलमानो के धर्मगुरु पीर, जिस तुला से पत्थर तोले जाते हैं (भ्रम में पड कर तुम) उसी तुला से हीरे न तोलो अर्थात् जो साधन ज्ञान अथवा मोक्षप्राप्ति का हेतु नहीं है अज्ञानवश उसे न करो।

(जो) योगी है वह तो युग–युगान्तरों में भी योगी ही रहेगा (और) वह वर्तमान (काल मे भी) योगी है।

हे योगी ! तुम कानो को चिरवा कर मुद्रा (एवं) गले में गुंजा पहनते हो यह पाखंड तो है (पर) योग नहीं है। (तुम) लम्बी–लम्बी जटा बढाते हो (और) जीवहिंसा करते हो, ऐसा करना तो पाखंड है, यह तो कोई योग नहीं है।

---

१. ज्यू २. अथि ३ मोर ४. क्रिसाण ५ जिह ६ तुलि ७ पाहण ८. तुलि ९. इण ।

(४४)

खरतर झोली, खरतर कंथा[1] कांध सह दुख भारूं[2]
जोग तणी थे खबर न पाई, कायं तज्यो घरबारूं
ले सूई धागा सींवण लागा, करड़ करीदी मेखलीयों
जड़ जटाधारी लंघै न पारी, बादविवादी बेकरणो
थे वीर जपो वैताल धियावो, काय न खोजो तत्व[3] कणों
आयसां डंडत डंडू[4] मुंडत मुडूं मुंडूत माया मोह किसो?
भरमी बादी बादे भूला, काय न पाली जीव दयों

(सख्त धागों से सिली हुई होने के कारण) झोली चुभने वाली है (और) कंथा भी चुभने वाली है, (तू अपने) कंधे पर (किसलिये उसके) दु:ख (रूप) भार को सहन कर रहा है? (जब) तुमने "योग" से परिचय नहीं किया है (तब तुमने अपना) घर–बार क्यों छोडा?

(तुमने इसी को योगी का कर्त्तव्य समझकर अपनी) अलफी को सूई लेकर सख्त कसीदे के धागे से सीने लगा (परंतु चाहे वह) जटा धारी (साधु भी) हो (यदि वह) अकारण वाद–विवाद करने वाला (और) जड है (तो वह भवसागर से) पार नहीं लंघ सकता।

तुम वीरो को जपते (और) वैताल की उपासना करते हो? (अरे ! तुम आत्म) तत्व (रूपी) कण को क्यों नहीं खोजते? (जो आत्मकल्याण के लिये श्रेयस्कर है।)

हे योगी ! (परमात्मा की ओर से) दण्ड देने योग्य को दण्ड दिया जाता है (और) मूडने योग्य को मूंडा जाता है (पर जो) साधु हो गया है (उसको संसार का) माया–मोह कैसा?

भ्रमित (और) विवादी, वाद–विवाद मे भूले रहे (उन्होने) जीव–दया का पालन क्यो नहीं किया?

(४५)

दोय मन[5] दोय दिल सिंवीं[6] न कंथा
दोय मन दोय दिल, पुली न पंथा
दोय मन दोय दिल, कही न कथा[7]
दोय मन दोय दिल, सुनी न कथा
दोय मन दोय दिल, पंथ दुहेला
दोय मन दोय दिल, गुरु न चेला
दोय मन दोय दिल, बंधी न बेला

---

१. खंथा २. भारौ ३. तत ४. डडो। ५. मुख, यह ध्यान रहे कि इस प्रति मे सर्वत्र ही "मन" के स्थान पर "मुख" ही है इसलिये अलग–अलग पाठान्तर नहीं लिखे हैं। ६. सींवा ७. तथा।

दोय मन दोय दिल, रब्ब[1] दुहेला
दोय मन दोय दिल, सुई न धागा
दोय मन दोय दिल, भिड़ै न भागा
दोय मन दोय दिल, भेद न भेऊं[2]
दोय मन दोय दिल, टेव न टेऊं[3]
दोय मन दोय दिल, केल[4] न केला
दोय मन दोय दिल, स्वर्ग[5] न मेला
रावल जोगी तां तां फिरियो, अण चीन्हें के चाह्यों
काहे काजै[6] दिशावर[7] खेलो[8], मनहठ सीख न कार्यो?
थे जोग न जोग्या, भोग न भोग्या गुरु न चीन्हों रार्यो
कण विन कूकस कार्ये पीसो, निश्चै[9] सरी न कार्यो
विन पायचिये पग दुख पावैं, अवधू! लोहै दुखी स कार्यों
पार ब्रह्म की शुद्ध न जांणी, तो नागे जोग न पार्यो

मन (और) हृदय की द्विधा–वृत्ति से कंथा भी नहीं सिली जा सकती। मन (तथा) हृदय की एकाग्रता के विना मार्ग का निरंतर पर्यटन भी नहीं किया जा सकता।

मन (एव) हृदय की द्विधा–वृत्ति से कथा का भी यथावत् कथन नहीं किया जा सकता (और न ही) अंत.करण की चलायमान वृत्ति से भलीभाति (वह) कथा ही श्रवण की जा सकती है।

दो मन (और) दो दिलवाले के लिये (अपना) मार्ग (लक्ष्य) प्राप्त कर लेना बहुत ही कठिन है। दो मन (तथा) दो दिल रखने वाला न गुरु ही बन सकता है (और) न चेला ही।

संकल्प–विकल्प रूप दो प्रकार के मनो द्वारा समय का नियमन नहीं किया जा सकता। (जिसका) मन (एवं) हृदय स्थिर नहीं है (उसे) भगवद् प्राप्ति होना दुर्लभ है।

(यहां तक कि) मन की एकाग्रता के अभाव में सूई मे धागा भी नहीं पिरोया जा सकता। (सूई और धागे का एकीकरण होने पर ही वह किसी पृथक् वस्तु को जोड सकती है)।

मन की द्विधा–वृत्ति से (अपने) भाग्य का (कहीं) मेल नहीं बैठता। द्विधापूर्ण मन से (किसी) भेद को भी नहीं जाना जा सकता।

(कोई भी) संदिग्ध मन वाला (कभी भी) मर्यादाओं का ठीक से पालन नहीं कर सकता। (कोई भी) अस्थिर चित्त–वृत्ति वाला (व्यक्ति) सांसारिक क्रीडायें भी नहीं कर सकता। मन ही डावांडोल स्थिति से स्वर्ग की प्राप्ति असंभव है।

---

१. रब २ भेवों ३. टेवों ४. केली ५. सुरग ६. चिन्हैं ७ काज ८. दिसावर ६. निहचै।

हे रावल जोगी। (तू) जहा–तहां भटका का ईश्वर व योग की असलियत को बिना जाने (तूने) क्या प्राप्त किया?

किस कार्य हेतु (तुम) देशान्तरों का भ्रमण करते हो? (और) किसलिये मन के दुराग्रह से (सच्ची) शिक्षा को ग्रहण नहीं करते? तुम "योग" साधने के योग्य नहीं। (क्योंकि तुम्हारा चित्त अति अस्थिर है और साथ ही दुराग्रही होने के कारण किसी की शिक्षा को ग्रहण नहीं करता) तुमने (घरबार छोड़ देने के कारण) न सासारिक भोगो का ही उपभोग किया (तथा) न गुरु के मार्ग का ही अनुसरण किया।

(हे योगी!) तुम किसलिये कण रहित भूसे को (अन्नप्राप्ति हेतु) पीसते हो अर्थात् अज्ञान को ही ज्ञान अथवा प्रतिकूल साधन को ही अनुकूल साधन मान बैठे हो जिससे निश्चय कोई कार्य नहीं सधता।

हे अवधू! (जैसे) बिना पद–त्राण (जूतों) के कांटों मे पैरो को कष्ट होता है (वैसे ही) तुम्हारे इस लोह–लंगोट से शरीर को महान् दु ख होता है।

(यदि तुमने) सच्चिदानंद परब्रह्म की जानकारी (साक्षात्कार) नहीं की तो केवल वस्त्र–त्याग से योग की प्राप्ति नहीं होती।

विशेष – मिलाइये पुली – "जुळियैने पुळियो को नावडैनी"

रावल – नाथ योगियो का एक विशेषण

पायचिये– खाल से बनी पैरों की जुराब

(४६)

जिहिं जोगी के[1] मन ही मुद्रा तन ही कंथा पिंडै अगन थंमायो
जिहिं जोगी की सेवा कीजै, तूठो भव जल पार लंगावै
नाथ कहावै मर मर[2] जावै, से क्यों नाथ कहाबै
नान्हीं मोटी जीवा जूंणी, निरजत सिरजत फिर फिर पूठा आवै
हम हीं रावल हम हीं जोगी, हम राजा के रायों
जो ज्यों आवै सो त्यों थरपां, साचा सूं सत भायों
पाप न छिपां पुण्य न हारां, करां न करतब लावां वारूं
जीवतडै को रिजक न मेटूं, मूवां परहथ सारूं
दौरे भिस्त विचालै ऊभा, मिलिया काम संवारूं

जिस योगी के मन ही मुद्रा[3] है, (जिसके यह) शरीर ही गुदडी है (और जिसने अपने) शरीर मे ही अग्नि–पचाग्नि अथवा कामक्रोधाग्नि को स्थिर कर रखा है (अर्थात् जिसने अपने मन का संयम रूपी मुद्रा से नियमन किया है, जो तितिक्षु है तथा जिसने तमोगुण रूपी अग्नि को स्थिर कर लिया है) उसी योगी की सेवा करनी चाहिये (जिसके) तुष्टमान होने से (वह मनुष्य को) भवसागर से पार लगा सकता है।

---

१. कै २. मरि मरि ३. नाथपंथी योगी कानों में जो कुंडल पहनते हैं वे भी "मुद्रा" कहलाते हैं।

(जो) नाथ कहलाते हैं (तदपि बारबार) जन्मते (और) मरते रहते हैं, वे नाथ[1] क्यों कहलाते हैं अर्थात् वे नाथ कहलाने के योग्य नहीं हैं क्योंकि उन्होंने नाथ योगी होकर भी मृत्यु को नाथा नहीं है। (वे) छोटी–मोटी जीव–योनियों में पुन–पुन आविर्भूत होकर संसार में जन्म लेते हैं।

हम ही रावल हैं, हम ही योगी हैं (और) हम (ही) राजाओं के राजा है। जो (व्यक्ति) जिस (भाव से हमारे पास) आता है उसको हम तदनुभाव से ही स्वीकारते हैं, (पर जो) सच्चे हैं उनको (हम) सत्यभाव से स्थापित करते हैं।

(हम) पाप को नहीं छिपाते (अर्थात् पाप को प्रश्रय नहीं देते) न (हम) पुण्य को (किसी दाव पर रख कर) हारते हैं (और) न (हम) कर्त्तव्य (पालन) में (किंचित् भी) विलम्ब करते हैं। (चाहे कोई कैसा भी हो हम उसकी) आजीविका को नहीं मिटाते (अर्थात् वह कर्म करने में स्वतंत्र हैं। वह अपने जीवन मे चाहे जैसे कर्मों द्वारा अपनी आजीविका कमाये किंतु) मरणोपरांत (वह प्राणी) पराये हाथों मे जा पडता है। तात्पर्य है कि कर्म–फल उसके हाथ मे नहीं रहता। वह जैसा कर्मोपार्जन करेगा वैसा ही फल भागेगा।

(मैं सद्गुरु रूप से) नरक (और) स्वर्ग के मध्य (जीवो के कल्याण के लिये) खडा हू (जो जिज्ञासुभाव से मुझसे आकर) मिलते हैं, मैं (उनके) कार्य को संवारता हू।

(४७)

काया कंथा मन जोगूंटो[2], सींगी सास उसासूं[3]
मन मृग राखले[4] कर[5] कृपाणी यों[6] म्हे भया उदासूं
हम हीं जोगी हम ही जती, हम[7] ही सती हम ही राखबा चित्तूं[8]
पांच[9] पटण नव नाथक साधले[10] आदिनाथ का[11] भक्तूं[12]

(यह जो) शरीर है (मेरी यही) कंथा (गुदडी) है, मन का योगरत होना ही भगवां वेश है (और) श्वासोच्छ्वास ही (मेरी) बजनेवाली सींगी है। अर्थात् जो–जो योगी–वेश के बाह्योपकरण होते हैं वे मेरे बाहरी नहीं हैं, भीतरी हैं।

(हे योगी!) मत्त (रूपी) मृग का (योग द्वारा) निरोध करो, उसे योगसाधनो से कृश करो, हम (मन को) इसी प्रकार (क्षीण) कर ब्राह्याडम्बरो से उदास हुवे हैं।

हम ही (अपने आप मे) योगी हैं, हम ही यति हैं, हम ही सत्यवादी है (और) हम ही चित्त को (वश में) रखने वाले हैं।

हे आदिनाथ के भक्त! (इसी प्रकार इस काया) नगरी में पच प्राणों को (और) नव द्वारों को अवरोहित कर योग की साधना कर ले।

---

१. मिलाइये– नाथ कहता सब जग नाथ्यो, गोरख कहंता गोई। २. जोगोंटो ३. उसासो ४. राखिले ५. करि ६. ऊं ७. इस प्रति में "हम" नहीं है। ८. चितों। ९. पांच। १०. साझिले। ११. के १२. भगतो।

विशेष – पाच पटण–पचनगरी; पंचकोश–अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, आनंदमय कोश, और विज्ञानमय कोश; नवद्वार– नवस्थान; श्रोत्रियद्वार, नाशिकाद्वार, नेत्रदार, मुखद्वार, उपस्थ और गुदा।

(४८)

लक्ष्मण[1] लक्ष्मण न कर[2] आयसां, म्हारे साधां पड़ै बिराऊं[3]
लक्ष्मण सो जिन[4] लंका लीवी रावण मार्‌यो, ऐसो कियो संग्रामों[5]
लक्ष्मण तीन[6] भवन को राजा, तेरे अेक न गाऊं[7]
लक्ष्मण कै तो लख चौरासी, जीया[8] जूंणी तेरे अेक जीऊं[9]
लक्ष्मण तो गुणवंतो जोगी, तेरै वाद बिराऊं[10]
लक्ष्मण का तो लक्षण नाहीं, शीस किसी विधनाऊं[11]

हे योगी! लक्ष्मण, लक्ष्मण न करो (ऐसा करने से) हमारे साधुओं में भ्रांति उत्पन्न होती है (कि यह कौनसा लक्ष्मण है?) लक्ष्मण तो वह था जिसने ऐसा भयंकर युद्ध किया था जिसमें (उसने) रावण को मार कर लंका को जीता था।

लक्ष्मण तो तीनों लोकों का राजा है (परन्तु) तेरे (लक्ष्मण नामधारी के) अधिकार में एक भी गांव नहीं है। (उस) लक्ष्मण के तो "चोरासी लाख" जीव योनिया अधिकार में हैं (लेकिन) तेरे (अधिकार में तो) एक भी जीव नहीं है।

(वह) लक्ष्मण गुणागार योगी है (जबकि) तेरे वाद (एवं) भ्रम ही पल्ले पडे हुवे हैं। (जब) तेरे मे लक्ष्मण का सा एक भी लक्षण नहीं है, (तब फिर) तुझे माथा किस प्रकार झुकाया जाय?

(४९)

अवधू[12] अजरा जारले अमरा राखले[13] राखले बिंद[14] की धारणा
पताल का पाणी अकाश[15] कूं चढायले[16] भेट ले[17] गुरु का दरशणों[18]

हे अवधूत! अजरा (जो पच न सकता हो, ऐसी जो अपाच्य ब्रह्मानुभूति है उसको) आत्मसात् करो (और) अमर आत्मा को पहचानो (तथा) (इस प्रकार के ज्ञान को स्थिर रखने के लिये) वीर्य (बिंद) की धारणा शक्ति (संयम) को रखो।

अधोगामी वीर्य (पानी) को मस्तिष्क में धारण करलो (जिससे) गुरु के दर्शन (एवं) भेट (सुलभ) हो जाय। (वीर्य का निपात नहीं होने देना ही गुरु प्राप्ति की साधना है)।

विशेष :– गोरक्ष पद्धति मे लिखा है कि जब तक शरीर में बिन्दु स्थिर है तब तक काल का भय नहीं क्योंकि बिदु का स्थान "व्योमचक्र" है, अतः वहां काल की गति नहीं। जब तक खेचरी मुद्रा दृढ है तब तक वीर्य व्योमचक्र से

---

१. लषमण लषमण २ करि ३. विरावों ४. जिण ५. संग्राम ६ तीनि ७ गावों ८ जीवा ९ जीवों १०. विरावो ११ क्यूं करि सीस नवावो १२. ओधूं १३. राखिले १४. विंद १५ आकासकौं १६ चडायले १७. भेटि १८. दरसणो।

नहीं गिरता। (वही, श्लोक ६६)

श्री जम्भसागर (लीथो) के टीकाकार श्री स्वामी ईश्वरानंदजी ने "अजरा" का अर्थ–काम, क्रोध, लोभ, मोहादि दुष्ट गुण किया है। यही अजरा है क्योंकि ये साधारण मनुष्य के अधिकार में शीघ्रता से नहीं आते। "जारले" का अर्थ किया है– "निर्मूल कर दे"।

नीचे की पंक्ति "पताल......दरशणा" का अर्थ किया है– पताल (पाताल) अर्थात् अंत करण वायु को बाहर की ओर जोर से फेक कर वहीं ठहरादे, पुन धीरे धीरे भीतर को जाने दे, इसी प्रकार जब प्राणायाम की रीति के अनुसार योगाभ्यास सदैव करता रहेगा तब अविनाशी विष्णु को ज्ञान रूप नेत्रों के द्वारा साक्षात करता हुआ विष्णु के परमपद को प्राप्त होगा।

"अजरा" का अर्थ जम्भगीता में भी वैसा ही किया है जैसा जम्भसागर में किया गया है।

अवधू–विशुद्धात्मा मुक्त पुरुष, मायारहित विशुद्धात्मा स्वरूप
अजरा–अजर–अमर, परमात्मा
जरणा–ऊर्ध्वरेता अर्थात् वीर्यधारण की साधना से अभिप्राय
अमरा–अहंकार को मार कर अमर हो जाना

(संत सुधासार की पाद टिप्पणियो से उद्धृत)

(५०)

तइया[1] सांसूं[2] तइया[3] माँसूं[4], तइया देह दमोई
उत्तम मध्यम[5] क्यों[6] जाणीजै[7], बिवरस[8] देखो लोई
जाकै बाद बिराम[9] बिरांसो सांसो[10] सरसा[11] भोला[12] चालै
ताकै भीतर[13] छोतल कोई
जाकै बाद बिराम बिरांसो सांसो भोलो भागो ताकै मूले छौत न होई
दिल दिल आप खुदायबंद जाग्यो, सब दिल जाग्यो[14] सोई
जो[15] जिन्दो हज काबै जाग्यो, थलशिर[16] जाग्यो सोई
नाम विष्णु[17] कै मुसकल[18] घातै[19], ते काफर शैतानी[20]
हिन्दू होय कर[21] तीरथ[22] न्हावै, पिंड भरावैं[23] ते पण[24] रह्या[25] इवांणी
जोगी होयके[26] मूंड मुंडावै कान चिरावै[27] गोरखहटडी धोकै
तेपण रह्या इवांणी

---

१. तईया २. सासौं ३. तईया ४. मासौं ५ मधम ६. क्यूं ७ जांणीजैं ८. व्यौंरस ९. विरांव १०. सासो ११. सरसो १२. भोलो १३. नहीं है १४. जाग्यौ १५ जे १६. थलिसिरि १७ विसन १८. मुसकलि १९. घातै २०. सैतांनी २१ व्हैकै २२ तीरथे २३. छलावै २४. तेपणि २५ रह्या २६. हाइकै २७. चिरावैं, इस प्रति में पाठान्तर २७ के बाद ऐसा पाठ है "धोकै गोरख हटडी"।

तुरकी होय[1] हज कायो धोकै, भूला मुसलमाणी
के के पुरुप और[2] जागँला, थल[3] जाग्यो[4] निजवाणी[5]
जिहिं[6] के नादे वेदे शीले[7] शब्दे[8] लक्षणे[9] अंत न पारुं
अंजन[10] माहिं निरंजन आछै[11], सो गुरु लक्ष्मण[12] कवारुं

जैसा स्वास (आप लेते हैं), जैसा (आपके शरीर का) मांस है (और) जैसी (आपके) शरीर की दीप्ति है (वैसी ही अन्य स्त्री–पुरुषादि की है, फिर) किसी को श्रेष्ठ (और) किसी को नीच क्यो समझा जाना चाहिये? हे लोगों! (फिर तुम उनको) विपर्यय–भाव से (क्यो) देखते हो? (हां) जिस (प्राणी) में व्यर्थ का वाद–विवाद है, राग–द्वेष है (और जिसकी आत्मा मे) संशय है उनमें (अवश्य ही) स्पर्श दोष है। (परंतु) जिसके अच्छे भाग्य से वाद, राग–द्वेष, क्लेश (अथवा) संशय नष्ट हो गया है उनके पास (द्वितीय भाव रूपी) "छौत" नहीं है।

(जो) परमात्मा काबे की हज में जाग्रत हुआ था (अथवा होता है) वही, इस मरुस्थल (भूमि में प्रकट) हुआ है।

(जो) भगवान विष्णु के नाम–स्मरण में बाधक बने हुवे हैं वे काफिर हैं (और) शैतान हैं।

जो हिन्दू होकर (केवल) तीर्थों में स्नान (और) अपने पूर्वजों को पिण्डोत्सर्ग करते हैं (परतु वे यदि अन्य क्षेत्रो में ईश्वरीय विधान का उल्लंघन करते हैं तो) वे वैसे ही (खाली) रह गये।

जो योगी होकर (सिर्फ) सिर मुंडा लेता है, कानों मे छेद कर मुद्रा पहनता है (और) गोरखहटड़ी को पूजता है वह भी वैसा ही (बिना आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किये) रह गया।

तुर्क होकर जो हज करने जाता है (तथा) काबे की मनौती मनाता है (परतु वह यदि खुदा के फरमानो को नहीं मानता है तो) वह मुसलमान भी (अपना सच्चा दीन) भूला हुआ है।

(इस ससार में) अनेक पुरुष (अवतरित होकर) जाग्रत होंगे (लेकिन) मरुस्थल (भूमि) पर मैं स्वयं ईश्वर ही जाग्रत हुआ हू।

जिसके नाद,वेद, शील (और) शब्द (आदि) लक्षणो का अंत पार नहीं है (और जो) माया में भी मायारहित–निरंजन है, वह गुरु लक्ष्मणकुमार ही है।

विशेष :– वेदे–वेदे अथवा विद। नाद–शब्दरूप वह अवस्था जब सृष्टि नहीं थी केवल निरंजन परमात्मा शब्दरूप में ही विराजमान था।

---

१ होइ २. अवर ३ थलि ४. जाग्यौ ५. निजवांणी ६. जाकै ७. सेले ८ सबदे ९ लखणे १०. अंजण ११. आछै १२. लषण।

(५१)

सप्त[1] पताले[2] भुंय अंतर अंतर राखिलो, म्हे अटला अटलूं[3]
अलाह अलेख अडाल अयोनी शंभू[4] पवन अधारी पिंडज लूं[5]
काया भीतर[6] माया आछै, माया भीतर दया आछै दया भीतर छाया
जिहिं के छाया भीतर[7] विंद फलूं[8]
पूरक पूर पूरले प्राणे[9], भूख नहीं अन[10] जीमत कौण

सातों पाताल (और समस्त) पृथ्वी (तथा) उसके अन्तर्वर्ती अर्थात् संसार को (जिसने अपने) अंतर में रखा है (वही मैं) चोरी आदि नीच कर्म करने वाले को (दण्ड देने से) नहीं टलता। (उसी) अल्लाह, अलेख, अडाल, अयोनि शंभू ने पवन के आधार रहने वाले (इस) शरीर को धारण किया है।

काया (शरीर) में माया का निवास है, माया में द्वैत–भाव है, द्वैत में अविद्या का निवास है (और उसी) अविद्या (और माया) से वेष्टित चैतन्य विम्ब (जीव भाव को) प्राप्त हो गया।

जो पवन को पूरक क्रिया से अपने भीतर पूर (पूर्ण कर) लेता है उसको फिर भूख नहीं लगती तब अन्न का उपभोग कौन करे अर्थात् योगी को क्षुधा नहीं सता सकती।

(५२)

मोह मंडप थाप थापले[11] राख[12] राखले[13] अधरा धरूं[14]
आदेश वेसूं[15] ते नरेसूं[16] ते नरा अपरं[17] पारूं[18]
रण[19] मध्ये से नर रहियों[20] ते नरा अडरा डरूं[21]
ज्ञान खडगूं[22] जथा हाथे[23], कोण[24], होयसी[25] हमारा रिपूं[26]?

(जो) मोह को मंडप स्थापित (कर रखा) है, उसे उखाड फेंक (और) रखने योग्य को रखले (और जो) धारण करने मे अति कठिन है उसको धारण कर। (जो इस प्रकार के) आदेश पर स्थिर है (वे मनुष्यों में) राजा है, उनकी गति की थाह नहीं, वे अपरम्पार हैं अर्थात् (वे) महिमान्वित हैं।

रणस्थल में वे ही मनुष्य रह सकते हैं जो भय से निडर होते हैं।

ज्ञान (रूपी) तलवार के हाथ मे होते हुवे, हमारा शत्रु कौन हो सकता है?

---

१. सपत २. पयाले ३. अटलौं ४. स्यंभू ५ लौं ६ भीतरि ७. भीतरि ८. फलो ९. पवण १०. अंन। ११. थापिले १२. राखि १३. राखिले १४. धरौं १५ वैसौं १६ नरेसौं १७ अपरम १८. परो १९. रन २०. रहिबा २१. डरौं २२. खडगुं २३ हाथैं २४ कौण २५ होइसी २६ रिपौं।

गुरु हीरा बिणजै लेह म लेहूँ[1], गुरुनै दोष[2] न देणा
पवणा पाणी जमी[3] मेहूँ[4], भार अठारै परवत रेहूं[5] सूरज जोति परै परे[6]
अेती[7] गुरु कै शरणै[8]
केती परली अरु जल बिम्बा नवरी नदी नवासी नाला सायर
अेती जरणा[9]
कोड़[10] निनाणवैं राजा भोगी, गुरु कै आखर कारण जोगी, माया
राणी राज तजीलो[11], गुरु भेंटिलो[12] जोग सझीलो पिंडा देख न झुरणा[13]
कर[14] कृपाणी[15] बेफायत रोंठो[16] जोय जोय जीव पिंडै निसरणा[17]
आदै पहलू[18] घड़ी अढाई स्वर्गे पहुँता हिरणी हिरणा[19]
सुरां पुना[20] तेतीसौं मेलो, जे[21] जीवंता मरणो[22]
के के जीव कुजीव कुधात कलोतर वाणी[23] बादीलो
हंकारीलो[24] बैभार घणा[25] ले मरणों
मनषा रे तैं[26] सूतै[27] सोयो[28] खुलै खोयो[29] जड़ पाहन[30] संसार[31]
विगोयो[32]
निरफल खोड़[33] भिरांति भूला आस किसी जा मरणों
वैसाई[34] अंध पड्यो गल[35] फंद[36] लियो गलबंध गुरु बरजंते
हेलै स्याम सुंदर कै
टोडै पारस दुस्तर तरणो
निश्चै छेह पड़ैलो पालो गोवल वास जु करणो
गोवलवास कमायले जीवड़ा सो स्वर्गापुर[37] लहणो

गुरु (ज्ञान रूपी) हीरों का व्यवसाय करते हैं, तुम चाहे, लो चाहे न लो (तुम यदि उन ज्ञान रूपी हीरों को गुरु से प्राप्त करने में असमर्थ रह जाओगे तो) गुरु को दोष मत देना।

अरे! पवन, पानी, पृथ्वी, बादल, अठारह भार वनस्पति, स्थिर रहने वाले पर्वत, सूर्य–ज्योति (और) उससे परे (और) उससे भी आगे (अतीत धाम) ये जितने भी हैं (ये सब) गुरु की शरणागत हैं (गुरु–नियंत्रित हैं)।

कितने ही ऊपर तक भरे नद, आकंठ भरी नवसौ नदियो (और) नवासी नालो को समुद्र अपने मे समा लेने की सामर्थ्य रखता है (वैसे ही समर्थ परमात्मा अपने मे संसार को समाने की सामर्थ्य रखता है)।

ननानवे कोटि विलासी राजाओ ने गुरु के मत्रवत् उपदेश से माया (रूपी) रानियों को (और) राज्य को छोड, योगी हो गये (एव) गुरु से साक्षात्कार कर (उन्होंने)

१ हो २. दोष ३. जिमी ४. मेहो ५. रहौं ६. परे ७. अेता ८. सरणौं ९. जरणौं १० कोडि ११ तजीलो १२. भेटीलो १३ झुरणा १४. कण १५ क्रिसांणी १६ साठो १७ नीसरणा १८. पहलौं १९. हिरणौं २०. पन्हैं २१. जो २२. मरणौं २३ बांणी २४ अहं २५ घणो २६ तें २७ सौंते २८ सोयो २९. खोयों ३०. पाहण ३१. सिसार ३२ बिगोयो ३३. खोडि ३४. वेसाही ३५ गलि ३६ फध ३७ सुरगापुर

योग को साधा (परंतु उन्होंने अपने शरीर के कोमलांगों को योग साधना के कारण क्षीण होते देख कर) विलाप नहीं किया (वे देहाध्यास से ऊचे उठ गये)।

देख–देख! (कृषि कर्म की भाति उपासना) कर (तथा) निष्प्रयोजन अकड मत, शरीर से जीव निकल जायेगा।

आदि युग में अच्छे कर्म करने से, अढाई घडी मे ही हरिण (तथा) हिरणी स्वर्ग को पहुंच गये थे।

यदि (कोई) जीवितावस्था में ही मर जाय (अहं का सर्वथा नाश करदे) तो (वह) पुण्यात्मा तेतीस (कोटि) देवताओं को पा जायेगा। कोई–कोई (ऐसे भी) वर्णसंकर, कुजीव, अप्रियभाषी, अतिशय जिद्दी (और) अभिमानी होते हैं वे (ऐसा करके) अधिकाधिक (पाप) भार को लेकर मरेंगे।

हे मनुष्य! तुमने (अज्ञान निशा मे) सोकर (जीवन के अमूल्य क्षणों को) मुक्तहस्त से खो दिया, जड–पाषाण (की तरह निष्क्रिय रह कर तुमने) संसार मे तुम्हारे जन्म को व्यर्थ ही खोया। (जो) भ्रांति में भूले रहे उनका मानव जीवन निष्फल रहा, (वह) आशा कैसी? जिससे मरना पडे?

गुरु के मना करने पर भी (तुमने) अंधे पुरुष की तरह जन्म–मरण रूप फंदे को अपने आप ही गले में डाल लिया।

श्यामसुंदर की कृपा के बिना इस संसार सागर से पारस पर बैठ कर भी कोई नहीं तर सकता। निश्चय ही तुझे वियोग से पाला पडेगा (क्योकि आखिर यह ससारं) प्रवास ही तो है। हे जीव! इस ससार के प्रवास को तुम अपने अच्छे कर्मों से सफल कर लो।

(५४)

अरुण[1] विवांणे, रै रवी भांणे, देव दिवांणे, विष्णु[2] पुराणे
विंया बांणे सूर उगाणे, विष्णु विवाणे कृष्ण[3] पुराणे, कांय झख्यो[4] तैं[5] आल
प्राणी[6] सुरनर तणी सवेरूं[7]
इंडो फूटो वेला वरती ताछै हुई वेर अवेरूं[8]
मेरे[9] परे[10] सो जोयण विंवा लोयल पुरुष भलो निजवाणी
वाकी[11] म्हारी एका[12] जोती मनसा सास विंवाणी
को आचारी आचारे लेणा, संजमे शीले[13] सहज पतीना तिहि[14]
आचारी नै चीन्हत कौण[15]
जाकी[16] सहजै चूकै[17] आवागवण[18]

अरे! अरुणोदय के समय, सूर्य का भान होते समय, देवमंत्री सूर्य के दीखने पर, विष्णु के पवित्र समय में, उषाकाल में, सूर्योदय के समय, विष्णु (तथा) श्रीकृष्ण का नाम

---

१. अरण २. विष्ण ३. धर्म ४. "रे" अधिक है ५. ते ६ पिराणी ७. सवेरो ८. अबेरों ९ मेर १०. परै ११. वांकी १२ एका १३ सीले १४. तिहिं १५ कौण १६ जिहिकी १७ चूके १८. आवागोंण।

लेने के समय, हे प्राणी। तूं (ऐसे) सुरनरों के समय क्यों व्यर्थालाप करता रहा?

(जब तेरा देहरूपी) अडा फूट जायगा (तब) समय हाथ से निकल जायेगा (और मानवतन पाने का) सुअवसर कुअवसर में परिणित हो जायेगा।

मेरे से परे (जो परमात्मा रूप) श्रेष्ठ पुरुष है, उसको देखना चाहिये (पर यह) दिव्य नेत्रों से देखा जा सकता है। उसकी (और) हमारी एक ही ज्योति है, मनसा (और) श्वास उसी (चैतन्य पुरुष) के अधीन है।

किस आचार्य से आचार की शिक्षा लेनी चाहिये? (उसी से जो) संयमशील हो (और) सहज प्रतीतिरूप हो, उस आचारी को कौन पहचानता है? (और जो उसको पहचान लेता है) उसकी सहज में ही आवागमन निवृत्त हो जाती है।

(५५)

रण[1] घटिये कै खोज फिरन्ता, सुण सेवन्ता खोज हस्ती को पायो
लूंकड़िये[2] को खोज फिरन्ता, सुण सेवन्ता खोज सुरह को[3] पायों[4]
मोथडियै कै[5] गूंढ़ खंणन्ता, सुण सेवन्ता लाधो थान सुथानो
रांघड़िये[6] को घाट घडंता, सुण सेवन्ता कंचन सोनो डायो
हस्ती चढ़तां गैंयर[7] गुड़न्ता सुणहीं सुणहां भूंकत[8] कायों

(हे) सेवनकर्ता! सुनो, खरगोश के पदचिह्नों पर चलते हुवे को (मैं तुम्हें) हाथी (जैसा) विशाल पद–चिह्न मिल गया अर्थात् तुम्हें खरगोश सदृश अल्प फलदायक देवों की उपासना करने वाले को मुझ गुरु के सत्योपदेश द्वारा ज्ञान रुपी हस्ती की प्राप्ति हो गई।

लो लोमडी की तलाश में था (लोमडी जैसे अनिश्चित पदों का अनुसरण करने वाला था) उसको (गुरु कृपा से) सुरभि (गौपद) मिल गया अर्थात् वृति का वाह्य भटकना बंद होकर सनातन सिद्धान्त रूपी गौ की प्राप्ति हो गई।

(हे) सेवनकर्त्ता! सुनो, तुम्हे निरस घुडमौथे की जडो को खोदते समय (अनायास ही मुझ गुरुरूपी) उत्तमोत्तम स्थान की उपलब्धि हुई अर्थात् अज्ञानवश भ्रान्तियों के व्यामोह में निरत तुझे मुझ गुरु द्वारा निर्देशित ज्ञान–पद की प्राप्ति हुई।

(हे) सेवनकर्ता! सुनो, (जैसे) रांग की वस्तु बनाने वाले को स्वर्ण मिल गया हो (वैसे ही तुम्हें –मिथ्या धारणाओं के संजोने वाले को, दैव योग से, (मुझ) सत्य धारणा रूप स्वर्ण हस्तगत हुआ है)। चलते हुवे हाथी को तथा उस पर चढे हुवे को, कुत्ती–कुत्तों के भौंकने से क्या होता है? अर्थात् उत्तम पुरुषों की शरणागति पाने पर भी यदि कोई उसे चिढाये तो उससे उस गुरुशरणागत पुरुष का क्या बिगड सकता है?

विशेष – श्मशानो मे भूत–पैशाचों की आराधना तथा जाप–स्मरण करने वाले को राजस्थानी में प्राय: "सेवन्ता" कहते हैं और "सेवना" सिद्ध हो जाने पर उसी की "स्याणा" संज्ञा हो जाती है।

---

१. रिण २ लौंकडिये कै ३ कौ ४. पायौ ५ कौ ६ रागडियै ७. गैंवर ८. भूसत।

(५६)

कुपात्र कूं दान जु दियो[1] जाणै रैण[2] अंधरी[3] चोर[4] जु[5] लियो
घोर जु लेकर भाखर चढ़ियों[6], कह जिवड़ा। तैं कैंनैं दियो?
दान सुपातें बीज[7] सुखेते, अमृत फूल फलीजै
काया कसोटी मन जोगूंटो[8], जरणा ढाकण दीजै
थोड़े माहिं थोड़े[9] रो दीजै, होते[10] नाह न कीजै
जोय जोय नाम विष्णु के बीजै[11] अनन्त गुणा[12] लिख[13] लीजै

कुपात्र मनुष्य को जो दान दिया गया है मानो (वह) अंधेरी रात्रि में चोर ने ही लिया। (फिर वह) चोर उस दान--वस्तु को लेकर पहाड पर चढ गया (जिसके पदचिह्नों का भी कोई पता नहीं लगता)। हे जीवात्मा! कहो! तुमने वह दान किसको दिया? अर्थात् चोर सदृश कुपात्र व्यक्ति को दिये हुए दान का तुम्हें क्या फल मिला?

सुपात्र को दिया हुआ दान और अच्छे खेत में बोया हुआ बीज ही अमृत तुल्य फल–फूल के रूप में फलित होता है।

शरीर को संयम रूपी "कछौटे" से कसकर (वश में) रखना चाहिये, मन को योग–युक्त कर संकल्प विकल्प रूप विकारों को शांत करना चाहिये (तथा उस पर योगानुभव की स्थिरता रूपी) "जरणा" ढक्कन लगानी चाहिये।

(तुम्हारे पास यदि कोई वस्तु) अल्प मात्रा मे है (तो उस के अनुपात से यथाशक्ति) थोडा ही (दान) दीजिये (परन्तु किसी वस्तु के) पास में होते हुवे भी नकारात्मक उत्तर न दीजिये।

(जो प्राणी अपने अनुभव में लाकर) विष्णु के नाम--स्मरण रूप बीज को (अपने हृदय स्थल में) बोता है (वह उसको निश्चय ही) अनन्त गुणा अधिक होकर मिलता है (ऐसा) निश्चय करना चाहिये।

(५७)

अति बल[14] दानो[15] सब[16] स्नानो[17] गऊ कोट[18] जे तीरथ[19] दानो[20]
बहुत करै आचारुं[21]
तेपण जोय जोय पार न पायो[22] भाग प्रापति[23] सारुं[24]
घट[25] ऊंधै[26] बरपत[27] बहु मेहा, नीर थयो पण[28] ठालूं[29]
को होयसी[30] राजा दुर्योधन[31] सो विष्णु[32] सभा मह लाणों[33]

---

१. दीयों २. रेणि ३. अंधारी ४. चोरे ५. इस प्रति में नहीं है ६. चढीयो ७. बिज ८. जोगोटो ६ थोडी १०. होतै ११. दीजै १२. गुणो १३. लिखि। १४. बलि १५. दानों १६ सबै १७. सीनानौं १८. कटि १६. तीरथे २०. दानों २१. आचारौं २२. पायो २३. परापति २४ सारों २५ घडै २६. ऊंधे २७ बरसत २८. पिण २६. ठालों ३०. होसी ३१. दुरजोधन ३२. कृष्ण ३३ लाणौं।

तिण[1] ही तो जोय जोय पार न पायो अधविच रहियों[2] ठालूं[3]
जपिया[4] तपिया पोह विन[5] खपिया, खप खप[6] गया इवाणी
तेऊ पार[7] पहूँचा नाहीं, ताकी[8] धोती रही अस्मानी[9]

(कोई) अति बलवान (है), सब (तीर्थों में) स्नान करने वाला (है), तीर्थों में करोड गऊओ को दान करने वाला है (और) यदि (कोई) बहुत (प्रकार के) आचारों को (भी) करने वाला है। (पर) देख! देख! वह भी (उस परमात्मा का) भेद नहीं जान सका (उसके पार को पाना) भाग्य प्राप्ति के अधीन है।

(जैसे) औंधे मुंह रखे हुवे घड़े पर बहुत वर्षा हुई (उस पर खूब) पानी पड़, लेकिन (वह) खाली ही रहा।

राजा दुर्योधन जैसा कौन होगा, जिसका (उसी की) सभा में विष्णु (श्रीकृष्ण) से मिलाप हुआ था। उसने भी तो (विष्णु को) देखा (पर उसके) पार को नहीं पा सका (वह उस विष्णु के) मध्य में रह कर भी (उसकी) वास्तविकता से खाली रह गया।

जप करने वाले (और) तप करने वाले बिना (सच्चे) मार्ग (की प्राप्ति के) नष्ट हो गये। (वे सब) नष्ट हो होकर वैसे ही चले गये।

वे भी (इस संसार से) पार नहीं जा सके जिनकी धोती आकाश में (अधर सूखती) रही।

विशेष— "आकाश मे धोती सूखना" अेक मुहावरा अथवा रूढ़ि है जो सिद्ध पुरुषों के सबंध में प्रयुक्त होती है। लोकश्रुति है कि श्याम पांडिया की धोती आकाश में सूखती थी।

(५८)

तउवा माण दुर्योधन[10] माण्या[11] अवर[12] भी माणत माणूं[13]
तउवा दान जू[14] कृष्णी[15] माया और भी फूलत दानो
तउवा जाण जू सहस्त्र[16] झूझ्या, और भी झूझत जाणो[17]
तउवा बाण जू सीता कारण लक्ष्मण[18] खैंच्या और भी खैंचत बाणों
जती तपी तक पीर ऋषीश्वर[19] तोल रह्या शैतानों[20]
तिण किण खैंच[21] न सके[22] शंभू तणी कमाणों[23]
तेऊ पार[24] पहूँता नाहीं, ते[25] कीयो आपो भांणो
तेऊ पार[26] पहूंता नाही ताकी धोती रही अस्माणों
बारां काजै हरकत[27] आई, अधविच मांड्यो थांणो
नारसिंह[28] नर न राज नरवो, सुराज सुरवो, नरां नरपति[29]

---

१. तिनहूं २. रहिया ३. ठालो ४. जपीया तपीया ५ बिण ६ खपि खपि ७ पारि ८ जाकी ९. असमाणी १०. दुरजोधन ११. मांणां १२. ओवर १३ माणौं १४. जु १५ विष्णी १६. सहंसर १७ जाणौं १८. लछमण १९ रषेसर २०. सहताणों २१. खैंचि २२ सके २३ कबाणो २४. पारि २५ तहा २६. पारि २७. हरकति २८. नारसिंघ २९ नरपती।

सुरां सुरपति[1] ज्ञान[2] नरिन्दो यहुगुण चिन्दो

पहलू पहलादा आप पतलियो दूजा काजै काम विटलियो,

खेत मुक्त ले पंच किरोड़ी सो पहलादा गुरु की याचा यहियो

ताका[3] शिखर[4] अपारुं[5]

ताका तो वैकुंठे यासो रतन कायादे सौंप्या छलत भंडारुं[6]

तेऊ[7] तो उर[8] यारे थाणों[9] अई अमाणो[10] तत समाणो[11] बहु प्रमाणो[12]

पार[13] पहूँचण हारा

लंका के नर शूर[14] संग्रामे, घणा विरांमे काले काने-

मला तिकंट पहलै झूझ्या यावर झंट पड़ै ताल समंदा

पारी, तेऊ रहीया लंक दवारी[15], खेत मुक्त[16] ले सात करोड़ी

परशुराम[17] के हुकम जे[18] मूवा, से तो कृष्ण[19] पियारा

ताको तो वैकुंठे यासो रतन कायादे सौंप्या छलत भंडारु

तेऊ तो उरवारे थाणो, अई अमाणो पार पहूंचण हारा

काफर खानो बुद्धि मराड़ो[20], खेत मुक्त ले नव करोड़ी राव

युधिष्ठिर[21] से तो कृष्ण[22] पियारा

ताको तो वैकुंठे यासो रतन कायादे सौंप्या छलत भंडारुं

तेऊ तो उरवारे थाणो अई अमाणो यहु प्रमाणो पार पहूँचण हारा

यारा काजै हरकत आई, तातैं[23] यहुत भई कसयारुं

(इस संसार में) दुर्योधन ने जैसा मान का उपयोग किया अर्थात् मान पाया था, क्या वैसा सम्मान किसी दूसरे ने पाया? जिस प्रकार से दानव लोग श्री कृष्ण की माया से ही फले–फूले पर क्या कोई दानव बिना श्रीकृष्ण की माया के दूसरे उपाय से अपने भौतिक साधनों में उन्नत हो सके?

जिस प्रकार सहस्त्रबाहु ने (जमदग्नि के महान सामर्थ्य को) जान कर भी (उस के साथ) युद्ध किया (क्या) किसी और ने भी (इस प्रकार) जानबूझ कर वैसा युद्ध किया?

जैसा बाण सीता के कारण लक्ष्मण ने रणांगण में (राम–रावण युद्ध) में ताना था, क्या वैसा बाण कोई दूसरा है, जिसने खींचा हो?

(सीता स्वयंवर में बड़े–बड़े) यति, तपस्वी पर्यन्त पीर (सिद्ध) (और) ऋषीश्वर (सभी) अपनी–अपनी शक्ति का परीक्षण करके रह गये (परन्तु) उनमे से (कोई भी) भगवान शंकर के धनुष को नहीं खींच सका।

---

१. सुरपती २. नरां इस प्रति के अर्थ में "नरां" की जगह "ज्ञान" लिखा है। ३. तिहिंका ४. सिपर ५. अपारों ६. भंडारों ७. तेऊ ८. उरवारे ९. थाणों १०. अमाणौ ११. इस प्रति में "तत समाणो" पाठ नहीं है। १२. परवाणों १३. पारि १४. सुर १५. छारी १६. मुकत १७. परसराम १८. ज १९. विसन। २०. विराड्यो २१. दहूठल २२. विष्ण (विष्न) २३. ताछैं।

वे (भवसागर) से पार नहीं लंघ सके, जिन्होंने अपने ही मन की की। वे (भी इस भवसागर से) पार नहीं जा सके जिनकी धोती (अपने योग बल से) आकाश में अधर सूखती थी।

(हे भक्तजनों) बारह कोटि जीवों के उद्धार की, जब मेरे मन में चेष्टा स्फुरित हुई, तभी मैंने "अध बिच" (निवृति और प्रवृति के बीच?) अपना स्थान स्थापित किया (विशेष तात्पर्य यह भी है कि अभी अवतार लेने का कोई खास निमित तो नहीं था परन्तु नृसिंहावतार के समय भक्त प्रह्लाद को ऐसा वचन दिया हुआ था कि "तेरी प्रार्थना पर कालान्तर में अवतरित होकर बारह कोटि जीवों का उद्धार करूंगा" उसी अर्थ अवतरित हुआ हूं। अधबिच मांड्यो थाणों का साम्प्रदायिक यही अभिप्राय लिया जाता है।)

नृसिंहावतार न मनुष्य (जैसा ही था और) न (ही) नराधिप, (वह) न देवता ही (और) न (वह) देवराज इन्द्र ही था (वैसे वह) नरों में नराधिप था (और) देवताओं में सुरराज इन्द्र था। ज्ञानियों को (वह नृसिंहावतार) ज्ञान–नरेन्द्र (और) बहुत गुणों से युक्त दीखा। उसने पहले प्रह्लाद की (भक्ति–परीक्षा) ली (तत्पश्चात वह अवतरित हुआ) (उस समय) लोग अपने धर्म–कर्म से विचलित हो चले थे।

वह प्रह्लाद, गुरु के आदेश में चला (अत. उसने) जीवों को देहात्मिका बुद्धि से मुक्त कर पांच करोड प्राणियों को मोक्ष का अधिकारी बनाया। उस (प्रह्लाद) की उच्च स्थिति (शिखर को कोई नहीं पा सकता क्योंकि वह) सीमा से पार–अपार है।

उनका तो वैकुण्ठ में वास हुआ (परमात्मा ने उसको) दिव्य देह (रत्न काया तथा) अनन्त निधियों से भरे भडार प्रदान किये। उनका तो (उच्च) स्थान प्रत्यक्ष ही प्रकट है (अत.) हे पार (भवसागर पार) पहुंचने वालो, तत्व मे समाहित हो जाओ। (संसार महोदधि से पार जाने वालो को भक्तों के) बहुत से (जीवन) प्रमाणों की (आवश्यकता है।)

लका के नर–सुर (अथवा शूरवीर नरों के) संग्राम में (कई राक्षस) काले, काने (एकाक्षी) (कुछ भले भी और) त्रिशिरा (तिकंठ) आदि बहुत से राक्षस मृत्यु को प्राप्त हुवे, (उन) विकराल राक्षसों मे प्रथम मेघनाद ने महावीर हनुमान के साथ मल्लयुद्ध किया जिनकी (रोष भरी) ताल ठोकने की आवाज समुद्र पर्यन्त सुनाई देती थी, वे (राक्षस) लका के द्वार पर ही खेत मुक्त (रण भूमि में खेत) रहे जो भगवान परशुराम की आज्ञा में चले (वे मरने पर अपने साथ) सात करोड प्राणियों को स्वर्ग लेकर पहुंचे (क्योकि) वे तो श्रीकृष्ण के अति ही प्रिय भक्त थे। उनका तो वैकुण्ठ में निवास हुआ (परमात्मा ने उन्हे) दिव्य देह देकर (और) अनन्त निधि के भंडार सौंपे। हे मोक्ष के अभिलाषियो, उनका तो उच्च स्थान प्रत्यक्ष ही प्रकट है।

हे विधर्मी सरदारों (एव) अमित बुद्धि वालो, सत्यपरायण राव युधिष्ठिर ने नव करोड प्राणियों को मुक्ति का अधिकारी बनाया (क्योंकि) वे तो श्रीकृष्ण के प्रिय (भक्त) थे।

उनका तो वैकुण्ठ में वास हुआ (भगवान ने उन अपने भक्तों को) रत्नों

(जैसी) दिव्य देह देकर (उन्हें) अतुल भोग्य सामग्री के आपूरित भडार सौंपे।

हे भवसागर से पार जाने वाले मुमुक्षुओं ! उनका महिमान्वित स्थान (सबके सामने) प्रत्यक्ष हैं।

(मुझे) बारह कोटि जीवों के उद्धार (करने) का हर्ष हुआ इसलिये (मैं अवतरित हुआ तब मुझ से) बहुतों को हानि उठानी पडी अर्थात् पाखडियों को मुझसे हानि हुई।

विशेष :– सहस्र (सहस्रार्जुन) – यह महाराज कृतवीर्य का पुत्र था। इसकी राजधानी माहिष्मती थी। एक बार सहस्रार्जुन ने जमदग्नि के आश्रम में उपस्थित होकर ऋषि की अनुपस्थिति में उनकी कानधेनु को अपने यहां ले जाने का प्रयत्न किया था। जब ऋषि के पुत्र श्री परशुराम को यह समाचार मिला तो उन्होंने सहस्रार्जुन से युद्ध किया और वध कर डाला।

परशुराम के मार्ग मूवा – यह जमातियों को लक्ष्य कर के कहा गया है क्योंकि परशुराम के नाम पर नागा साधुओं की जमात चलती है।

(५६)

पढ[1] कागल वेदों शास्त्रों[2] शब्दों[3] भूला[4] भूले झंख्या आलूं[5]
अहनिश[6] आव घटंती जावै, तेरा सास सवी[7] कसवारूं[8]
कइया घंदा कइया[9] सूरूं[10], कइया काल बजावत तूरूं[11]
उर्द्धक घंदा निरधक सूरूं[12] सुन घट ताल बजावत तूरूं
ताथें बहुत भई कसवारूं
रक्तस[13] विंदु[14] परहस निंदु[15] आप सहै तेपण बूझै नही गवारूं[16]

कागज पर अंकित वेद–शास्त्रों के शब्दों को जो बिना उनका आशय समझे कथन करता है तो उसने व्यर्थ ही भ्रम में पडकर ऐसी बकवास की है। रात–दिन के क्रम से आयु घटती जाती है, तेरे सभी श्वासों की हानि हो रही है। तेरे कई एक (श्वास तो) चंद्र नाडी के द्वारा (और) कई एक (श्वास) सूर्य नाडी के द्वारा (मानो) काल की तुरीं बजाते (हुवे चले जा रहे) हैं।

चंद्र नाडी से तो श्वास ऊपर को (और) सूर्य नाडी से नीचे को श्वास जाते हैं, (ये श्वास) खाली घट में (केवल) तुरीं की तरह बजते हैं इसलिये (तेरी) बहुत हानि हुई है।

(हे) रक्त के बिन्दु (मनुष्य!) (तू) पर निन्दा करता है (और जिसके परिणाम स्वरूप तू) अपने पर (उसके प्रतिफल कष्ट को) सहता है (लेकिन) तब भी गिंवार (अपने उद्धार का मार्ग सद्गुरु को) नहीं पूछता।

---

१. पढि २. शास्त्र ३. शब्दूं ४. भूलाभूली ५. आलौं ६. अहनिस ७. सबै ८. कसवारों ९. कईया १०. सूरौं ११. तूरौं १२. सूरौं १३ रकत १४. बिंदो १५. निंदों १६ इस प्रति में सबद की विषम पंक्ति इस प्रकार है–"आपस हेतू पणि बूझै नाहीं गवारौं।"

एक दुख लक्ष्मण[1] बंधू हइयों[2]
एक दुख बूढे[3] घर[4] तरणी अइयों
एक[5] दुख बालक की मा मुइयों
एक दुख ओछै को जमवारूं
एक दुख टूटै से[6] व्यवहारूं
तेरे लक्षणै[7] अंत न पारूं[8]
सहै न शक्ति[9] भारूं[10]
कै[11] तैं ! परशुराम का धनुष जे भइयों
कै तैं दाव कुदावन जाण्यो भइयों
लक्ष्मण[12] बाण जे दहशिर[13] हइयों
अेतो झूझ हमे[14] नहीं जाणो[15]
जे[16] कोई जाणे[17] हमारा नाऊं
तो लक्ष्मण ले बैकुंठे जाऊं
तो बिन ऊभा यह परधानो
तो बिन सूना त्रिभुवन थानों
कहा हुवो[18] जे लंका लइयों
कहा हुवो जे रावण हइयों
कहा हुवो जे सीता अइयों
कहा करूं[19] गुणवंतो भइयों
खल[20] के[21] साटै हीरा गइयों[22]

एक दुख (मुझे) लक्ष्मण (जैसे) प्रिय भाई के (युद्धक्षेत्र मे) आहत हो जाने से हुआ है। एक दुख वृद्धावस्था प्राप्त पुरुष को (उसके) घर (पत्नी रूप में) तरुणी (स्त्री) के आने से होता है।

एक दुख है (जो) छोटे बालक की मां के (असमय में) मर जाने से (उस अबोध बालक को) होता है। (उसी प्रकार) नीच कुल में जन्म लेना (भी) एक महान् दुख है।

(इन सांसारिक दु खो में) एक दु.ख किसी के साथ चले आ रहे व्यवहार के टूट जाने से होता है (अथवा संसार में एक दुख निर्धन व्यक्ति के साथ लेन-देन का व्यवहार करने और फिर उसके टूट जाने से होता है क्योंकि वापस मांगने पर वह निर्धन व्यक्ति उसकी ली हुई राशि को नहीं लौटा सकता है) (परन्तु) हे लक्ष्मण! (तू तो इतने अधिक गुण वाला है कि) तेरे (सद्) गुणों का न तो कोई अंत है (और) न (कोई) पार अर्थात् तू तो अपरिमित गुण वाला है। (हे लक्ष्मण तू फिर भी) शक्ति के (जबर्दस्त) आघात को सहन न कर सका।

---

१. लषमण २. हइयो ३. बूढे ४. घरि ५. इक ६. सौ ७. लक्षणे ८. पारौं ९ सक्ति १०. भारौं ११. कैते १२. लषमणा १३. दहसिर १४. हमै १५. जाण्यौं १६ जो १७ जाणै १८. हुवा १९. करौं २०. खलि २१ कै २२. गयो।

क्या तेरे पास (सीता स्वयवर वाले धनुष जैसा) परशुराम का (जीर्णशीर्ण) धनुष था (जिससे तू शत्रु के शक्ति प्रहार को न रोक सका) हे भैया! या तू (शत्रु के) षडयंत्रपूर्ण (शक्तिबाण के) घातक प्रहार को न समझ सका?

(जिस) लक्ष्मण के (अमोघ) बाण से दशानन रावण भी मारा जा सकता था (हे लक्ष्मण! तुम्हारे बारे में) मैं ऐसा नहीं समझ रहा था कि इस प्रकार से तुम (शत्रु की शक्ति के सामने रणक्षेत्र में) जूझ जाओगे?

(हे) लक्ष्मण! यदि कोई (व्यक्ति) हमारे नाम का माहात्म्य जानता है तो उसको मैं संसारी बंधन से मुक्त कर वैकुंठ में ले जा सकता हू (ऐसा सब सामर्थ्य होने पर भी हे लक्ष्मण) तेरे बिना (युद्ध के) मार्ग में (तत्पर ये) प्रधान (सेनापति मेरे लिये सर्वथा व्यर्थ हैं। मेरे लिये) तेरे विना त्रिभुवन के (समस्त) स्थान शून्य हैं।

क्या हो गया यदि (मैंने तेरे बिना) लंका विजय करली तो? (और) क्या हो गया यदि रावण को भी मैंने तेरे बिना मार लिया तो?

क्या हो गया यदि (तेरे बिना) सीता (भी घर) आ गई तो? हे गुणवान् भाई! (लक्ष्मण अब मैं तेरे विना) क्या करूं? (तेरे बिना मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि) खलि के बदले में (तुम्हारे जैसा अमूल्य) हीरा चला गया अर्थात् तेरे अतिरिक्त सब की सब उपलब्ध वस्तुएं खलि के समान नगण्य हैं।

विशेष— भगवान् परशुराम ने सीता स्वयंवर के समय जनकपुरी मे राम–लक्ष्मण को अपना धनुष भी उन्हें चढ़ाने दिया था। वह धनुष संधान करते ही टूट गया था।

(६१)

कैतैं कारण किरिया[1] चूक्यो[2] कै तैं सूरज सामो[3] थूक्यो
कै तैं ऊभै कांसा मांज्या[4] कै तैं छान[5] तिणूका खैंच्या[6]
कै तैं ब्राह्मण[7] नवल[8] वहोड्या, कै तैं आवा[9] कोरंभ चोर्‌या
कै तैं वाड़ी का वनफल तोड्या, कै तैं जोगी का खप्पर फोड्या
कै तैं ब्राह्मण[10] का तागा तोड्या, कै तैं वैर विरोध धन लोड्या
कै तैं सुवा[11] गाय[12] का वच्छ[13] बिछोड्या
कै तैं धरती पिवती गऊ विडारी, कै तैं हरी पराई नारी
कै तैं सगा सहोदर मार्‌या, कै तैं तिरिया शिर खड़ग उभार्‌या[14]
कै तैं फिरते[15] दातन[16] कीयो, कै तैं रण में जाय दों[17] दीयो
किसे सरापे लक्ष्मण हइयों

(हे लक्ष्मण) क्या, तू (कभी) करने योग्य क्रिया के करने मे चूक गया था? क्या तुमने कभी (भगवान्) सूर्य के सामने थूका था? क्या तुमने (उच्छिष्ट) "कांसी"

---

१ क्रिया २. चूक्यौ ३. साम्हों ४. माज्या ५. छानि ६. खांच्या ७ बांम्हण ८. न्यौंति ९. आवै १०. बांम्हण ११. सूवा १२. गाइका १३. वछ १४. उभारा १५. फिरतें १६. दांतण १७. इस प्रति में इतना अधिक है "कै तै वाटि कूट धन लीयों"।

के बर्तन खडे--खडे माजे थे? क्या तुमने (कभी किसी के) छप्पर के तिनके खींचे थे?

क्या तुमने (कभी किसी) ब्राह्मण को (भोजनार्थ) आमन्त्रित कर (उसे बिना दान दक्षिणा दिये भूखे ही) वापिस लौटा दिया था? क्या तुमने (कभी किसी) कुम्हार के बर्तनो की भट्टी से घडा (आदि) बर्तन चुराया था?

क्या तुमने (कभी किसी) माली की बाडी से (बिना उसकी आज्ञा प्राप्त किये) हरे फल तोडे थे? क्या तुमने (कभी किसी) वीतराग योगी के भिक्षा पात्र को फोड डाला था? क्या तुमने (कभी किसी) ब्राह्मण के (यज्ञोपवीत) सूत्र को तोडा था? क्या तुमने (कभी किसी से) विरोध की भावना रख कर (उसके) धन का अपहरण किया था?

क्या तुमने कभी सद्य--प्रसूता गाय से (उसके) बछडे को अलग किया था? क्या तुमने कभी घास चरती (एव) पानी पीती हुई गाय को (भयभीत करके) चौंकाया था? क्या तुमने (कभी) पर--नारी का अपहरण (करने जैसा घोर पाप) किया था? क्या तुमने सगे भाई की हत्या की थी? क्या तुमने (कभी) स्त्री (जाति) पर (घातक प्रहार के लिये) तलवार झोंक दी थी? क्या तुमने रास्ते चलते दांतुन किया था? हे लक्ष्मण । (बताओ इनमें से) कौन से (अपराध) शाप के कारण (मेघनाद के प्रहार से) तुम आहत हुवे?

(६२)

ना मैं कारण किरिया चूक्यो[1] ना मैं सूरज साम्हो[2] थूक्यो[3]
ना मैं ऊभै कांसा मांज्या, ना मैं छान[4] तिणूका[5] खैंच्या[6]
ना मैं ब्राह्मण[7] नवत[8] बहोड्या[9], ना मैं आवा[10] कोरंभ चोर्‌या
ना मैं बाड़ी का बनफल तोड्या[11], ना मैं जोगी का खप्पर फोड्या
ना मैं ब्राह्मण[12] का तागा[13] तोड्या, ना मैं वैर विरोध धन लोड्या[14]
ना मैं सुवा[15] गाय[16] का बच्छ[17] बिछोड्या
ना मैं चरती पिवती[18] गऊ विडारी, ना मैं हरी[19] पराई नारी
ना मैं सगा सहोदर मार्‌या, ना मैं तिरिया[20] शिर[21] खड्ग उभार्‌या
ना मैं फिरते[22] दांतन[23] कीयो, ना मैं रण[24] में जाय[25] दों[26] दीयों
ना मैं थाट कूट[27] धन लीयों, अक जू[28] औगुण रामैं[29] कीयों
अणहोतो[30] मिरघो[31] मारण गइयों[32] आज्ञा[33] लोप जु तुम्हरी हुइयों
दूजो औगुण रामैं[34] कीयो, एको[35] दोष[36] अदोषा[37] दीयों
वनखंड में जद साथर सोइयों, जद को दोष तद[38] को हुइयों

---

१. चूक्यौ २. साम्हो ३. थूक्यौ ४. छानि ५ तिनूंका ६. खांच्या ७. बांभण ८. न्यौति ६. बहोर्‌या १०. आवे ११ तौड्या १२ बांभण १३. धागा १४. लोड्या १५. सूवा १६ गाइका १७. वछ १८. पीवती १६. हडी २०. त्रिया २१ सिरि २२. फिरतै २३. दांतण २४. रन २५ जाइ २६. दौं २७. कूटि २८. जु २६. रामें ३०. अणहूंतौ ३१ मृगो ३२. गयों ३३. इस प्रति में "आज्ञा...हुइयों" पाठ नहीं है। ३४. रामहिं ३५ अेकजु ३६ दोस ३७. अदोस्यां ३८. तदोको।

मैं न (तो कभी किसी) करने योग्य कर्म से च्युत हुआ (और) न ही मैंने (कभी) भगवान भास्कर के ही सामने थूका था।

मैंने न (कभी) खडे–खडे ही कांसी के बर्तन मांजे (और) न मैंने (कभी किसी के) छप्पर के ही तिनकों को खींचा।

न मैंने (कभी किसी) आमंत्रित ब्राह्मणों को ही निरादरपूर्वक वापस लौटाया (और) न मैंने कभी कुम्हार की न्हाई (भट्टी) से घडा (आदि बर्तन ही) चुराया।

न (ही) मैंने (कभी किसी) माली की वाटिका से बिना उसकी आज्ञा के हरे फल ही तोड़े (तथा) न मैंने कभी किसी योगी के भिक्षा पात्र को ही तोडा।

न मैंने (किसी) ब्राह्मण का (यज्ञोपवीत) सूत्र ही खंडित किया (और) न मैंने (कभी किसी से) विरोध कर (उसके) धन का ही अपहरण किया।

न मैंने सद्य प्रसूता गाय के बछडे को ही उससे अलग किया (और) न (ही) मैंने भूसा चरती हुई (और) पानी पीती हुई गाय को ही (कभी) चौंकाया।

न मैंने परस्त्री का अपहरण करने जैसा दुष्कर्म ही किया। न (ही) मैंने सगे भाई की हत्या की (और) न ही मैंने स्त्री के सिर पर तलवार का ही वार किया।

न मैंने चलते फिरते (असभ्य ढंग से कभी) दांतुन ही किया, न मैंने (कभी) जंगल मे जाकर अग्नि ही लगाई। न (ही) मैंने किसी पथिक को मार–पीट कर उसका धन ही छीना। हे राम ! मैंने (केवल) एक ही अवगुण का काम किया जब आप मायावी मृग को मारने गये थे उस समय मुझ से आपकी आज्ञा का लोप हुआ। (श्री राम लक्ष्मण को सीताजी की रक्षा के लिये कुटी पर ही रहने को कह गये थे) वह भी इसलिये कि मुझ अदोषी पर सीताजी ने दोषारोपण किया, तब।

दूसरा अवगुण जो मैंने किया वह यह था कि अेक बार बनवास में मैं आपके आसन पर लेट गया था, जब–तब यही दो दोष मुझ से हुअे।

(६३)

आतर पातर राही रुक्मन[१], मेल्हा[२] मंदिर भोयों
गढ सोवना तेपंण[३] मेल्हा[४], रहा[५] छडासी जोयों
रात[६] पड़ंता पाळा भी जाग्या, दिवस[७] तपंता सूरूं[८]
उन्हा[९] ठाढा[१०] पवना[११] भी जाग्या, घण बरसंता नीरूं[१२]
दुनी तणा ओचाट भी जाग्या, के के नुगरा[१३] देता गाल[१४] गहीरूं[१५]
जिहिं तन ऊंना ओढण ओढा[१६], तिहिं[१७] ओढंता चीरूं
जा[१८] हाथे जपमाली जपां[१९], तहां[२०] जपंता हीरूं[२१]

---

१. रुकमणी २. मेल्ह्या ३ तेपणि ४. मेल्ह्या ५. रह्या ६ राति ७. द्योस ८. सूरौं ९ ऊन्हां १०. ठंढा ११ पवणा १२. नीरौं १३. निगुरा १४. गालि १५. गहीरौं १६. इस प्रति में "जिहिंतन भगवां वसत्र ओढां" पाठ है। १७. जहां १८. जहां १९. जंपां २०. जहां २१ हीरौं।

यारा काजै पड़ी[1] विछोहो, संभल संभल[2] झूरूं[3]
राघो सीता हनवत पाखो, कौन[4] बंधावत धीरूं[5]
मागर मणीयां[6] काच[7] कथीरूं हीरस हीरा हीरूं
विखा पटंतर पड़ता आया[8], पूरस पूरा पूरूं
जे रिण राहे सूर गहीजै, तो सूरस सूरा सूरूं
दुखिया है जे[9] सुखिया होयसै, करसैं राज गहीरूं
महा अंगीठी विरखा ओल्हो[10], जेठ न[11] ठंडा नीरूं
पलंग न पोढ़ण सेज न सोवण, कंठ रुळन्ता हीरूं
इतना[12] मोह न मानै शंभू[13], तहीं तहीं सू[14] सीरूं[15]
घोडा घोली वालगुदाई, श्रीराम का भाई गुरु की वाचा वहियों
राघो सीता हनवत पाखो, दुख सुख कांसुं[16] कहियों

राज रानी रुक्मणीजी को दास-दासियों सहित इस संसार रूपी मंदिर में भेजा उन्हें स्वर्ण जटित सिंहासन पर बैठने वाले गढपति के यहां भेजा, परंतु उन्हे भी इस संसार से अकेले जाना पड़ा।

रात्रि के पडते ही पाला पडने लगता है (और) दिन में सूर्य (अपनी) प्रखर किरणों से तपता है। पनव की शीतोष्ण लहरें भी चलती हैं (और) बादल बहुत सारा पानी वरसाते हैं। पानी के बरसने से संसार के लोग खेती करने की एक विशेष चिंता से जाग पडते हैं (किंतु) कतिपय नुगरे तब भी नहीं जागते।

जिस शरीर पर गर्म वस्त्र ओढते हैं उसी (शरीर पर) मुलायम चीर ओढते थे। जिन हाथों से जपने की माला जपते हैं, (उन्हीं हाथों से) हीरों की माला जपते थे। (किन्तु इन सब वस्तुओ से) बारह कोटि जीवों के उद्धार करने, अवतार लेने के कारण वियोग हुआ (उनकी) रह-रह कर याद आती है। राघव, सीता (और) हनुमान के बिना धैर्य कौन बंधावै? हीरे तो हीरे ही होते हैं (और) मागरमणि, काच (तथा) कथीर (हीरो की) बराबरी नहीं कर सकते।

कष्ट का पटाक्षेप तो (जन्म लेने वाले) पूर्ण पुरुषों पर भी होता है। जिस प्रकार युद्ध मार्ग मे सूर्य जैसा शूरवीर भी ग्रसित होता है।

(जो) दु:खी हैं (वे गुरु के उपदेश से) सुखी होगे (वे आत्मज्ञान रूपी) गंभीर राज्य प्राप्त करेंगे। (किंतु अग्नि की) महा अंगीठी को (शीतल करने वाली) वर्षा होने पर भी जेठ महीने को ठंडा नहीं कर सकती अर्थात् जो गुरु-मुखी नहीं हैं वे ज्ञानवारि से भी शीतल नहीं हो सकते।

जो पलग पर तथा सासारिक भोग रूपी सुख शैया पर शयन नहीं करते हैं

---

१. पड्यौ २. सांभलि सांभलि ३. झूरो ४. कोण ५ घीरौं ६. मणियां ७. कच ८ आयो ९ वैंजे १०. ओलो ११. ज १२ अतरा १३. स्यभू १४. सौं १५ सौरों १६. कासौं।

(और) कंठ में पहनने के हीरों की भी परवाह नहीं करते, जो इतनी बातों से मोह नहीं करते हैं परमात्मा उन्हीं से अपना संबंध जोड़ता है।

घोड़ा चोली, बालगुदाई (और श्रीराम के) भाई (लक्ष्मण) गुरु की आज्ञा में चले, (किन्तु अपत्र) सुख दुख श्रीराम सीता (और) हनुमान के सिवाय किसको कहा जाय।

(६४)

मैंकर भूला मांड पिराणी काचै कंध अगाजूं[1]
काचा कंध गलेगल[2] जायसी[3], बीखर[4] जैला[5] राजों
गड़बड़ गाजा कांय[6] वियाजा, कण विण कूकस कांय[7] लेणा[8],
कांय बोलो मुख ताजों
मरमी वादी अति अहंकारी, लायत यारी[9] पशुवां[10] पड़े[11] मरान्ति
जीव विणासै लाहै कारणै[12], लोम सवारथ खायवा[13] खाज अखाजों
जो अतिकाले[14] ले जमकाले, तेपण[15] खी जिहि का लंका गढ था राजों
बिन[16] हस्ति पाखर बिन गज गुड़ियों, बिन ढोला[17] डूमा[18] लाकड़ियों
जाकै[19] परसण बाजा बाजै[20]
सो अपरंपर काय न जंप्यौ[21], हिन्दू मुसलमानो डर[22] डर जीव कै काजै
राया रंका राजा[23] रावां, रावत राजा खाना खोजां
मीरां मुलका घंघ फकीरां, घंघा गुरवां सुर नर देयां
तिमर जू[24] लंगा, आयसां[25] साह पुरोहितां[26]
मिश्र[27] ही व्यासां[28] रूखां बिरखां, आव घटन्ती अतरा[29]
माहे कूण विशेषो?[30] मरणत अेको मार्घो
पशु[31] मुकेरूं[32] लहै न फेरूं[33] कहै ज मरूं[34] सब जग केरूं[35]
साचै सै हर करै घणेरूं, रिण छाणै ज्यूं बीखर जैला
तातै मेरूं न तेरूं[36] विसर[37] गया ते माधूं[38]
रक्तूं[39] नातूं[40] सेतूं[41] धातूं[42] कुमलावै[43] ज्यूं सागूं[44]
जीवर पिंड बिछोवा[45] होयसी, ता दिन दाम दुगाणी[46]
आढण[47] पं कीरती[48] बिरावो सीझै[49] नाहीं ओ पिंडकाम न[50]काजूं[51]
आयत काया ले आयो थो, जातैं सूको जागो
आवत खिण एक[52] लाई थी, पर[53] जाते खिणी न लागो[54]
भाग प्रापति[55] कर्मा[56] रेखां, दरगै जयला[57] जयला[58] माधों

---

१. अगाजौ २. गलेगलि ३. जासी ४. बीसरि ५. जैंला ६. कांई ७.कायो ८. लेणां ९ पारा १०. पुसवा ११. पड्या १२. कारणि १३. खारवा १४. अंति १५. तेपणि १६ विण १७. डूमां १८. ढोलां १९ जिहिंकै २०. बाजत २१. जपा २२. डरिडरि २३ राणा २४. इस प्रति में "जू" नहीं है। २५ आइसां जाइसां २६ प्रोहितां २७ मिसरा २८. वियासां २९. अतरां ३०. विसेपू ३१ पसू ३२. मुकेरों ३३. फेरों ३४. ज मेरों ३५. केरो ३६. तेरों ३७. विसरि ३८. मार्घो ३९. रगतों ४०. नातों ४१ सेतों ४२. धातों ४३. कुमलावै ४४. सागों ४५ बिछोडों ४६. दुग्गनी ४७ आंडन ४८ कोरति ४९. सीझत ५०. कामनि ५१ काजौं ५२. इक ५३ पण ५४ लागौं ५५ परापति ५६. करमा ५७. जौला ५८. जंवला

विरखे[1] पान झड़ेझड़[2] जायला[3], ते पर[4] तई न लागूं[5]
सेतूं दगधूं कवलज कलियों, कुमलावै ज्यूं शागूं
ऋतु[6] वशंती[7] आई, और भलेरा[8] शागूं[9]
भूला तेण गया रे प्राणी, तिहि का[10] खोज न माघूं[11]
विष्णु[12] विष्णु भण लई न सोई सुर नर ब्रह्म[13] को न गाई[14]
तातैं[15] जवर विनड़रेसी भाई, वारा बसंतै कीवी न कमाई
जवर तणा जमदूत दुहैला, तातै तेरी कहा[16] न बसाई

हे प्राणी, तू मत्सर को अपना कर (सच्चाई) को भूल गया है, (तभी तो तू) (इस) कच्चे शरीर से (अभिमान पूर्ण) व्यर्थ की गर्जन करता है। (यह) कच्चा शरीर (एक दिन) गल कर नष्ट हो जायेगा (और) राज्य भी (जिसका तुझे अभिमान है) (एक दिन वह भी) नष्ट हो जायेगा।

(तब देहाभिमान की यह) व्यर्थ गर्जन–तर्जन कैसी? अन्न कणों के बिना व्यर्थ मे घास को क्यो अपनाना ? मुह से ऐसे कठोर शब्द क्यो निकाले जायं?

भ्रम के वशीभूत हुआ (प्राणी) वादविवाद (और) अत्यधिक अभिमान करता है। वह पशु सदृश होकर, भ्रान्तिवश अपने स्वार्थ से (बिना किसी अपराध के) जीवों को मारता है (और वह) जिह्वा–लोलुपता के वश (ही) अभक्ष्य भोजन को करता है।

जो अति ही अनिष्टकारी थे उनको भी यमराज ने पकड लिया, वे भी नष्ट हो गये जिनका अजय दुर्ग लंका पर राज्य था। (वे) सुसज्जित हाथी–घोडो (एवं) सैनिकों के जुलूस के बिना ही (काल की चपेट खाकर) अकेले ही धराशायी हो गये, जिनके सदैव प्रसन्नता के वाद्य बजते थे (वे) डोमों द्वारा डंके के ढोल बजाये ही बिना काल के गाल में चले गये। (इसलिये) हे हिन्दुओ (और) मुसलमानो (अपनी) जीवात्मा के हितार्थ जरा भय खाकर उस असीम परमात्मा को क्यों नहीं जपते?

वैभव–संपन्न रावों, अभावग्रस्त कंगलों, राव राजाओं, सरदारों, राजाओं, खान साहबो, ख्वाजा साहबों, मीर साहबों, मल्का (सम्राज्ञी) घुंघराले बाल वाले मुसलमान फकीरो, जटा मुकुट धारी गुरुओ, सात्विक पुरुषो, देवताओ, तैमूरलंग बादशाहों, योगियों, जोशियों, साहूकारों, राज पुरोहितों, मिश्र, व्यासों तथा पेड पौधों (इन सबकी) आयु प्रतिदिन घटती रहती है। इनमे से ऐसा कौन है (जो मृत्यु से बचकर) बसा रह सकता है जबकि मृत्यु मार्ग सबके लिए एक जैसा है।

पशुप्रकृति पुरुष अपने (पाशविक) ढंग को नहीं बदलता (और अज्ञानवश) संसार की सभी वस्तुओं को मेरी–मेरी कहता रहता है (परन्तु) ईश्वर तो सत्याचरण करने वाले से ही अपनत्व रखता है। (सासारिक वस्तुएं) जंगल के उपले की तरह छिन्न–भिन्न हो जायेगी इसलिये यह (सासारिक पदार्थ) न तेरे हैं (और) न मेरे। (जो

---

१ विरषे २. झडि ३. जैला ४ प्रणि ५. लागौं ६. रुति ७. बसंती ८. नवेरा ९. सागौं १०. जिहिं ११ माघो १२. बिसन बिसन १३. संकर १४ उगाई १५ ताछै १६ कान।

तेरी–मेरी का भाव रखते हैं वे) वास्तविक मार्ग से (निश्चय ही) भटक गये।

(सभी जीवों के शरीर, चाहे वे) स्वेदज, अण्डज, जरायुज (एवं) उदभिज हो एक दिन मरण को प्राप्त होकर साग की तरह अलसा जायेंगे। (जिस दिन) जीव और शरीर का वियोग होगा उस दिन इस शरीर का मूल्य दो पैसे भी न रह जायेगा। अत. (इस) शरीर से सुकीर्ति का कार्य ही करना चाहिये (यदि ऐसा नहीं किया तो इस शरीर का कोई लाभ नहीं क्योंकि) यह शरीर न किसी अन्य काम का है (और) न किसी अर्थ का ही।

(यह जीवात्मा) आते (जन्मते) समय शरीर को साथ लाया था (लेकिन मरणोपरान्त) खाली ही जायेगा। जीवात्मा को (इस संसार में जन्म के साथ) आते समय (कुछ) एक क्षण लगे भी थे (परन्तु) जाते (मृत्यु के) समय एक क्षण भी न लगेगी।

सुख दुखादि भाग्यप्राप्ति के अनुसार होते हैं। दरगाह के मार्ग धीरे धीरे (अवश्य) चलो। वृक्षों से पत्ते झड झड कर चले जायेंगे। उन पर वे पत्ते नहीं लगेंगे।

शीत से (जैसे) सुकोमल कलियें विदग्ध हो जाती हैं, (जैसे पौधे से अलग हुआ) हरा साग अलसा जाता है (पर) बसंत ऋतु के आने पर पुन. (वनस्पति मे) सुंदर पुष्प (एवं) पत्ते प्रस्फुटित हो जाते हैं (ठीक वैसी ही गति इस संसार की है।)

हे प्राणी! तू तो भूल में ही रहा (और जो भूल में रह गया) उस (प्राणी) के अस्तित्व का कोई पता नहीं अर्थात् वह दुर्गति को ही प्राप्त होता है। जिसने विष्णु –विष्णु के पावन नाम का उच्चारण नहीं किया, "सुरनर" (एवं) परब्रह्म का यशोगान नहीं किया, हे भाई! उस को यमराज विनष्ट करेगा (जिस प्राणी ने) शरीर से जीवात्मा की विद्यमानता में सुकृत कार्यरूपी कमाई नहीं की (उसके लिए) यमदूत बडे ही कष्टकर रहेंगे, तेरा कोई भी ठौर ठिकाना नहीं रहेगा।

(६५)

तउवा जाग जु[1] गोरख जागा[2], निरह निरंजन[3] निरह निरालंव[4]
जुग छतीसों एकै आसन[5] बैठा[6] यरत्या और भी अवधू[7] जागत जागूं[8]
तउवा त्यागज ब्रह्मा त्याग्या, और भी त्यागत त्यागूं[9]
तउवा भाग जो[10] ईश्वर मस्तक, और भी मस्तक भागूं[11]
तउवा सीर जो[12] ईश्वर गौरी, और भी कहियत सीरूं[13]
तउवा वीर जो[14] राम[15] लक्ष्मण[16], और भी कहियत वीरों[17]
तउवा पाग जो[18] दशशिर[19] बांधी, और भी बांधत पार्गों[20]

---

१. जागज २. जाग्या ३. निरजण ४. निरालंभ ५ आसणि ६. बैठां ७ प्रति में नहीं है ८. जार्गों ६. त्यार्गों १०. भांगज (भाग ज) ११ भार्गों १२. सीरज (सीर ज) १३ सीरों १४. वीरज (वीर ज) १५ रामै १६. लषमण १७. वीरों १८. पागज १६. दहसिर २० पार्घों

तउवा लाज जो[1] सीता लाजी, और भी लाजत लाजूं[2]
तउवा बाजा राम बजाया, और बजावत बाजूं[3]
तउवा पाज जो[4] सीता[5] कारण[6] लक्ष्मण[7] बांधी और भी बांधत पांजूं[8]
तउवा काज जो[9] हनुमत[10] सारा[11], और भी सारत काजूं[12]
तउवा खागज जो कुंभकरण महरावण खाज्या[13] और भी खावत[14] खागूं[15]
तउवा राज दुर्योधन[16] माण्या[17] और भी माणत राजूं[18]
तउवा रागज कन्हड[19] बांणी, और भी कहिअे रागूं[20]
तउवा माघ तुरंगम तेजी, तटू तणा भी माघूं[21]
तउवा बागज हंसा टोली, बुगला टोली[22] भी बागूं[23]
तउवा नाग उद्यावल कहिये, गरुड़[24] सीया[25] भी नागूं[26]
तउवा शागज[27] नागरबेली, कूकर बगरा भी शागूं[28]
जां जां शैतानी[29] करै[30] उफारूं[31] तां तां[32] महंतज[33] फलियों
जुरा जम राक्षसं[34] जुरा जुरिन्द्र[35] कंश[36] केशी[37] चंडरूं[38]
मधु कीचक हिरणाक्ष[39] हिरणाकुस[40] चक्रधर[41] 'बलदेऊं[42] पावत[43] वासुदेवों
मंडलीक कांय न जोयबा इंहि[44] धर ऊपर[45] रती न रहिबा राजूं[46]

जैसे ज्ञान–जागरण से गोरख जाग्रत हुवे, (जो) इच्छा रहित, माया रहित, बिना किसी आधार के (जिनको) छतीस युगों तक एकासन बैठे ही व्यतीत हुवे, जागने को तो दूसरे योगी भी जागते हैं, (परन्तु वे) गोरखजी की तुलना में नहीं आ सकते।

(मायादि प्रपंच का) त्याग करने को दूसरे लोग भी करते ही हैं परन्तु जैसा त्याग ब्राह्मणो ने किया, वैसा औरों से न हुआ।

भाग्य लेख तो अनेको मनुष्यो के मस्तक पर विधाता द्वारा अंकित हैं (परन्तु) जैसा भाग्य ईश्वर के मस्तक पर अंकित है वैसा भाग्य लेख दूसरो के मस्तक पर कहा?

(ससार में पति–पत्नी रूप मे) सभी मे परस्पर (प्रेम का) सबंध होता है (लेकिन) जैसा गौरी–शंकर का एकत्व है वैसा (सनातन एकत्व) दूसरो में कहां?

---

१. लाजु २. लाजौं ३. बाजौं ४. जा ५. सीतां ६ कारणि ७ लखमण ८ पाजो ९. जो १०. हणवत ११. सार्‌या १२. काजौं १३ खाग्या (पाग्या) १४. खागत १५. खागौं १६. दुरजोधन १७ मांणा १८. राजौं १९ कान्हड २०. रागौं २१ माघो २२. नहीं है २३ बागौं २४. गुरड २५. सीया यह "गुरडसीया" एक पद है। २६. नागौं २७. साग २८. सागौं २९ सैतांन ३०. नहीं है ३१. अफरो ३२. तहा तहां ३३ न ३४. राकस ३५ जुरिन्दर ३६ कस ३७. केसि ३८ चंडूरौं ३९. हिरणाकस ४०. हिर्णाछ ४१. चकधर ४२ बलदेवुं ४३. पावक ४४ इहिं ४५. उपरि ४६ राजौं।

(इस संसार में) सगे सहोदर तो और भी (अनेकों) कहे जाते हैं (लेकिन) जैसा राम और लक्ष्मण में भ्रातृत्व–भाव है वैसा भ्रातृत्व भाव औरों में कहां?

संसार में दूसरे (अनेकों) लोग भी (अपने) माथे पर पगडी वांधते हैं (परन्तु) जैसी (अभिमान रूपी) पगडी रावण ने अपने दश माथों पर बांधी थी वैसी पगडी क्या कोई अन्य भी बाध सकता है?

शील–लज्जा का जैसा पालन सीताजी ने किया, क्या वैसा पालन (संसार की दूसरी स्त्रियां) कर सकती हैं?

जैसा विकट कार्य (बाजा) श्री राम ने कर दिखाया क्या वैसा विकट कार्य दूसरा भी कोई कर सकता है?

जैसी सेतु सीताजी के कारण (लंका को ध्वस्त करने के लिये) लक्ष्मणजी (के नेतृत्व में वानर सेना ने) समुद्र पर बांधी क्या वैसी सेतु दूसरा भी कोई बांध सकता है?

श्री रामचन्द्रजी का जैसा कार्य हनुमानजी ने संपन्न किया था, क्या वैसा कार्य कोई दूसरा संपन्न कर सकता है?

तलवार को जैसी कुंभकरण (और) महिरावण ने चलाई थी क्या वैसी तलवार और भी कोई चला सकता है?

जैसा राज्योपभोग दुर्योधन ने किया क्या वैसा राज्योपभोग दूसरे भी कोई भोग सके?

जैसी राग भगवान श्री कृष्ण की त्रिभुवनमोहिनी बांसुरी में आलापित हुई क्या वैसी राग कोई अन्य भी आलापित कर सकता है?

मार्ग यात्रा, जैसी उत्तम श्रेणी के तेज घोडों से की जाती है क्या वैसी यात्रा साधारण टट्टू से भी की जा सकती है?

जैसी हंसों की अपनी टोली होती है क्या वैसी बगुलों की भी टोली होती है?

नागो में जैसे "उद्यावल" (और) वासुकि श्रेष्ठ नाग कहे जाते हैं (क्या) वैसे ही श्रेष्ठ साधारण गरुड़ पक्षी के भक्ष्य भी नाग ही कहे जायेंगे?

जैसा नागर बेल हरे शाकों में शाक है क्या वैसा ही सुमधुर सुपाच्य, दुर्गन्धयुक्त कुक्कुटयकुर (कूकरबगरा) शाक हो सकता है?

जहां–जहां शैतान अनुचित कार्य करता है क्या वहां–वहां (दमन करने में) महान कार्य में सफल होते हैं?

कंश, केशी, चाणूर, मधुकैटभ, कीचक, हिरणाक्ष और हिरण्यकश्यप आदि राक्षसों को भगवान चक्रधर श्री कृष्ण और बलदेवजी ने मार गिराया, वे सब (भगवान द्वारा माने जाने के कारण) वासुदेव को प्राप्त हुवे। हे मंडलीक देखता क्यों नहीं है? इस पृथ्वी पर किसी का रत्ती भर भी राज्य नहीं रहेगा।

(६६)

उमाज[1] गुमाज[2] पंज गंजयारी, रहिया कुपही[3] शैतान[4] की यारी
शैतान[5] लो भल शैतान[6] लो, शैतान[7] यहो[8] जुग छायो[9]
शैतान[10] की कुवध्यान खेती, ज्यूं[11] काल मध्ये कुचीलूं[12]
वेराही वेकिरियावंत, कुमती दोरै जायर्सी[13]
शैतान[14] लोड़त रलियों
जां जां शैतान करै अफारूं[15], तां तां महत न फलियों
नीलमध्ये कुचील करवा[16], साध[17] संगिणी[18] थूलूं[19]
पोहप[20] मध्ये परमलाजोती[21], यूं[22] स्वर्ग[23] मध्ये[24] लीलूं[25]
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं घण बरसंता नीरूं[26]
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं रूही मध्ये खीरूं[27]

अभिमान मत्सर से शैतान की मित्रता (सदैव ही) पांचो विषयो और कुमार्ग से होती है। शैतान वह है जिसने सारे संसार को (अपने प्रभाव से) आच्छादित कर रखा है (वह) शैतान ऐसा ही है। कुबुद्धि ही शैतान की खेती है, (वह बुद्धि पर ऐसे छाया रहता है जैसे) काले (वस्त्र मे) मैल छिपा रहता है।

बिना (वास्तविक) मार्ग का अनुसरण करने वाले (तथा) कुबुद्धि नरक में जायेंगे (और) शैतान के कारण कभी भी महान नहीं बन सकेंगे।

जहां–जहां शैतान अपना फैलाव करेगा वहां–वहां (किसी प्रकार का महत्व फलीभूत नहीं होगा) (जैसे) नील से (वस्त्र) गदा हो जाता है (वैसे ही) "थूल" के ससर्ग से साधु।

(जैसे) पुष्प में गंध है वैसे ही स्वर्ग में ईश्वर की (दिव्य) ज्योति प्रकाशमान है।

ससार मे उपकार इस प्रकार किया जाता है जिस प्रकार बादल धरती पर पानी बरसाता है। परमात्मा ने संसार में ऐसे ही उपकार किये हैं जैसे माता के स्तनों मे बालक के लिये दूध उत्पन्न करना।

---

१ उमाज २ गूमांज ३. कुपहीया ४ सैतान ५ सैतान ६ सैतान ७. सैतान ८ बहु ६ ठायो १०. सैतान ११. ज्यो १२. कुचीलों १३ जाइसी १४. सैतान १५ उफारु १६. रहिवा १७. इस प्रति में 'साघ' शब्द से पहले 'ज्यों' है। १८. सगींणी १६. थूलों २०. पहुप २१. ज्योती २२. यों २३. सुरग २४ मधे २५ लीलों २६ नीरों २७ खीरों।

(६७)

(शुक्लहंस)

श्री गढ आल मोतपुर[1] पाटण[2] भुय[3] नागोरी म्हे ऊंडे नीरे अवतार[4] लियों
अठगी ठंगण अदगी[5] दागण, अगजा गंजण ऊंनथ नाथन[6]
अनूं[7] नवावन[8] काहिको मैं खैंकाल कीयो[9]
काही सुरग मुरादे देसां काही[10] दौरे दीयूं
होम करीलो दिन ठावीलौ सहज रचीलो[11] छापर[12] नीवी दूणपुरुं[13]
गांम[14] सुंदरियो छीलै[15] वलदीयो, छंदे मंदे वाल[16] दीयो[17]
अजम्हे होता नागोवाड़ै, रंणथमै[18] गढ गागरणों[19]
कुं कुं[20] कंचन सोरठ मरहठ तिलंगदीप गढ गागरणों
गढ दिल्ली कंचन अर दूणायर[21], फिर फिर[22] दुनिया परखै[23] लीयों
थटै[24] भयणिया[25] अरु गुजरात आछो जाई सवालाख मालवै परवत मांडु[26]
माहीं[27] ज्ञान कथूं[28]
खुरासाण[29] गढ लंका भीतर[30] गूगल खेऊं[31] पैर ठर्यो
इडर कोट उजैणी[32] नगरी कादा सिंधपुरी विश्राम[33] लीयों
कांयरे सायरा गाजे बाजै[34] धुरै[35] धुरहरै[36] करै[37] इवांणी[38] आप बलूं[39]
किहिं गुण सायरा मीठा होता[40] किहिं अवगुण[41] हुओ[42] खार खरुं[43]
जद[44] वासग नेतो मेर मथाणी[45] समद विरोल्यो ढोय रणूं
रेणायर[46] डोहण पांणी पोहण, असुरां[47] वेधी[48] करण छलूं[49]
दहशिरनै[50] जद[51] वाचा दीन्ही तद म्हे[52] मेल्ही अनंत छलूं[53]
दशसिर[54] का दश मस्तक[55] छेदा[56] ताणू वाणू[57] लडू कलूं[58]
सोखा बाणू[59] एक बखाणूं[60] जाका[61] यहु परवाणूं[62] निश्चय[63] राखी तास बलूं[64]
राय बिशन से[65] वाद न कीजै, कायं बधारो दैत्य[66] कुलूं[67]

---

१. पुर २. पाटणि ३. भुई ४. औतार ५. अदगा ६. नाथण ७ अजहुं ८. निवावण ९. कांही को खैंखाल खयों १०. कांही ११ रचीलों १२. छापरि १३. पुरों १४. गाव १५. छील १६. भाळ १७ दीयों १८. रैणथंभो १९ गागरणौं २०. कों कों २१. दुनावर २२. फिरि फिरि २३. परिखलिहौ २४. ठटै २५. बांभणिया २६. मांडौ २७. मींही २८. कथों २९. खुरासांण ३०. भीतरि ३१. खेवों ३२. उर्जीणी ३३. विसराम ३४. गाजैं बाजैं ३५ घुरै ३६. हरैं ३७. करैं ३८. इवांणी ३९ बलों ४०. होतौ ४१. ओगण ४२. हवो ४३. खारों ४४. "जद" इस प्रति में नहीं है ४५ मथांणी ४६. रेणायर ४७. असरा ४८. बेधी ४९. छलौं ५०. सिर ५१. जदि ५२. मैं ५३ छलौं ५४. दहसिर ५५ दस मसतक ५६. छेद्या ५७. ताणौं–वाणौं ५८. लडोकलौं ५९. बाणौं ६० बखाणौं ६१ जिहिंका ६२. प्रवाणौं ६३. निहचै ६४. बलो। ६५ सौं ६६. दैत ६७. कुलो।

म्हे पण[1] म्हेई थेपण थेई, सा पुरुपा की लच्छ कुलूं[2]
गाजै गुड़कै[3] से यर्यो[4] बीहै[5] जे[6] झल जाकी[7] राहस[8] फणूं[9]
मेरे[10] माय न याप न यहण न माई, राख[11] न सैंण न लोक जर्णो[12]
वैकुंठे विश्वास[13] विलम्बण पार गिरांये मात खिणूं[14]
विष्णु विष्णु[15] तू भण[16] रे प्राणी, विष्णु[17] भणन्ता अनंत गुणूं[18]
सहसे नांवे सहसे ठावें सहसे गावें गाजे वांजे हीरे नीरे
गगन गहीरे चवदा[19] भवणे, तिहूं[20] तृलोके[21] जम्बूद्वीपे सप्त पताले[22]
अई अमाणो[23] तत समाणो[24] गुरु फुरमाणो[25] बहु परवाणो[26]
अइया[27] उइयां[28] निरजत सिरजत नान्ही मोटी जीया जूणी अेती सास
फुरन्तै सारुं[29]
कृष्णी[30] माया घण बरपंता[31] म्हे[32] अगिण[33] गिणूं[34] फूहारुं[35]
कुण[36] जाणै[37] म्हे देव[38] कुदेवों[39] कुण[40] जाणै[41] म्हे अलख अभेवों
कुण जाणै म्हे सुरनर देवों, कुण जाणै म्हारा पहला भेवों
कुण जाणै म्हे ज्ञानी के ध्यानी, कुण जाणै म्हे केवल ज्ञानी
कुण जाणै म्हे ब्रह्मज्ञानी कुण[42] जाणै[43] म्हे ब्रह्मचारी[44]
कुण[45] जाणै[46] म्हे अल्प अहारी[47], कुण[48] जाणै म्हे पुरुष कै[49] नारी
कुण जाणै म्हे बाद बीवादी, कुण जाणै म्हे लुब्ध[50] सवादी[51]
कुण जाणै म्हे जोगी कै[52] भोगी, कुण जाणै म्हे लील पती
कुण जाणै म्हे भावत[53] भोगी, कुण जाणै म्हे आप संजोगी
कुण जाणै कै म्हे सूम कै दाता, कुण जाणै म्हे सती कुसती
आप[54] ही सूम'र[55] आप[56] ही दाता, आप कुसती आपै सती
नव[57] दाणूं[58] निरवंश[59] गमाया[60], कैरव[61] कीया फती फती
राम रूप कर[62] राक्षस[63] हडिया, बाणकै[64] आगै[65] बनचर जुडिया
तद[66] म्हे राखी कमल[67] पती
दया रूप म्हे आप बखाणां, संहार[68] रूप म्हे आप हती

---

१. पणि २. कलों ३ गाजे गुडके ४. क्यूं ५ बीहैं ६. जिहि ७. झागी ८. सहंस ९. फर्णों १०. मेरे ११. साखि १२. जर्णों १३ बेसास १४. खिणौं १५. विसन विसन १६. भणि १७. विसन १८. गुर्णों १९ चवरा २०. त्यौंह २१. त्रिलोके २२. पयाले २३ अमार्णों २४. समार्णों २५ फुरमाण्यौं २६ प्रवाणौ २७. अइया २८. उईयां २९. सारों ३०. विसनी ३१. बरसंते ३२. इस प्रति मे "म्हे" नहीं है ३३ अगणी ३४. गिर्णों ३५ फुहारौं ३६ कौंण ३७. जाणे ३८. देवक ३९ देवौं ४०. कौंण ४१. जार्णें ४२. कौंण ४३ जार्णें ४४ ब्रह्म अचारी ४५ कौंण ४६. जार्णें ४७. अलपहारी ४८. कौंण ४९. क ५०. लबध ५१ स्वादी ५२. क ५३ भावट ५४ आपे ५५. सूंमरू ५६ आपै ५७ नौ ५८ ढार्णों ५९. निरवंस ६०. गुमाया ६१. करौं (कैरौं?) ६२ करि ६३. राकस ६४. बाणख ६५ आगह ६६. तदि ६७. कंवळ ६८. सिंघार।

सोलै सहस्र नय रंगी गोपी, भोलम भालम टोलम टालम
छोलम छालम सहजै राखी लो, म्हे कन्हड़ वालो आप जती
छोलयीया म्हे तपी तपेश्वर, छोलय कीया फती फती
राखण मतां तौ पड़दे राखां, ज्यूं दाहै पान वणासपती

(संसार में) श्रीगढ (वर्तमान जोधपुर) पाटण (आदि अनेक नगर हैं पर) हमने गहरे नीर वाली नागौर–भूमि में अवतार लिया है। (मेरे अवतार लेने का हेतु यह है) नहीं ठगे जाने वाले को ठगने के लिये अर्थात् जो किसी की भी बात को मानने को तैयार नहीं थे, उनको अपनी बात मनाने के लिये, नहीं दागे जाने वाले को दागने के लिये अर्थात् धर्महीन मनुष्यों पर धर्म की छाप लगाने के लिये (किसी प्रकार से) दमित नहीं होने वालों का दमन करने के लिये, नहीं नाथे जाने वालों को नाथने के लिये अर्थात् धर्मानुशासित करने के लिये (और) नहीं झुकने वालों को झुकाने के लिये अर्थात् जड़ जीवों में नम्रता के भावोत्पन्न करने के लिदे। (इस सदर्भ में) मैंने किसी (आततायी अथवा धर्म मर्यादा को नहीं मानने वाले का) नाश भी किया है।

किसी (जिज्ञासु की मैंने) स्वर्ग (प्राप्ति की) मुराद पूरी की (और) किसी (अनिष्ठावान को) नरक में ही डाला।

(हमने) होम किया (तथा हमने हमारे सामर्थ्य का परिचय चाहने वालों को परिचय देने के अर्थ) दिन (कोई एक समय) निश्चित किया (और हमने उस दिन अपने) सहस्रों रूप रचे (तथा उन रूपों से हम) छापर, नीम्बी, द्रोणपुर, सुंदरियो, छीला, बलूंदी (आदि ग्रामों में) प्रकट हुवे, (परिचय चाहने वालों ने इन्हीं) परिचित ग्रामों में अपने आदमियों द्वारा घेरा दिलवाया। (परंतु) हमतो आज (इस दिन इन गांवों के अतिरिक्त) नागौर–क्षेत्र, रणथम्भौर, गागरोणगढ, कुंकु, कंचन, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, तैलगाना (पुन) गागरोणगढ, दिल्लीगढ, कंचन (और) द्रोणपुर (मे भी थे, इस प्रकार) समस्त संसार में (हम) घूमे (तथा हमने) दुनियां को देखा है।

(उसी दिन) मैं थल (मरुस्थल भूमिपर) घूमने वाला, गुजरात, सपादलक्ष, मालव, परवत (आबू? और) मांडु में जाकर ज्ञान का कथन करता हूं। (मैं अपने) पैरों को रोप कर खुरासान (सीमाप्रांत और) लकागढ में जाकर गूगल का हवन करता हूं। ईडरगढ, उज्जैननगरी, काबुल (और) सिंधुपुरी में (मैंने) विश्राम लिया।

(दुरभिमानी बीदा को संबोधित कर) अरे! (तुम) समुद्र की (भांति बिना सामर्थ्य के ही) किसलिये गर्जन–तर्जन (तथा) घोर शब्द करते हो? (क्या तुममें इतना सामर्थ्य है कि तुम) अपने बल से ऐसा करते हो?

समुद्र (अपने) कौनसे गुण से मीठा था (और) कौनसे अवगुण के कारण (वह) खारा हो गया। (अभिमान के कारण ही तो?)

जब (हमने) वासुकि नाग को नेता (और) सुमेरु पर्वत की मथानी बनाकर समुद्र को विलोडित किया (और उसके गर्भस्थ वस्तुओं की) खोज की (उसी) आर्णव को आन्दोलित कर पानी के तल से (निकली वस्तुओ मे से) असुरों का छल से (हमने) वध किया।

दस माथे वाले रावण को (जब) ऐसे वचन मिले थे कि (तू नर–वानर के अतिरिक्त किसी के द्वारा नहीं मरेगा) तब हमने (ऐसा कह कर उसके साथ) अपार छद्म (पूर्ण बात) रखी (उन्हीं वचनों के अनुसार हमने) दशानन रावण के दस मस्तकों का छेदन किया (उसके साथ हमने रामरूप से) बाणों को खींचकर लडाई की। उन बाणों का क्या बखान करूं, उनके (विवरण का) परिमाण अपार है, निश्चय ही, (हमने) उन्हीं (बाणों के) बल पर रावण को रणक्षेत्र में मौत के मुंह में धकेला।

(हे) राव ! (मुझ) विष्णु से बाद (विवाद) न कीजिये (ऐसा करके तुम व्यर्थ में) किसलिये दैत्यकुल (जैसी प्रवृत्ति को) बढावा देते हो? हम हमही हैं (और) तुम तुम ही अर्थात् तुम हमारे सामर्थ्य का तौल नहीं कर सकते। सत्पुरुषों का कुल (उनके अच्छे) लक्षण ही हैं।

(जो पूर्ण समर्थ है) वह (तुम्हारे जैसे साधारण आदमी की) गर्जन से क्यों भय करें (जबकि वह) सहस्र फन वाले (शेष नाग) की झल (लपटों) को भी सहता है।

मेरे लौकिक व्यक्तियों की तरह न मां है, न पिता है, न बहिन, न भाई है, न (किसी के साथ किसी प्रकार का अन्य) संबंध है (और) न ही (मेरे कोई) सज्जन स्नेही हैं। (मेरा सबंध उन्हीं के साथ है जिनका) वैकुण्ठ पर विश्वास अवलम्बित है (और जो) प्रतिक्षण मोक्षप्राप्ति के अपेक्षी हैं।

हे प्राणी ! तू विष्णु–विष्णु का उच्चारण कर, विष्णु के उच्चारण में अनत गुण हैं। सहस्र नामों से, सहस्रों स्थानों में, सहस्रों गांवों मे (अपने) संगीतमय (रूप मे) हरियाली के (रूप मे) और पानी के (रूप मे) आकाश की भांति, चौदह भुवनों में, तीनों लोकों में, जम्बू द्वीप में, सातों पातालों में (वह विष्णु) तत्व सर्वत्र व्याप्त है, बहुत से प्रमाणों (के साथ) गुरु ने (ऐसा) फरमाया है।

(वह परमेश्वर विष्णु) यहां–वहा (सर्वत्र) संसार का सृजनकर्त्ता है, छोटी–बडी (समस्त) जीव–योनियां (उसके) श्वास–स्फुरण मात्र में उत्पन्न होती हैं।

कृष्ण की माया से बादलों के बरसते (जैसे उनसे) अगणित फुंहारें (फूटती हैं वैसे ही) हमारा (स्वरूप अनंत है।)

कौन जानता है हम देव हैं (कि) देवाधि (और) कौन जानता है (कि) हम (जिसका) भेद नहीं जाना जा सकता (वह) अलख हैं।

कौन जानता है (कि) हम सुर–नर हैं (अथवा) देवता हैं (और) हमारे पूर्व भेद को (भी) कौन जानता है (कि इस स्वरूप से पूर्व हम कौन थे)।

कौन जानता है (कि) हम ज्ञानी हैं (या) ध्यानी (और) कौन जानता है कि हम केवल्य (पद के) ज्ञाता हैं।

कौन जानता है, हम ब्रह्म ज्ञानी हैं (अथवा यह भी) कौन जानता है कि हम ब्रह्मचारी हैं।

कौन जानता है, हम अल्पाहार करने वाले हैं (और यह भी) कौन जानता है, हम पुरुष हैं कि नारी।

कौन जानता है कि हम वाद–विवाद करने वाले हैं (और यह भी) कौन जानता है, हम (विभिन्न प्रकार के) स्वादोपभोगी हैं।

(हमारे संबंध में यह भी) कौन जानता है, हम योगी हैं कि भोगी, कौन जानता है (कि) हम (ही) लीलापति (परमेश्वर) हैं।

कौन जानता है, हम सूम (कजूस) हैं कि दातार (उदार) हैं, कौन जानता है, हम सत्यवादी हैं (अथवा) असत्यवादी।

हम स्वयं ही अनुदार (और) हम स्वयं ही दाता (उदार) हैं, हम स्वयं ही कुसती (तथा) हम स्वयं सती हैं।

(हमने) नव दानवों को समूल नष्ट किया (तथा) कौरवों पर विजय पाई।

(हमने) राम रूप से राक्षसों का हनन किया (हमने अपने) बाणों (तथा) उस समय बनचर (वानरादि) के (सैन्य) दल की (सहायता से) हमने कमला (सीता) को रखा।

हम दयारूप कहलाते हैं, संहारक रूप भी हमारा ही है।

सोलह हजार रंग रूपों वाली गोपियों की देखभाल कर, खोजबीन कर, सहज ही अपने पर अवलम्बित रखा, वही हम कन्हैया हैं (और) स्वयं यतिवर्य हैं।

हम तपस्वियों के तप रूप ईश्वर हैं। (जिसने हमारे पर) अवलम्बन किया (उसकी हमने) विजय की।

हम जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसकी हम इस प्रकार रक्षा करते हैं जिस प्रकार शीत तुषार से वनस्पति पत्तों की रक्षा करती है।

(६८)

वैकवराई[1] अनंत वधाई[2], वैकवराई[3] स्वर्ग[4] वधाई
यह कवराई[5] खेह रलाई, दुनिया रोलै कवर किसो
कण विण कूकस रस विन बाकस[6], विन[7] किरिया[8] परिवार[9] किसो
अरथूं गरथूं[10] साहण थाटूं[11], धूंवे[12] का लहलोर जिसो
सो शारंधर जप[13] रे प्राणी[14], जिहिं जपिये हुवै धर्म इसो
चलण चलंतै वास वसंतै, जीव जिवंतै[15] काया नवंती[16] सास फुरंतै किवी न कमाई
तातैं[17] जवर[18] विनड़सी[19] रे भाई, सुरनर, ब्रह्मा[20] कोऊ[21] न गाई
माय न बाप न बहण न भाई, इंत[22] न मिंत न लोक जणों[23]
जवर[24] तणा जमदूत दहैला[25], लेखो लेसी अेक जणो

---

१. वैंकंराई २. बधांई ३. वैंकवराई ४. सुर्ग ५ कंवराई ६ इस प्रति में "बाकस" पाठ अधिक है जो पद–पूर्ति के लिये उचित भी है। ७. इस प्रति में "बिण" पाठ है। ८. क्रिया ६. परवार १०. अरथों गरथों ११. थाटों १२. धौवें १३. जपि १४. प्राणी १५. जीवतैं १६. नवंती। १७. ताछैं १८. जवर १६. वीनडिसी २०. संकर २१ कोनउ २२. ईंत न मींत २३. जणौ २४. जवर २५. दहैंला।

उन राजकुमारों को कोटिश. वधाइयां हैं। वे राजकुमार स्वर्ग की बधाई के योग्य हैं। (पर यह) राजकुमारत्व तो एक दिन मिट्टी मे मिल जायगा, जो दुनियां में भटकता है वह कैसा राजकुमार? (जैसे) विना अन्न वाला रसविहीन भूसा बेकार है (वैसे ही) शुभ कर्म के बिना कैसा परिवार?

धन–दौलत (तथा) अपार सैन्य दल धूंए के बादलों जैसा (शीघ्र मिट जाने वाला) है। हे प्राणी! उस परमात्मा को जप जिसके जपने से ऐसा अपूर्व धर्म होगा जिसकी बराबरी और धर्म नहीं कर सकेंगे। (हे प्राणी! तुमने) शरीर की स्वस्थ अवस्था मे, शरीर मे प्राणों के निवास करते, चेतनावस्था में, शरीर की कार्यक्षमता के समय (और) श्वास स्फुरण के साथ यदि तुमने भक्ति की कमाई नहीं की तो यमराज तेरा विनाश करेगा। क्योकि तुमने सुर, नर तथा परमात्मा का अपनी वाणी से गुणगान नहीं किया। (मृत्यु के समय जब तुम काल के फन्दे में आबद्ध होओगे, उस समय तुम्हारे) न मां, न पिता, न बहिन, न भाई और न ही मित्रादि लौकिक जन तेरी सहायता कर सकेंगे।

यमराज के दूत बडे दुर्दान्त हैं। वे सुकृत व दुष्कृत कार्यो का हिसाब उस एक व्यक्ति से ही लेंगे। वहां किसी दूसरे व्यक्ति की सिफारिश न चलेगी।

(६६)

जबरा रे[१] तैं जग डांडीलो, देह न जीती जांणो[२]
माया जाल[३] ले जमकाले, लेणा कोण समाणो[४]
काचै[५] पिंड[६] किसी बडाई? भोलै भूल[७] अयाणो[८]
म्हा देखंता देव ('र) दाणू[९], सुरनर खीणा बीच[१०] गया बेराणो[११]
कुंभकरण महरावण होता, अबली जोध अयाणो[१२]
कोट लंकागढ विषमा होता[१३], कादा वस[१४] गया रावण राणो[१५]
नोग्रह[१६] रावण पाये बन्ध्या तिस बीह सुरनर शंक[१७] भयाणो[१८]
ले जमकाले अति बुधवंतो, सीताकाज[१९] लुभाणो[२०]
भरमी वादी अति अहंकारी, करता गरब गुमानों[२१]
तेऊ तो[२२] जमकाले खीणा, थिर न लादो[२३] थाणो[२४]
काचै पिंड अकाज अफारुं[२५], किसो प्राणी माणो
साबण लाख मजीठ बिगूता, थोथा बाजर घाणो
दुनिया राचै गाजै बाजै[२६] तामै कणू न दाणू
दुनियां कै रंग[२७] सब कोई राचै, दीन रचै सो जाणो

१. जबरारे २. जांणौ ३ जाले ४. समाणौं ५ काचे ६. पिंडै ७. भूलि ८. अयाणौं ९. दाणौं १०. बीचि ११ बेरांणौं १२. अयाणौं १३. होतां १४. वसि १५ राणौं १६. नौग्रह १७ सक १८ भयाणौं १९. काजि २०. लुभाणो २१ गुमानौं २२. तौ २३ लाधौ २४. थाणौं २५ अफारो २६ गाजे बाजे २७. रंगि।

लोही मांस विकारो होयसी, मूर्ख फिरै अयाणो
मागर मणियां[1] काच कथीरन राचो, कूड़ा दुनी डफाणो
घलण घलन्ते जीव जिवन्ते[2], काया नवन्ती सास फुरन्ते कांय रे प्राणी !
विष्णु न जंप्यौ[3] कीयो कांधै को ताणों
तिहिं[4] ऊपर[5] आवैला[6] जवर तणा दल, तास कियो सहनाणो[7]
ताकै[8] शीस न ओढण पायन[9] पहरण, नैवा[10] झूल झयाणो
धणकन थाण न टोपन अंगा, टाटर घुगल[11] घयाणो[12]
साल सुचंगी घृत सुवासो पीवण[13] न ठंडा पांणी
सेज न सोवण पलंग न पोढण, छात न मैड़ी माणो
न वां[14] दइया[15] न वां[16] मइया[17] नागड़ दूत भयाणो
काधा[18] तोड़[19] नीकूचा[20] भाखै[21], अघट घटै[22] मल माणो[23]
धरती और[24] असमान[25] अगोचर[26], जाते[27] जीव न देही[28] जाणो
आवत जायत दीसै नाहीं[29] साचर[30] जाय[31] अयाणो[32]
जवर तणा जमदूत दहैला[33] मल[34] बैसैला[35] मांणो
ताते[36] कलीयर[37] कागा रोलो, सूना[38] रह्या[39] अयाणो[40]
आयसां जोयसां भणतां गुणतां थार महूर्ता[41] पोथा[42] थोथा
पुस्तक[43] पढिया[44] वेद पुराणो
भूत प्रेती कांय जपीजै, यह[45] पाखण्ड परमाणो[46]
कान्ह[47] दिशावर[48] जेकर घालो, रतन काया ले पार[49] पहूंचो रहसी[50] आवा जाणो
ताह[51] परे रै[52] पार गिराये[53] तत[54] कै निश्चल[55] थाणो
सो अपरंपर कांय जंपो[56], तत खिण लहो इमाणो
भल[57] मूल सींचो रे प्राणी[58] ज्यूं तरवर मेलत[59] डालूं[60]
जइया[61] मूल न सींच्यो[62], तो जामण मरण विगोवो
अहनिश[63] करणी थिर न रहिया, न बंच्यो[64] जम कालूं[65]

---

१. मणियें २. जीवन्तै ३. जप्यौ ४. तहि ५. ऊपरि ६. आवैंला ७. सहिमांणौ ८. सीस ९. पाइन १०. नैंवां ११. चुगण १२. बखाणौं १३. पिवणन १४. नावां १५. दईया १६. नावां १७. मईया १८. काचै १९. तोडे २०. निकुचा २१. भाखैं २२. घटै २३. मलिमाणौं २४. अरु २५. असमाण २६. अगौचर २७. जातैं २८. देई २९. नाहीं ३०. साचरि ३१ जांहि ३२. अयांणो ३३. दहैंला ३४. मलि ३५. बैसेंला ३६. ताछैं ३७. कलियर ३८. सूंना ३९. रह्यां ४०. इवाणौं ४१. महूरता ४२. पोथा ४३. पुसतक ४४. पढ्या ४५. अे ४६ परवाणौं ४७. विष्णु ४८. दिसावर ४९. पारि ५०. रहिसी ५१. ताहि ५२. परे रे ५३ गिरांअे ५४. तित ५५. निहचल ५६. जंप्यौ ५७. भलै ५८. पिरांणी ५९. मेल्हत ६०. डालों ६१. जईया ६२. सींच्यौ ६३. निस ६४. बंच्या ६५. कालों।

कोई कोई[1] भल मूल सींचीलो, भल तत्व[2] बूझीलो जा[3] जीवन की विध[4] जाणी[5]
जीव तड़ा कुछ[6] लाहो होयसी[7], मुवा[8] न आवत हांणी

हे यमराज! तुमने समस्त ससार को दण्डित किया है। तुमने किसी के भी शरीर को जीता नहीं जाने दिया। सांसारिक मायाजाल यमराज रूपी मृत्यु के मुंह में ले जाता है, उससे कोई बचकर नहीं रह सकता।

हम नाशवान शरीर की कौनसी बड़ाई है? नासमझ इसके भ्रम में भूले हुवे हैं। हमारे देखते–देखते अनेक देव–दानव और सुर–नर क्षय हो गये तथा वे वीरानी जगह चले गये। कुभकर्ण और महिरावण जैसे अपराजित योद्धा भी यहां से वैसे ही चले गये। लंकागढ कभी बड़ा विषम दुर्ग था। वहा कभी रावण जैसा राजा राज्य करता था, जिस रावण की खाट के पाये से नवग्रह बंधे हुवे थे। जिसके आतंक से देवता भी सशंकित और भयातुर रहते थे, वह रावण अति बुद्धिमान था। लेकिन वह सीता के लोभ में कालराज यमराज को प्राप्त हो गया। वह भ्रम से भ्रमित था। जिद्दी और अत्यधिक अभिमानी था और गर्व गुमान करता था, वह भी यम के द्वारा नाश को प्राप्त हो गया उसका कोई अस्तित्व नहीं रहा। हे प्राणी! तब तो तेरी गिनती ही क्या है? जो इस नाशवान शरीर से कार्य करने की सोचता है।

ससार के लोग साबुन, साख और मजीठ जैसे रंगों में अनुरक्त होकर नष्ट हो गये, क्योंकि ऐसे शान–शौकत के सब कार्य व्यर्थ हैं। सांसारिक लोग ऐसे व्यर्थ के कार्यों में अधिक अनुरक्त होते हैं, पर जिनमे कोई सार नहीं है। दुनियावी प्रपंचों में तो सभी लिप्त होते हैं, सराहने योग्य तो वह है जो धर्म में अनुरक्त होता है। मूर्ख जन वैसे ही व्यर्थ के कार्मों में भटकता है। उसे यह पता नहीं कि उसके शरीर का रक्त और मास बेकार जायेगा। झूठी मणी, काच, कथीर जैसे सांसारिक वस्तुओं में अनुरक्त न होवो। ये सब सांसारिक वस्तुएं दिखावे मात्र की हैं।

हे प्राणी! तुमने किसलिये स्वस्थ अवस्था मे, अपने जीवनकाल में, शरीर की कार्यक्षमता में और श्वासों के चलते हुवे विष्णु का जप नहीं किया और व्यर्थ में ही शरीर का अभिमान किया? तेरे पर यमराज के जबर्दस्त दूतों का दल आयेगा, उसकी क्या पहचान है? उनके सिर पर कोई वस्तु ओढी हुई नहीं होगी, पैरों में कुछ पहना हुआ न होगा, न ही उसके शरीर पर कोई विशेष कपडे होगे। उनके पास न धनुष होगा, न तरकस होगी और न शरीर पर टोप होगा। वे तुझे ढूंढकर चुग लेगे।

वहां यमपुरी में तेरे लिये सुन्दर साल, घृत, सुन्दर आवास, पीने के लिये ठंडा पानी होगा। सोने के लिये न शय्या होगी, न लेटने के लिये पलंग होगा और न ही तेरे उपभोग के लिये वहां किसी प्रकार का मकान होगा। न ही तेरे पर वहा कोई दया करने वाला होगा, न ही वहा कोई मेहरबानी करने वाला होगा। वहां तो तेरे सामने भयकर और क्रूर यमदूत ही होगे। वे यमदूत कच्चे–पक्के सब प्रकार के

१ को को २. तत ३ जहा ४ बिधि ५ जांणी ६ कुछि ७. होइसी ८ मूवा।

शरीरों का नाश करते हैं अर्थात् वे कोई अवस्था का विचार नहीं करते। वे बिना घटे ही सबका मर्दन करते हैं।

यमराज के दूत बड़े क्रूर हैं। वे पापात्मा मनुष्य का शक्तिशाली मल्ल की भांति मर्दन करते हैं। मनुष्य की मृत्यु के पश्चात कलियुगी लोग कौवा-क्रन्दन की भांति रोते हैं, वे व्यर्थ में ही ऐसा करते हैं। आयस, जोशी, पढे-लिखे, वार और मुहूर्त देखने वाले, वेद और पुराणों के अध्येता, यदि उन्होंने उनका आशय नहीं समझा है तो उनके पोथे थोथे ही रहे।

भूत और प्रेतों को क्यों जपा जाय? ऐसा करना तो प्रामाणिक पाखण्ड है। यदि तुम भगवान श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख हो चलो तो दिव्य काया को प्राप्त होकर भवसागर से पार पहुंच जाओगे और सदैव के लिये आवागमन मिट जाय। उसके पश्चात जिसने तत्व का निश्चय कर लिया है उसको निश्चल मोक्षस्थान प्राप्त हो जायेगा। उस अपरम्पर ब्रह्म को क्यों न जपते हो? उसे सर्वत्र व्यापक समझते हुवे, उसे तत्क्षण उपलब्ध करो। हे प्राणी! अच्छे मूल को सींचो। उस अच्छे मूल को सींचने से आत्मलाभ होगा। जैसे तरुवर शाखा-प्रशाखा प्रस्फुटित करता है। जिसने मूल को नहीं सींचा उसने अपने जन्म और मरण दोनों को ही बिगाड लिया। जो रात-दिन अपने कर्त्तव्य कर्म पर स्थित नहीं रहा वह यम काल से नहीं बचा। किसी किसी ने भले मूल को सींच लिया और श्रेष्ठ ब्रह्मतत्व को सद्गुरु से पूछ लिया, उसने जीवन-विधि को जान लिया। उसे जीवन-काल में तो बहुत कुछ लाभ होगा ही, मरने पर भी उसकी कोई हानि नहीं होगी।

(७०)

हक हलालु[1] हक साध[2] कृष्णों[3], सुकृत[4] अहल्यो[5] न जाई
भल वाहीलो भल बीजीलो, पवणा बाड़[6] बलाई
जीव कै काजै खड़ोज[7] खेती, ता मैंले[8] रखवालो रे[9] भाई
दैंतानी[10] शैतानी[11] फिरैला[12], तेरी[13] मत[14] मोरा चर[15] जाई
उनमुन[16] मनवा जीव जतन कर[17] मन राखिलो[18] ठांई
जीव कै काजै खड़ो जे[19] खेती, वाय[20] दवाय न जाई
न तहां हिरणी न तहां हिरणा, न चीन्हो[21] हरि आई
न तहां मोरा[22] न तहां मोरी[23], न ऊंदर घर जाई
कोई गुरु कर[24] ज्ञानी तोड़त मोहा तेरो मन रखवालो रे भाई
जो आराध्यो[25] राव युधिष्ठिर[26] सो आरोधो[27] रे भाई

---

१. हलालों २. सांच ३. विष्नो ४. सुकरत ५ अहलो ६ बाडि ७ करोज ८. मेलै ६ इस प्रति में "रे" नहीं है। १०. दैतांनी ११. सैतांनी १२. फिरैंला १३. इस प्रति में "तेरी" नहीं है। १४. मति १५. चरि १६. उनमन १७. करि १८. राखीलो १६ 'ज' २०. बाइ २१. चीनो २२. मोरी २३. मोरा २४. करि २५ आरोघो २६. दहूंठल २७ आराधे।

जोग बिहूणा[1] जोगी भूला, मुड़िया अकल न काई
यह[2] कलजुग[3] मैं दोय जन[4] भूला, एक पिता अेक माई
बाप जाणै[5] मेरे हलियो टोरै, कोहर[6] सींचण जाई
माया[7] जाण[8] मेरै बहूटल[9] आवै, बाजै बिरद बधाई
म्हे शंभु[10] का फरमाया[11] आया, बैठा तखत रचाई
दोय[12] भुज डंडे परवत तोलां, फेरा[13] आपण राई
एक पलक मैं सर्व सन्तोश्वां, जीया[14] जूण[15] सवाई
जुगां जुगां को जोगी आयो, बैठो आसन[16] धारी
हाली पूछै पाली पूछै, यह कल[17] पूंछण हारी
थली फिरंतो खिलरी[18] पूछै, मेरी[19] गुमाई छाली
बाण चहोड[20] पारधियो पूछै, किहिं[21] अब गुण+चूकै चोट हमारी
रहारे[22] मूर्खा[23] मुग्ध[24] गवांरा[25], करो मजूरी पेट भराई[26]
है है जायो जीवन घाई, मैड़ी बैठो राजेन्द्र[27] पूछै स्वामीजी[28] कतीअेक[29] आयु[30] हमारी
चाकर पूछै ठाकर[31] पूछै ले ले हाथ सुपारी
बांझ तिया बहूतेरी पूछै, किसी प्रापति[32] म्हारी
त्रेता जुग[33] मैं हीरा विणज्या, द्वापर गऊ चराई[34]
बृंदावन[35] मैं वंसी[36] बजाई[37] कलयुग[38] चारी-छाली
नव[39] खेडी म्हे आगै[40] खेड़ी, दशवै[41] काळंगड़ै[42] की[43] बारी
उत्तम देश[44] पसार्‌यो[45] मांड्यो, रमण बैठा जुवारी
एक खंड बैठा[46] नव खंड जीत्ता, को ऐसो लहो जुवारी

(मनुष्य के लिये) ईश्वर की (भक्ति ही) विहित है (और) कृष्ण ही सच्चा ईश्वर है (उसके निमित्त किया गया) सुकृत्य व्यर्थ नहीं जाता। (आत्म साधना के लिये योग–समाधि रूप) अच्छा (खेत) जोतो (उससे श्रद्धा भक्ति के) उत्तम बीज बोवो (तथा उस खेत के) पवन–प्राणायाम (रूपी) बाड का घेरा लगाओ।

---

१ विहूंणा २ इहिं ३ कलिजुग ४. जण ५ जाणैं ६ कौहर ७. माय ८. जाणैं ९. बोटल १०. सिभु ११. फुरमाया १२. दुह १३. फेरां १४. जीवा १५ जूणि १६. आसण १७. अेकलि १८. खीलहरी १९. मैंर २०. चहोडि २१. क्यूं + इसमे "अवगुण" अधिक है। २२. रहोरे २३ मुरिखा २४. मुगध २५ गवारा २६ छलाई (छालाई) २७ राजिन्दर २८. इस प्रति में "जी" नहीं है २९. कितीइक ३०. आव ३१ ठाकुर (इस प्रति में आगे का पाठ इस प्रकार है "पूछे कीर कहारी। सोकि दुहागणि ते पणि पूछै" फिर वही पाठ "ले ले हाथ सुपारी" है।) ३२. परापति ३३. युग ३४. गवाळी ३५ बनरावन ३६. बस ३७ बजायो ३८. कलिजुग ३९. नौ ४०. आगे ४१. दसवैं ४२ कालगै ४३. री ४४ देस ४५ पसारौ ४६. बैठां।

जीव के कल्याणार्थ (ऐसी) खेती करो (जो कल्याणप्रद हो) उसकी रक्षा के लिये (उस खेत में) रक्षक को भेजो।

(सावधान रहो, तुम्हारी उस साधनारूपी खेती को नष्ट करने के लिये) दैत्य (आसुरी भाव और) शैतानी (माया अथवा नास्तिक भाव) घूमेंगे (ऐसा न हो कि वे) तुम्हारी (सद्) मति (रूपी) मंजरी को खा जायं।

मन से (सांसारिक पदार्थों की ओर से) उदास रहकर जीव के (कल्याणार्थ) यत्न करो (और) मन को एकाग्र रखो।

जीवात्मा के लिये (जो ज्ञान रूपी) खेती करते हो (ऐसा न हो कि उसको माया रूपी) वायु दबादे–विकसित न होने दे।

(परिपक्व ज्ञान–क्षेत्र अथवा समाधि अवस्था में) न (मायारूपी) हरिण है न (मोह रूपी) हिरणी है (और) न (ही वहां विषय वासना रूपी) हरिआई (पशु ही) दिखाई पडेगा। न वहां (मन के संकल्प–विकल्प रूपी) मयूर (और) मयूरी हैं (और) न (वहां खेती को) नष्ट करने वाले (कालरूपी) चूहे हैं।

हे भाई! (तू) किसी ज्ञानी पुरुष को गुरु बना (जो तेरे मोह बंधन को) तोडने में समर्थ हो (तथा) तेरे मन (की विषयों से रक्षा कर सके)।

हे भाई! जिस (परमेश्वर की) आराधना राजा युधिष्ठिर ने की थी उसकी आराधना (तुम) करो।

योग से विहीन योगी (उस परमेश्वर को) भूल गये, माथा मूंडा कर भी (उनमें) किसी प्रकार की (परमेश्वर परायणता की) बुद्धि नहीं है।

इस कलियुग में दो व्यक्ति भूल गये– एक तो माता (और) एक पिता। पिता तो (यह) आशा लगाये बैठा है (कि मेरा यह लडका) हल चलायेगा (तथा) कुआं से *पानी निकालने के (अपने) कार्य पर जायेगा। मा (यह) आशा लगाये बैठी है (कि)* मेरे पुत्रवधू आयेगी (और) मेरे "विरद्" (यशोगान) की बधाई बजेगी।

हम (जांभोजी का स्वयं की ओर संकेत) शंभू की आज्ञा से (यहां) आये हैं (और इस मरुस्थल पर धर्मशासन का) तख्त रचा कर बैठे हैं। (हम इतने समर्थ हैं कि अपनी) दोनों भुजा (रूपी) डंडे पर पर्वत को तौल सकते हैं। (और) उनको राई के समान घुमा सकते हैं।

समस्त जीवयोनि का हम एक पलक में भलीभांति से संतोषण करते हैं। (मैं) युगानुयुग मे सदासर्वदा रहने वाला योगी हूं (वही मैं इस धरती पर) अवतरित हुआ हूं (तथा) आसन जमा कर बैठा हूं।

(मुझे) हाली (किसी का अनुचर अपना भविष्य) पूछता है, पाली (गायें चराने वाला भी अपना भविष्यत् हिताहित) पूछता है, कलियुग के लोग (मुझसे) यही (साधारण बातें) पूछने वाले हैं।

धोरों की धरती पर घूमने *वाला "खिलेरी" (मुझे यह पूछता है कि)* मेरी बकरियां गुम हो गई हैं (सो बताइये)।

शिकारी (मुझे) पूछता है कि (मेरे) कौन से अवगुण के कारण (धनुष पर) चढा बाण (शिकार पर) चोट लगाने से चूक जाता है?

अरे मूर्खो (और संसार के अनित्य पदार्थों पर) मुग्ध रहने वाले गवारो! (तुम ऐसे ही) रहे (तुम केवल) मजदूरी करो (तथा अपनी) पेट भराई करो। (क्योंकि तुम कल्याण की कामना करने वाले हो ही नहीं) अहह! (तुम) जीवमात्र पर (कभी) घात न करो, महल में बैठा राजा (मुझसे) पूछता है (कि) स्वामीजी! हमारी आयु कितने (वर्षों की) है! (यही बात मुझसे) हाथ में सुपारी लेकर धाकर पूछता है और यही बात ठाकुर (मुझसे) पूछता है। बहुत सी बाझ स्त्रियां (मुझसे) पूछती हैं (कि) हमारी प्रारब्ध कैसी है (अथवा) कौनसी प्राप्ति से हमारी (कोख भरेगी)।

(मैंने) त्रेतायुग में हीरों का व्यापार किया (और) द्वापर में (श्री कृष्ण के रूप में) गायें चराई। (उस समय मैंने गोचारण काल में) वृन्दावन में बंशी बजाई (और यहां इस) कलियुग में (मैंने) बकरियां चराई।

हमने भूतकाल में नव (आततायियों के) अगुवों को (मृत्यु के रास्ते) लगाया, दसवीं बार "कालंग" (नाम के राक्षस) की बारी है।

(हमने) उत्तम (मरु) देश की (धरती पर अपने धर्म) प्रचार के कार्य का आरोपण किया है (और वहां के लोगों के पाप–ताप को छलने के लिये मैं) जुवारी (उनसे) खेलने बैठा हूं।

(मैंने) एक खंड में बैठे हुवे भी नवखंड को जीत लिया, कहो ! ऐसा भी तुम्हें (कोई) जुवारी मिलेगा?

(७१)

धवणा[1] धूजै पाहण पूजै, बेफरमाई[2] खुदाई
गुरु चेलै[3] कै पाअे लागै[4], देखो ! लोग अन्याई
काठी कणजो[5] रुपा रैहण[6], कापड़ माह[7] छिपाई
नीचा पड पड़[8] तानै[9] धोकै[10], धीरो रे हरिआई
ब्राह्मण[11] नाऊं[12] लादण रूड़ा, बूता नाऊं कुता[13]
वै[14] अपहानै[15] मोह बतावैं, वैर जगावैं सुता[16]
भूत परेती[17] जाखा खाणी[18] यह[19] पाखड पखाणो[20]
बल बल[21] कूकस कांय दलीजै, जामै[22] कणु[23] न दाणूं[24]
तैल लीयो खल[25] चोपै[26] जोगी, खल[27] पण[28] सूंधी[29] बिकाणो[30]
कालर बीज[31] न बीज[32] प्राणी[33] थल[34] सिर[35] नकर[36] निवांणो[37]

---

१ धवणां २. बेफुरमाण ३. चेले ४. लागे ५. काठीकणंज्यौ ६. रेहण ७. माहिं ८. पडि पडि ९. तिहिनै १० धोकैं ११. बांभण १२. नाऊं १३ कूता १४. वै १५. पहानैं १६ सूता १७. प्रेती १८. खैंणी १९ अे २०. प्रवाणों २१. बलिबलि २२ जिहिंमैं २३ कणों २४. दाणौं २५ खलि २६ चोपे २७. खलि २८. पणि २९. सुहुंधी ३० बिकाणौं ३१. कालरि ३२. वीजि ३३ पिराणीं ३४. थलि ३५. सिर्न ३६ करि ३७ निवाणौं।

नीर गये छीलर कांय सोधो, रीता रह्या इवाणी[1]
भवंता ते फिरंता फिरंता ते भवंता, मड़े मसाणे तड़े तड़ंगे[2]
पड़े पखांणे ह्यांतो सिद्ध न कोई निज पोह[3] खोज[4] पिराणी[5]
जे नर दावो छोड्यो मेर चुकाई, राह तेतीसां की जाणी

जो अपनी गर्दन को हिलाकर प्रकम्पित करता है और प्रस्तर मूर्ति को पूजता है परन्तु (वह नहीं जानता कि) ऐसा करना खुदा का फरमान नहीं है। देखो ! संसार के अज्ञानी स्त्री–पुरुष कैसे अन्याई हैं। (जो पाषाण को पूजते हैं) पाषाण को पूजना एक प्रकार से गुरु का अपने शिष्य के पैरों पडना है क्योंकि प्रस्तर–मूर्ति मनुष्य के द्वारा ही निर्मित की जाती है फिर उसे पूजना गुरु का शिष्य के पैरों पडने जैसा ही है। जो मूर्तियां काष्ठ, लाक्षा तथा चादी की बनी होती हैं, जिनको लोग नाना वस्त्राभूषणों से ढक्कर रखते हैं, उनको लोग जमीन पर पडकर दंडवत् प्रणाम करते हैं, हरि आन ही वाले हैं, धैर्य रखो। अर्थात् ऐसे कार्य से परमात्मा कभी प्राप्त नहीं हो सकते।

धर्मरहित और ज्ञानविहीन ब्राह्मण से गधा अच्छा है तथा बुत से कुत्ता। कुत्ते भौंककर मार्ग का निर्देशन करते हैं पर अज्ञानी ब्राह्मण परस्पर के पुराने बैरभाव को जगा देता है। भूत–प्रेतादि को पूजना झख मारने जैसा है, यह प्रमाणभूत पाखण्ड है। उस भूसे का बार–बार क्यों मर्दन किया जाय जिसमें अन्नकण नहीं हैं? तिलो में से तेल निकाल लेने के बाद उसकी चौपाये के योग्य ही रह जाती है और वह खली सस्ते दामों पर बिकती है।

हे प्राणी ! ऊसर भूमि में बीज मत डालो और न रेतीली भूमि में तालाब ही बनाओ, ऐसा करना असफल प्रयत्न है। जो तालाब पानी से रिक्त हो चुका है उसको फिर पानी के लिये क्यों ढूंढना? ऐसा करने वाले रिक्त ही रहे।

जो साधु–वेशधारी इस पृथ्वी पर व्यर्थ में भटकते रहते हैं और नंग–धडंग रूप में श्मशानों में पडे रहते हैं और व्यर्थ में पाषाणों को पूजते हैं उनमें कोई सिद्ध पुरुष नहीं है। हे प्राणी! तू उनके भ्रम में न पडकर अपने असली मार्ग की तलाश कर। जिस मनुष्य ने द्वैतभाव को छोड दिया, इस संसार से अपना ममत्व चुका दिया, वह दैव गति को प्राप्त होगा।

(७२)+

वेद, कुराण कुमाया जालूं, भूला जीव कुजीव कुजाणी
बासंदर नाहीं नख हीरूं, धर्म पुरुष सिर जीवै पूरूं
कलिका माया जाल फिटाकर, प्राणी, गुरु की कलम कुरांण·पिछांणी
दीन गुमान करेलो ठाली ज्यों कण घातै घुण हांणी
साच सिदक शैतान चुकावो, ज्यों तिस धकावै पांणी

---

१ इवाणीं २. तरंगे ३. पो ४. खोजि ५. पिरांणी। + इस प्रति में यह सबद नहीं है।

मैं नर पूरो सर विणजो हीरा, लेसी जाकै हृदय लोयण अंधा रहा इवांणी
निरख लहो नर निरहारी, जिन चोखंड भीतर खेल पसारी
जंपो रे जिण जंपे लाभै, रतन काया अे कहांणी
काहीं मारुं काहीं तारुं, किरिया विहूंणा परहथ सारुं
शील दहूं उबारुं उन्है, अेकल अेह कहांणी
केवल ज्ञानी थिलसिर आयो, परगट खेल पसारी
कोड़ तेतीसो पोह रचावणहारी, ज्यों छक आई सारी

अज्ञानी मनुष्य और दुष्ट प्राणी अपनी मिथ्या जानकारी से ऐसा कहते हैं कि वेद--पुराणों ने केवल मायाजाल उत्पन्न किया है। अग्नि केवल अग्नि ही नहीं है, यह देवताओं मे अंगूठी में हीरे के समान है, पूर्ण पुरुष ने इसका सृजन धर्म हित के लिये किया है।

हे प्राणी! कलिकाल का माया जाल धिक्कारने योग्य है, गुरु की आज्ञा और उसकी कार्यप्रणाली को पहचानना चाहिये। धर्म और जाति का अभिमान तुझे सब ओर से रिक्त कर डालेगा, जिस प्रकार अन्न कण को घुण हानि पहुंचाता है। सच्चाई को रखकर और भगवान की बलैयां लेकर, शैताऩ को इस प्रकार मिटाया जा सकता है जिस प्रकार पानी से प्यास को मिटाया जा सकता है।

मैं पूर्ण पुरुष हू, मुझसे ज्ञानरूपी हीरों का वाणिज्य करलो, पर ऐसा वे ही करेगे जिनके हृदय की आंखे खुली हैं, अधे वैसे ही रहेगे। मुझ निरहारी को देख कर प्राप्त करो, जिसके पृथ्वी के चारों खंडों में अपनी लीला का विस्तरण किया है। अरे! उसका जप करो जिसके जपने से लाभ है और जिसके जपने से दिव्य काया की प्राप्ति होती है। मैं किसी को मारता हू, किसी का उद्धार करता हू, जो क्रिया से विहीन हैं वे यम के हाथों पडेंगे। मैं शीतलता देता हूं और भक्तो को नाना पापो की उष्णता से उबारता हू, मेरी यही एक कहानी है। मैं कैवल्य ज्ञानी इस मरुस्थल भूमि पर आया हूं, मैंने प्रत्यक्ष ही अपने खेल का प्रसार किया है। मैं मनुष्यों को तेतीस कोटि देवताओं के मार्ग पर अग्रसर करने वाला हूं, जो मेरे पास आये, वे तृप्त हुए।

(७३)

हरी कंकहड़ी मंडप मैंड़ी, जहां[१] हमारा वासा
चार[२] चक[३] नवदीप थरहरै[४] जो आपो परकासूं[५]
गुणिया[६] म्हारा सुगण[७] चेला, म्हे सगुणा[८] का दासूं[९]
सुगुणा[१०] होय से[११] स्वर्गे[१२] जासैं[१३], नुगरा[१४] रहा[१५] निरासूं[१६]
जाका[१७] थान[१८] सुहाया[१९], घर बैकुंठै[२०] जाय[२१] संदेसो[२२] लायो[२३]

---

१. जाहां २. चारि ३. चंक ४. थरैहहै ५ प्रकासां ६ गुणीयां ७. सगुणां ८. सुगणा ९ दासौं १०. सुगणां ११. होइसैं १२. सुरगे १३ जाइसैं १४. निगुरा १५ रह्या १६. निरासौं १७. जांका १८. थांन १९. सवाया २०. बैकुंठे २१. जहां २२. संदेसा २३ ल्यायौं।

अमियां ठमियां[1] अमृत भोजन मनसा पलंग[2] सेज निहाल बिछायों
जागो जोवो जोतन खोवो, छल[3] जासी संसारूं[4]
भणी न भणवा[5] सुणी न सुणवा[6] कही न कहवा[7] खडी न खडवा
रे भल कृषाणी[8] ताकै[9] करण न घातो[10] हेलो[11]
कलि काल जुग वर्तै[12] जैलो[13], तातै[14] नाहीं सुरां सुं मेलो[+]

हरियाली से आच्छादित कंकेडा वृक्ष ही हमारा मडप (और) मंदिर है, जहां हमारा निवास है। यदि मैं अपने स्वरूप को प्रकट करूं तो चतुर्दिक (और) नवद्वीप कम्पायमान हो जायं। (जो) गुणवान हैं (वे) हमारे निष्ठावान शिष्य हैं, हम गुणवानों के दास हैं। (जो) उत्तम गुणों से युक्त होंगे (वे) स्वर्ग जायेंगे (पर) नुगरे निराश ही रहेंगे। (जो) उत्तम गुणों से युक्त हैं उनका स्थान सुहावना है, (उनका) घर बैकुण्ठ है, ऐसा (मैं) जाकर संदेशा लाया हूं। (जो उत्तम गुणों से युक्त हैं उन्हें) अमृत जैसे मीठे भोजन, मन इच्छित बिछी हुई आनन्द देने वाली शयया मिलेगी। हे मनुष्यो! जाग्रत होवो (और) देखो। (अपने जीवन की अमूल्य) ज्योति को नष्ट न करो। एक दिन तुम भी संसार में (मृत्यु के हाथ) छले जाओगे। हे भले खेतीहरो! मैं उनके कानों में मेरे ये सदुपदेश नहीं डाल रहा हूं जो मेरे कथित शब्दों का उच्चारण नहीं करते हैं, मेरे श्रवण करने योग्य उपदेश को नहीं सुनते हैं, मेरी कही हुई बात का अनुसरण नहीं करते हैं (और) मेरे द्वारा उत्पादित आचारो का आचारण नहीं करते हैं। जिनमें कलियुग के भाव बरतते हैं उनका देवताओं से मिलाप नहीं होगा।

(७४)

कडवा मीठा भोजन भखले[15], भख[16] कर देखत खीरूं[17]
धर आखरड़ी सांथर सोवण, ओढण ऊना चीरूं[18]
सहजैं[19] सोवण पोह का जागण, जे मन रहिवा[20] थीरूं[21]
स्वर्गे[22] पहली[23] सांभल[24] जीवड़ा[25], पोह उतरबा[26] तीरूं

खारे–मीठे भोजन का उपभोग कर और खीर को भी चखकर देख ले। (अनन्त काल में) पृथ्वी पर ही आसन जमकर सोना होगा तथा ओढने के लिए ऊपर गर्म कपड़ा होगा।

जिनका मन स्थिर रहता है (उनका) सहज भाव से ही तो सोना होता है (और हरि भजन के लिये) ब्राह्ममुहूर्त में जागरण।

हे जीव! भवसागर के मार्ग से पार होने के लिये (और) स्वर्गप्राप्ति के लिये (मेरे उपदेश को) सुन।

---

१. अमीयां ठमियां २. इस प्रति में "पलंग" वाक्य नहीं है। ३. छलि ४. ससारो ५. भणिबा, इस प्रति में "गुणी न गुणबा" पाठ अधिक है ६. सुणिबा ७ कहिबा ८. 'क्रिसांणी ९. तिहिंकै १०. घातों ११. हेलौं १२. बरते १३. जहलो १४. ताछै + इस प्रति मे आगे ऐसा पाठ है– नहीं सुरां नरां देवां सों मेलो। १५. भीखले १६ विष १७. खीरों १८. चीरों १९ सहजे २०. रहबा २१. थीरो २२. सुरग २३. पहेली २४. साभलि २५ जिवडा २६. उतरिबा

(७५)

जोगी रे तू जुगत[1] पिछांणी, काजी रे तू[2] कलम कुरांणी
गऊ विणासो काहे तानी[3], राम रजा क्यों[4] दीन्ही दानी[5]
कान्ह चराई रनये यानी, निरगुण रूप हमें पतियानी[6]
थल शिर रह्यो अगोचर यानी[7], ध्याय[8] रे मुंडिया पर दानी[9]
फीटा रे अणहोता[10] तानी[11], अल्हा[12] लेखो लेसी जानी[13]

हे योगी! तू योग की युक्ति जान, अरे काजी! तू कुरान के कलमों को पहचान। (अरे तुम) किस अर्थ के लिये गोवध करते हो? भगवान ने दानी बन कर यह आज्ञा तुम्हें कैसे दे दी?

श्री कृष्ण ने जंगल में उन गऊओं को चराया था। श्री कृष्ण के उस निर्गुण रूप पर हमें विश्वास है जिसको आंखों से देखा नहीं जा सकता (और) वाणी से जिसका रूप वर्णन नहीं किया जा सकता, वही (परमात्मा) मरुस्थली पर स्थित है, अरे मुण्डित साधु उसका ध्यान कर। अरे! (वे) धिक्कारने योग्य हैं जिन्होंने अनहोनी बात की। यह (निश्चय) समझो ! अल्लाह उनसे हिसाब मांगेगा।

(७६)

तन मन[14] धोइये संजम हुइये[15] हरख[16] न खोइये
ज्यूं ज्यूं[17] दुनियां करै खुवारी, त्यूं त्यूं किरिया पूरी
मुग्धा[18] सेती[19] यूं[20] टल[21] चालो, ज्यूं खडकै पात धनूरी[22]

शरीर (और) मन को (यथाक्रम) पवित्र कीजिये, संयमशील बनिये (और) प्रसन्नता को नष्ट न होने दीजिये। ज्यों ज्यों संसार तेरी निन्दा करता है त्यों ही त्यों तू तेरे कर्त्तव्य कर्म पूरे कर। मुग्धा स्त्रियों से इस प्रकार बचकर चलो जैसे हरिण धनुषबाण की टंकार सुनकर दौड जाता है।

(७७)

भूला लो भल भूला लो[23], भूला भूल न भूलूं[24]
जिहिं[25] ढूंठड़िये पान[26] न होता, ते[27] क्यों[28] चाहत फूलूं[29]
को को कपूर घूंटीलो, बिन घूंटी नहीं जाणी[30]
सत गुर होयवा सहजे चीन्हबा[31], जाचंध[32] आल[33] बखांणी
ओछी किरिया[34] आवै फिरियां, भ्रांती[35] भिस्त[36] न जाई
अन्त खुदाबन्द[37] लेखो[38] लेसी, पर[39] चीन्है नहीं लोकाई

---

१ जुगति २. तूं ३ काहेकेतानी ४ क्यूं ५ दांनी ६ पतियाणी ७. बाणी ८. ध्याइ रे ९. दांनी १० अणहूता ११ ताणी १२ अल्ला १३. जांणी १४. न्हाइये १५ होइये १६. हरखि १७ ज्यों ज्यों १८. मुगधा १९ हूतैं २०. ऊं २१. टलि २२. पासिधनूरी २३. लौ २४. भूलों २५ जेहि २६ पान २७. से २८. क्यूं २९. फूलों ३०. जांणी ३१. चीन्हिवा ३२. बंध ३३ आलि ३४. क्रिया ३५ भ्रांति ३६ भिसत ३७. खुदाइबद ३८. लेखा ३९. पणि।

कण विन[1] कूकस रस विन[2] वाकस, बिन किरिया[3] परिवारूं[4]
हरि विन देहरै जाण नं पावैं[5], अम्यारायं[6] दवारूं[7]

(जो) आत्मविस्मृत हैं उनके भुलावे में (तुम अपने को) न भूल जाओ। लक्कड के जिस सूखे ठूंठ पर पत्ते भी नहीं होते, उससे फूलों की चाह क्यों रखी जाय? कोई–कोई (पूर्ण योगी) अपने प्राणों को पूरक क्रिया से पीते हैं (उन्हें बिना पीये आत्मा) नहीं जानी जा सकती। (जो) सतगुरु (होने योग्य) है (वह) सहज ही में पहचाना जा सकता है (परंतु) निपट अंधे व्यर्थ की बकवास करते हैं। घटिया कर्म करने से (मनुष्य को) पुनः संसार में जन्म लेना पडता है (और जिसके हृदय में सतगुरु के प्रति) भ्रांति है (वह) स्वर्ग में नहीं जा सकता। अन्ततोगत्वा प्राणी से ईश्वर (उसके शुभाशुभ कर्मों का) हिसाब लेगा परंतु संसार के लोग (इस बात को) नहीं जानते।

(जैसे) अन्नकरण से रहित भूसा (तथा) बिना रस का वाक्य (व्यर्थ होता है वैसे ही) शुभकर्मों से रहित परिवार व्यर्थ होता है।

अरे! शरीर से बिना हरि भक्ति किये विष्णु के द्वार पर कोई नहीं जा सकता।

(७८)

नवै पोल[8] नवै दरवाजा, अहूंठ कोड़[9] रूं[10] राय जड़ी[11]
कांयरे[12] सींचो बनमाली, इह[13] वाड़ी तो भेल पड़सी
सुवचन बोल सदा[14] सुहलाली[15]
नाम[16] विष्णु[17] को हरे सुणो[18], घण तन गड़बड़ कार्यो वार्यो
निज मारग तो विरला कार्यो निज पोह[19] पाखो पार[20] असी पर[21] जाण[22]
गाहमै[23] मैं[24] गायो गूणो[25]
श्रीराम में मति थोड़ी, जोय जोय कण बिन[26] कूकस कार्यो[27] लेणो

(इस) शरीर पर (साढे तीन) करोड़ रोमावली है (तथा इसके) नव द्वार (और) नौ दरवाजे हैं। (यह शरीर एक प्रकार से एक बाड़ी है) हे बनमाली ! इसको किसलिये सींचते हो? यह बाड़ी तो एक दिन नष्ट हो जायेगी।

(तू) सदा (सबके प्रति) सुलालित्यपूर्ण अच्छे वचन बोल। हरि–विष्णु का नाम श्रवण कर, अधिकांश गडबड (शब्द) क्यों बोलता है?

सच्चे मार्ग पर तो कोई बिरला ही (गया) सच्चे मार्ग से (जो) वंचित रह गया (उसे) ऐसा समझो (उसने) खलिहान में (अन्नरहित) "गुणे" का ही मर्दन किया।

(जिस प्राणी की) मति श्रीराम में बहुत कम है, देखो! देखो! (ऐसा कर) अन्नकण रहित भूसे को क्यों लेना चाहिये?

---

१. विण २. बिण ३. क्रिया ४. परवारो ५. पावै ६. अंवाराय ७. दवारों ८. पोलि ९. कोडि १०. रौं ११. जडी १२. काहेरे १३. इंह १४. सदां १५ सुहै १६. नांव १७. बिसन १८. सुणौं १९. पो २० परि २१ परि २२. जाणि २३. मगाह २४. मगाह्यो २५ गूणौं २६. बिण २७. इसमे "कार्यों" नहीं है।

विशेष – मिलाइये – नव दरवाजा नरक का, निसदिन वह निसंक
दसवें की खिडकी खुल्यां, बूंदीजै दरबंक। जीवसमझोतरी

(७६)

यारा पोल[1] नवे दररा जी राय अथर[2] गढ थीरुं[3]
इस[4] गढ कोई थिर[5] न रहिया, निश्चै[6] चाल[7] गया गुरु पीरुं[8]

(इस शरीर में) बाहर प्रतोली (और) नव–द्वार देखे जाते हैं। इस अस्थिर गढ (रूपी शरीर में जीवात्मारूपी) राजा स्थित है। (इस शरीर रूपी) गढ में कोई भी स्थिर नहीं रह सका (यह) निश्चय ही है कि गुरु पीरों का शरीर भी चला गया।

विशेष – मिलाइये–काया काची झूंपड़ी, थिरचक रै न काय। (सबदग्रंथ)

(८०)

जेम्हां सूता[9] रैन[10] विहावै[+], वरतै[11] विम्या[12] वारुं[13]
चन्द[14] भी लाजै सूर भी लाजै, लाजै धर गेणारुं[15]
पवणा पांणी ये[16] पण[17] लाजै,[18] लाजै वणी अठारा[19] भारुं[20]
सप्त पताल फुणींदा लाजै, लाजै सागर खारुं
जम्बू द्वीप का लाइया लाजै, लाजै धवली धारुं[21]
सिध अरु[22] साधक मुनिजन[23] लाजै, लाजै सिरजनहारुं[24]
सत्तर लाख इसी[25] पर[26] जंपा, भलै[27] न आवे तारुं[28]

यदि हमारे सोते रात्रि व्यतीत होकर सूर्योदय हो जाय, (तो) चन्द्रमा भी लज्जित होता है, सूर्य भी लज्जित होता है (और हमारे सोते रहने से) धरती आकाश (भी) लज्जित होते हैं। पवन (और) पानी, ये भी लज्जित होते हैं (तथा) अठारह भार वनस्पति (भी) लज्जित होती है।

सातवे पाताल मे सहस्त्र फनवाला (शेष नाग भी) लज्जित होता है (और) क्षारसमुद्र (भी) लज्जित होता है।

(हमारे सोने से) जम्बूद्वीप के (समस्त) लोग भी लज्जित होते हैं (और) पृथ्वी को धारण करने वाला बैल भी लज्जित होता है।

(हमारे सो जाने से) सिद्ध, साधक और मुनिजन भी लज्जित होते हैं (तथा समस्त ससार का) सृजन करने वाला परमात्मा भी लज्जित होता है (क्योंकि हम तो ससार को जगाने आये हैं अतएव हम सो कैसे सकते हैं?)

---

१. पोलि २. अथिर ३. थीरौं ४ इहि ५. थीर ६. निहचै ७. चालि ८. पीरों ९. सूता १०. रैण + इस प्रति में "तो" अधिक है ११. बरतैं १२. विबा १३. वारौं १४. चद १५. गेणारो १६ अे १७. पणि १८. लाजैं १९ अठारै २० भारौं "भारौं इस प्रति में "सप्त .. खारू" पक्ति नहीं है २१ धारौं २२. यह यहां नहीं है बल्कि साधक और मुनिजन के मध्य है २३. मुनियर २४ हारौं २५ असी २६ परि २७ वले २८. तारौं।

(हम तो उस परमात्मा को) जपते हैं (जिसको) सत्तरलाख अस्सी हजार (महापुरुषों ने जपा था, यदि हम सो जायेगे तो) फिर (ससार का) उद्धार करने (कौन) आयेगा?

विशेष.– सत्तर लाख अस्सी हजार पीर पैगम्बरों का परमात्मा को जपने से उद्धार हो गया था।

(८१)

भल पाखंडी पाखंड मंडा[1], पहला[2] पाप पराछत खंडा[3]
जा पाखंडी-कै नादे वेदे शील 'शब्दे वाजण पौण[4]
ता[5] पाखंडी नै चीन्हत कौण, जाकी[6] सहजै[7] चूकै आवा गौण[8]

(मुझ) पाखंडी ने अच्छा पाखंड रचा है (मैंने) पहले (तो अपने पाखड से) पाप का प्रायश्चित कर (उसे) खडित किया।

जिस पाखंडी के नाद से, वेद से, शील (और) शब्द से (प्राणरूपी) पवन झकृत होती है। उस (मुझ) पाखडी को कौन पहचानता है? (जो उस पाखडी को पहचान लेता है) उसका (जन्म मरणरूप) आवागमन सहज मे ही चुक जाता है।

(८२)

अलख अलख तूं[9] अलख न[10] लखना[11], तेरा अनन्त[12] इलोलूं[13]
कौनसी[14] तेरी करणी पूजै, कौनसै[15] तिहिं[16] रूप सतूलूं[17]

(हे) अलख! तू (वास्तव मे) अलख (ईश्वर है तू साधारण मनुष्य की) समझ से बाहर है। हे ईश्वर! तू अनंत है। (तेरा पार नहीं है। तू इतना अनंत है कि) तेरी कौनसी करणी की पूजा की जाय, उस कौनसे रूप से तेरी तुलना की जाय?

(८३)

जो नर घोड़े चढै पाग न बांधै, ताकी[18] करणी कौन विचारूं[19]
शुचियारा[20] होयसी[21] आय मिलसी[22], करडा दोजग खारूं
जीवतडै को रिजक न मेटूं, मूवां[23] परहथ सारूं[24]
हाथ न धोवै, पग[25] न पखालै, नाहरसिंह[26] नर काजूं[27]
जुग अनन्त अनन्त[28] बरत्या, म्हे सून[29] मंडल का राजूं[30]

जो मनुष्य घोडे पर चढता है न पगडी बांधता है, उसकी करणी के (संबंध मे) कौन (क्या) सोच सकता है?

---

१. मडो २. पहलूका ३. खडो (इस प्रति मे यह वाक्य नहीं है) ४ पोण ५. तिह ६ जिहिंकी ७. सहजे ८. गौंण ६ तूं १० जु ११ लेणां १२. अन्त न १३. लोइलो १४ कोनस १५ कौणस १६. तिहि १७ सेतूलों १८. तिर्हिकी १६ विचारो २० सचियारा २१ होइसै २२ मिलसैं २३ मुवां २४. सारो २५. पाव २६. नारसिंघ २७. काजौं २८ अनंता २६ सूनि ३० राजौं।

(जो) सुबुद्धि (अथवा) पवित्र होंगे (वे मुझसे) आ मिलेंगे (परन्तु) (जो) कठोर हृदय हैं (उनको) नरक में बड़ी मुश्किल होगी।

जीवितावस्था में (मैं किसी के) कर्म को नहीं मिटाता, अर्थात् वह अपना शुभाशुभ कर्म करने में स्वतंत्र है (परन्तु) मरणोपरान्त (बुरे कर्म करने वाला) पराये हाथों पडेगा।

(जो मनुष्य शुचिता के लिये) न हाथ धोता है। (और) न पैरों का प्रक्षालन करता है (वह) मनुष्य भगवान नृसिंह के योग्य (नहीं है)।

अनन्तानन्त युग व्यतीत हो गये (तब से ही) हम शून्य मडल के राजा हैं।

(८४)

मूंड़ मुंड़ायो मन मूड़ायो[1], मोह[2] अवखल दिल लोभी
अन्दर[3] दया नहीं सुर काने[4], निंद्या हड़ै[5] करोभी
गुरुगत[6] छूटी टोट पडैला[7], उनकी आवा[8] अेक पख सातो[9]
वे[10] करणी हूंता[11] खूंधा
असी सहस[12] नव लाख भवैला[13] कुंभी दोरै ऊंधा

(तुमने अपना) माथा तो मुंडाया है (परन्तु तुमने अपने) मन को नहीं मुंडाया अर्थात् साधु होकर भी तुम्हारा मन तो विषयासक्त ही रहा, मन का मोह (और) लालची हृदय (तेरा) नाश (करने वाला है।)

(तेरे हृदय) में दया नहीं है (और न ही कभी तुमने अपने) कानों से देवताओं का गुण–कीर्तन ही सुना है (तूं दूसरों की) निंदा (अथवा निद्रा का) अपहरण करता है (यह तेरे लिये) शोभनीय नहीं है।

(यदि) गुरु की शरणागति छूट गई तो (तूझे भारी) हानि होगी, खोटे कर्म करने वाले की समस्त आयु व्यर्थ चली गई (वह यमदूतों द्वारा) रौंदा जायेगा। (वह) नवलाख अस्सी हजार (वर्ष पर्यन्त अनेक जीवयोनियों में) भटकता रहेगा (तथा) कुंभीपाक में (बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप) उल्टा लटकेगा।

(८५)

भोम भली कृपाण भी भला[14] खेवट करो कमाई
गुरु[15] प्रसाद[16] काया गढ खोजो, दिल भीतर[17] चोर न जाई
थलिये आय सतगुरु परकाश्यो[18] जोलै पडी लोकाई
एक खिणमें[19] तीन भवन[20] म्हें पोखां, जीवा जूण[21] सवाई
करण[22] समो[23] दाता[24] न हूवो[25], जिन[26] कंचन[27] बाहूं[28] उठाई

---

१ मुंडायो २. मुंहि ३. अंदरि ४. कांने ५ हडें ६. गुरगत ७ पडैंला ८. आव ९. सातो १०. वै ११. हूतै १२. सहंस १३. भवैला १४ भलो १५. गुर १६ परसाद १७ भीतरि १८. परकासो १९ माहे २० भवण २१. जूणि २२. इसमे "को" अधिक है। २३ सबो २४. दातार २५. हूवों २६. जिणि २७ कंचण २८ बांह।

सो ईक[1] वीसा[2] कवल न वेडी, सुरह सुवछ दुहाई
मेरे समो[3] कोई[4] केर न देखो[5], सायर जिसी तलाई
लंक सरीसो कोट न देख्यो[6], समद[7] सरीखी खाई
दशरथ सो कोई[8] पिता न देखो[9], देवलदे सी माई
सीत[10] सरीखी तिया न देखो, गरब न करियो काई
हनमत[11] सो कोई पायक न देख्यो[12], भीम[13] जैसा[14] सबलाई
रावण सो कोई राव न देख्यो[15], जिन[16] चोह[17] चक आण फिराई
एक तिरिया के[18] राहा[19] बेधी, लंका फेर[20] बसाई
संखा मोहरा[21] सेतम सेतूं[22] ताक्यों[23] बिलगै[24] काई
ब्राह्मण[25] था ते वेदे[26] भूला, काजी कलम गुमाई
जोग विहूणा[27] जोगी भूला मुंडिया[28] अकल न काई
यह[29] कलजुग[30] में दोय जन[31] भूला, एक पिता एक माई
बाप जाणै[32] मेरे हलियो टोरै, कोहर सींचण जाई
माय जाणै मेरे बहूटल आवै, बाजै विरद[33] बधाई
म्हे शंभू का फरमाया आया, बैठा तखत रचाई
दोय[34] भुज डंडे परबत तोलां, फेरां आपण राई
एक पलक में सर्व संतोषां, जीयाजूण[35] सवाई
जुगां जुगां को जोगी आयो, बैठो आसन[36] धारी
हाली पूछै पाली पूछै यह[37] कलि पूछणहारी
थली फिरंतो खिलेरी[38] पूछै, मेरी गुमाई छाली
बांण चहोड[39] पारधियो पूछै, किहिं[40] अवगुण[41] चूकै चोट हमारी
रहो रे मूर्खा मुग्ध गवारा करो मजूरी पेट भराई[42]
है है जायो जीव न घाई
मैडी बैठो राजेन्द्र[43] पूछै, स्वामीजी कतीअेक[44] आयु[45] हमारी
चाकर पूछै ठाकर[46] पूछै, और पूछे कीर कहारी
सोक[47] दुहागण[48] तेपण[49] पूछै, ले ले हाथ[50] सुपारी
बांझ तिरिया[51] बहुतेरी पूछै, किसी परापति म्हारी

---

१ इक २. बीसां ३ सवौं ४. कई ५ देखो ६. देखौं ७. समंद ८. सरीखो ९. देखौं १०. सीता ११. हणवंत १२. देखौं १३. भीव १४. जीसी १५. देखों १६. जिणि १७. चहुं १८. कै १९. राहे २०. फेरि २१. मोरा २२. सेतों २३. ताक्यूं २४. बिलगे यहां "न" अधिक है। २५. बांभण २६. बेदे २७. बिहूणा २८. मुंडियां २९ इहिं ३० कलिजुग ३१. जण ३२. जाणैं ३३. विरध ३४. दुह ३५ जीवाजुणि ३६ आसण ३७ अे ३८. खीलहरी ३९. चहोडि ४०. क्यूं ४१. इसमें नहीं है। ४२ छलाई (छालाई) ४३. राजिदर ४४ कितीइक ४५. आव ४६ ठाकुर ४७. सोकि ४८. दुहागणि ४९. तेपणि ५० हाथि ५१. तिया।

त्रेता जुग में हीरा विणज्या, द्वापर गऊ घराई[1]
वृदायन[2] में वंसी बजाई, कलजुग धारी छाली
नव[3] खेड़ी म्हैं आगै खेड़ी, दशवैं कालंगड़ै[4] की बारी
उत्तम देश[5] पसारो[6] मांड्यो रमण बैठो जुवारी
एक खंड बैठा नव खंड जीता, को ऐसो लहो जुवारी

(हे मनुष्यो ! जब) भूमि अच्छी है (और) किसान भी भला है (तब ऐसी स्थिति मे) विवेकपूर्ण श्रम से (अच्छा) उत्पादन करो अर्थात् ज्ञान लाभ करो।

गुरु के कृपा प्रसाद से शरीर (रूपी) गढ में (आत्मतत्व को) खोजो (ऐसा न हो कि तुम्हारे) हृदय में (काम क्रोधादि) चोर प्रवेश कर जायं।

मरुस्थल भूमि में "सतगुरु" प्रकाशमान हुआ है (उसके दिव्य प्रकाश में तुमसे जो ब्रह्मतत्व) छुपा हुआ पड़ा है (उसे भली भांति देखलो)।

तीन लोक की (समस्त) जीव योनि का हम एक क्षण में, भलीभांति से पोषण करते हैं।

(राजा) कर्ण के समान कोई दानी नहीं हुआ, जिसने कंचन का दान देने के निमित्त (सदैव अपनी) भुजा को (ऊपर) उठाये रखा। उसने इक्कीस बार कपिला (गायो का दान) किया (जो) गायें अच्छा दूध देने वाली थी।

अभिमान जैसा (कोई) खूंटा देखने में नहीं आया (`॥) समुद्र जैसी (विशाल) तलैया।

लका जैसा (कोई अन्य) दुर्ग देखने में नहीं आया (और) समुद्र जैसी (दूसरी कोई) खाई।

(राजा) दशरथ जैसा (कोई) पिता देखने में नहीं आया (तथा) "देवळदे" जैसी माता।

सीता जैसी स्त्री देखने में नहीं आई जिसने (कभी) किसी प्रकार का (भी) अभिमान नहीं किया।

हनुमान जैसा (कोई) पाद-सेवक नहीं देखा गया (तथा) भीम जैसी (किसी मे) शक्ति नहीं देखी गई।

रावण जैसा कोई राजा नहीं देखा गया जिसने चारो ओर (अपने) सामर्थ्य की दुहाई (का डंका बजवाया। वह रावण) एक स्त्री के कारण (राम के द्वारा) मारा गया (तथा) लका का (राम द्वारा) पुनर्वास हुआ। (हे मानव ! तू) व्यर्थ मे ही उन शख मोहर (आदि के मोह) में क्यों लीन होता है? (जो) ब्राह्मण थे वे (अपने) वेदो के (अभिमान मे) भूल गये (तथा) काजी कलमो के (अभिमान मे) गुमराह हो गये। योग से विहीन (नाम मात्र के) योगी (अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को) भूल गये। माथा मुंडा लेने पर भी (उनमें आत्मतत्व को जानने की) अक्ल नहीं आई है। इस कलियुग

---

१ गवाली २ बनराबन ३. नौ ४. काल गैरी ५. देस ६. पसारौ।

में एक माता और एक पिता ये दो जने (पुत्रासक्ति में अपने को) भूल गये। पिता (अपने पुत्र से आशा रखकर) यह जानता है कि पुत्र मेरे हल जोतकर (खेत) बोयेगा (और) कुएं से पानी निकालने के कार्य पर जायेगा। माता समझती है कि मेरे बहू आयेगी (तथा उसके आगमन पर) बधाई के बाजे बजेंगे। (किंतु) हम तो ईश्वर के भेजे हुवे आये हैं (और) तख्त (अनुशासन) रचाकर बैठे हैं।

दोनों भुजाओ की डंडी बनाकर पर्वतो को तौलते हैं (अर्थात् मूर्खों को संतुलित करते हैं और अपने विचारो को प्रसारित करते हैं। भलीभांति से समस्त जीवयोनियो को एक ही क्षण मे संतुष्ट (तृप्त) करते हैं।

(मैं) युगानुयुग का योगी (धर्मोपदेश के लिये) आसन जमा बैठा हूं।

हलवाहा पूछता है (और) चरवाहा पूछता है, ये कलियुग के लोग (ऐसी ही बातें) पूछने वाले हैं। मरुस्थल (भूमि पर) घूमता हुआ गडरिया पूछता है कि (क्या) मेरी गुमी हुई बकरी मिल जायेगी?

शिकारी बाण चढाकर पूछता है (कि) हमारा आघात किस दोष के कारण चूक जाता है? हे मूर्खो! तुम तो गवारपन में ही मुग्ध हो रहे हो (तुम तो केवल) मजदूरी करो (और अपना) पेट पालो। पर अरे! अरे! जीवो पर घात न करो।

महल में बैठा राजेन्द्र पूछता है (कि) हे स्वामीजी! हमारी आयु कितनी है? (इसी प्रकार) चाकर पूछता है, ठाकुर पूछता है और कीर (भील तथा) कहार पूछता है। हाथ में सुपारी ले–लेकर वे (वे स्त्रियां) भी पूछती हैं (जो) सौत (तथा) दुहागिन हैं। बांझ स्त्रियां तो बहुत ही पूछती हैं (कि) हमारा भाग्य कैसा है?

(हमने) त्रतायुग में हीरों का व्यापार किया था, द्वापर मे गोचारण किया। वृंदावन मे वंशी बजाई, कलियुग में बकरियां चराई। नौ दुर्दान्त (राक्षसों को) हमने पहले ही (यमलोक) भेज दिया, दशवीं बार "कालग" (राक्षस) की बारी है।

(हमने) उत्तम देश (मरुस्थल भूमि) मे (अपने धर्म) प्रसार का आरभ किया है, (मैं) जुवारी खेलने बैठा हूं अर्थात् सबको जीत कर अपने द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर लगा दूंगा। (मैं) एक खंड मे (विशेष में ही) बैठा हुआ नव खड को जीत लूंगा, कहो, ऐसा जुवारी भी (कहीं) मिलता है?

(८६)

जुग जागो जुग जाग[१] पिरांणी, कांय जागंता सोवो
भलकै बीर विगोवो होसी[२] दुसमन[३] कांय लकोवो
ले[४] कूंची दरबान बुलावो, दिल ताला दिल खोवो
जंपो रे! जिण जंप्यौ[५] जणीयर[६], जपसी सो जिणहारी
लह लह[७] दाव[८] पड़ंता खेलो[९], सुर तेतीसां सारी

---

१ जागि २. होयसी ३ दुसमण ४. लै ५ जंपो ६ जणियर ७. लहि लहि ८. डाव ९. खेलो।

पवन[1] बंधान[2] कायागढ़ काची, नीर छलै[3] ज्यूं पारी
पारी विनसै[4] नीर दुलैलो, ओपिंड काम[5] न कारी
काची काया दृढ[6] कर[7] सींचो, ज्यूं माली सींचै बाड़ी
ले काया बासंदर[8] होमो[9] ज्यूं इंधन[10] की भारी
शुचि[11] स्नाने[12] संजमे घालो, पाणी देह पखाली
गुर के वचने निंव[13] खिंव[14] घालो, हाथ[15] जपो जप माली
वस्तु[16] पियारी खरचो[17] क्यूं नाहीं, किंहि गुण राखो टाली
खरचे[18] लाहो राखे टोटो, विवरस[19] जोय निहाली
घर आगी[20] इत[21] गोवळवासो, कूंडी आधोचारी
आज मूवा कल[22] दूसर[23] दिन है, जो कुछ[24] सरै तो[25] सारी
पीछे[26] कलियर कागोरोलो, रहसी[27] कूक[28] पुकारी
ताण थकै क्यूं हार्यो नांही, मुरखा[29] अवसर[30] जोलै हारी

हे प्राणी! जगत की अज्ञान निशा से सावधान हो, क्या चैतन्य होकर भी सोते ही रहोगे? (अस्ताचल की ओर जाने वाले सूर्य प्रतिबिम्ब की तरह शीघ्र ही इस देह से) आत्मा का वियोग होगा (अत.) काम क्रोधादि शत्रुओं को (शरीर में प्रश्रय देकर) क्यो छिपाते हो?

(तत्ववेत्ता गुरु की ज्ञानरूपी) कुंजी से (हृदय पर पडे अज्ञानरूपी) ताले को दरवान से खुलवाओ। अरे (जीव) उस परमात्मा का जप सुमरण करो जिसका तत्ववेत्ता ऋषि मुनि ने सुमरण किया है। (जो) उसका जप करेगा वह कभी पराजित नहीं होगा।

(इष्ट कार्य की प्राप्ति के लिये तुम्हें) जिस वक्त भी अवसर हाथ लगे उस परमात्मा का सुमरण किया करो। वायु के बन्धन से बंधा हुआ यह शरीररूपी गढ कच्चा है। (यह शरीर) जल से भरी हडिया की तरह है। हडिया के फूटते ही (जैसे) पानी बह ज़ाता है (उसी प्रकार) यह शरीर है (जो जीवात्मा के निकलने पर) किसी काम नहीं आयेगा।

दृढ आस्था रखकर (इस) नाशवान शरीर को (ज्ञानरूपी जल से सींचो) जिस प्रकार माली (मधुर फल प्राप्ति के लिये) बाडी को सींचता है। यह शरीर लकडियों के गठ्ठर की तरह अग्नि मे झोक दिया जायेगा। पवित्र रहो, स्नान करो (और) संयमी होकर चलो, शरीर का शुद्ध जल से प्रक्षालन करो। गुरु की आज्ञानुसार नम्रतापूर्वक, क्षमाशील होकर चलो (और) हाथ से वनमाली के नाम की माला जपो।

---

१. पवण २. बंधाण ३ छलि ४ विणसै ५ कामिनी ६ दिढ ७ करि ८. बसंदर ९ होमौ १०. इंधण ११. सौच १२ सिनाने १३ नवि १४. खवि १५ हाथि १६ बस्त १७ खरचो १८. खरचै १९. विवरसि २० आगै २१ अत २२. कल्हि 23 दूजो २४ जे कछु २५ त २५ पीछै २७. रहिसैं २८. कूकि २९ मूरखा ३० अबसह अंतिम पंक्ति इस प्रति मे है 'हारो भूल्यो जुवारी"

प्रिय वस्तु को (अच्छे कार्य में) खर्च क्यों नहीं करते हो? किस काम के लिये उसे बचाकर रखते हो? (परोपकार में उस प्रिय वस्तु को) खर्च करने से लाभ है, बचाकर रखने से हानि है, उसे विरत समझो। (अपना वास्तविक) घर तो बहुत दूर है, यहां का तो अस्थायी प्रवास है, यह अल्पकाली निवास है।

(जो) आज मरा है वह 'कल' हो गया (फिर) दूसरा दिन मिला नये जन्म है। (तेरे से यहां) कुछ बन पड़ता है (तो उसे) बनाना चाहिये। बाद में कोई दूसरे जनकाक–कलरव की तरह रो–धोकर रह जायेंगे। हे बूढ़ी युवावस्था के रहते हुये मनोवृत्ति का निरोध किया नहीं, अब तेरी इस पराजय को देख।

(८७)

जाका[1] उमग्या समाघूं[2]
तिहि[3] पंथ के बिरला लागूं[4]
बीजा चाकर बीरूं[5]
रण शंख[6] धीरूं[7]
कवही झूझत रायूं[8]
पासै[9] भाजत भार्यो
तातै नुगरा[10] झूझ न कीयों

उस आत्म मार्ग पर कोई बिरले ही लगते हैं (बहुत से तो उस मार्ग पर अग्रसर होने से पूर्व ही विरत हो जाते हैं।)

(वे नाममात्र के) वीर हैं अन्यथा (वे) दास ही हैं। (जब) रण (भूमि) मे शंखनाद होता है (तब) धैर्यवान ही ठहरते हैं।

(जो नरों में) राजा होता है वही (आत्मबोधन के रणक्षेत्र मे) जूझता है। भगाड़ु तो उससे दूर ही दौड़ते हैं। इसलिये (जो) नुगरे हैं (वे आत्मप्राप्ति के लिये) युद्ध नही करते।

(८८)

गोरख लो गोपाल लो
लाल गवाल[11] लो
लाल लीलंग देवों
नवखंड पृथिवी[12] परगटियो
कोई[13] बिरला जाणत[14]
म्हारी[15] आदमूल[16] का भेवों

(उस परमात्मा का) गोरख (नाम) लो (चाहे उसके नाम रूप में) लाल (नंदलाल) ग्वाल (नाम) लो वह लीलाधारी देव है। (वही मैं) नवखंड पृथ्वी पर प्रकट हुआ हूं (परंतु) मेरी आदिमूल के रहस्य को कोई बिरला ही जानता है।

---

१ जिहिंका २. समाघो ३. तिहिं ४. लागौं ५. बीरौं ६. संख ७. धीरौं ८. रायौं ९. पासै १०. निगुरे ११ गुवाल १२. पृथमी १३. को १४. जांणै १५. म्हारा।

(८६)

उरधक धन्दा निर्द्धक[1] सूरुं[2]
नव[3] लख तारा नेड़ा न दूरुं[4]
नवलख धन्दा नवलख सूरुं[5]
नवलख धंधूकारुं[6]
ताह[7] परे रै तेपण[8] होता[9]
ताका[10] करुं[11] विचारुं[12]

चद्र नाडी से (पूरक क्रिया से) प्राणवायु ऊपर को (और) सूर्यनाडी से (रेचक क्रिया से) प्राण वायु की गति नीचे को रहती है। (प्राण साधना करने वाले योगी के लिये) नवलाख (संख्यावाला) तारा (मंडल) न नजदीक है (और) न दूर ही। (पर ये सब) नवलाख तारे (और) नवलाख सूर्य माया के प्रपंच हैं।

(मैं) उन सब से परे जो (ब्रह्म तत्व) है, उसका विचार अर्थात् कथन करता हूं।

(६०)

घोईस चेडा[13] कालंकेडा[14] अधिक कलावंत आयसैं
वे[15] फेर[16] आसन[17] मुकर[18] होय यसैंला[19] नुगरा[20] थान रचायसैं
जाणत भूला महापापी वहू[21] दुनिया[22] भोलायसैं
दिल का कूडा कुड़ियारा, उपंग वात चलायसैं
गुर कहणा[23] जो[24] लेवै नाहीं, दश[25] बंध घर[26] योसायसैं[27]
आप थापी महा पापी, दग्धी[28] परलै जायसैं
सतगुरु कै बेडे न चढै[29] गुर[30] स्वामी[31] नै[32] भायसैं
मंत्र[33] बेलु[34] ऋध[35] सिध[36] करसैं, दे दे[37] कार घलायसैं
काट[38] का घोडा[39] निरजीव[40] ता सरजीव[41] करसै[42]
तानै[43] दाल[44] चरायसैं
अधर आसन[45] मांड[46] बैसैंला[47] मूवा मडा हंसायसैं
जां जां पवणा[48] आसन पाणी, आसन[49] चंद आसन[50] सूर
आसन[51] गुरु आसन[52] संभराथले
कहै[53] सत गुरु[54] भूल[55] मत जाइयो, पडोला अभै[56] दोजखै

---

१. निरधक २ सूरो ३. छव ४. दूरौं ५. सूरो ६. कारो ७. ताहि ८. तापणि ६. होती १० तिहिंका ११ कहूं १२. विचारों १३. चेडा १४. कालंगैकेडा १५. वह १६. फेरि १७ आसण १८. मुकुर १६. बैसैं २०. निगुरा २१. बोह २२ दुनियां २३ गहणा २४. झोलीवैं २५. दस २६. धरि २७. व्योसायसैं २८ दगधी २६ चडै ३०. गुरु ३१. सामि ३२. न ३३. मंत्रि ३४. बेलू ३५. रिध ३६ इस प्रति में नहीं है ३७. दै दै ३८. काठ ३६. घोडानै ४०. निरजीत ४१ सरजीत ४२. करिसैं ४३. तहां ४४. दालि ४५. आसण ४६ माल्हि ४७. बैसैला ४८. पवण ४६. आसण ५०. आसण ५१ आसण ५२. आसण ४३ कहै ५४. गुर ५५. भूलि ५६. उभै।

चौबीस (प्रकार की) भूत (विद्या को प्रयोग मे लाने वाले) मायावी राक्षस हैं (वे देखने में) अधिकाधिक कलाधारी (के रूप मे संसार के सामने) आयेगे। वे अपने आसन को चक्रवत् घुमाकर (उस पर) जम कर बैठेंगे, (वे) निगुरे (समाज मे अपना) स्थान बनायेंगे।

(वह नराधम, यह) जानता हुआ भी कि मैं मिथ्या चमत्कार प्रकट कर रहा हूं, बहुतसी दुनियां को भुलावे में डालेंगे। हृदय से झूठा (वह) मिथ्यावादी मनोकल्पित बातों को प्रचारित करेगा।

जो गुरु की आज्ञा का पालन स्वीकार नहीं करेगे (वे) दसो विषयो को ही अपने घर में बसायेंगे। (जो) कपोल कल्पित विचारो की स्थापना करता है वह महापापी है (वह) दग्ध होकर सर्वनाश को प्राप्त होगा।

(वह) सद्गुरु रूपी जहाज पर नहीं चढेगा (और) न ही (वह) ईश्वर (तथा) गुरु को प्रिय होगा। (वे मदारी की भांति) रेत को (हाथ में लेकर) मंत्रोच्चारण कर ऋद्धि सिद्धि प्रकट करेगे (तथा धरती पर पानी आदि की) "कार" देकर (अपने मंत्र) चलायेंगे।

काठ के निर्जीव घोडे को (वे उसे) सजीव करेगे (तथा उसको) दाल खिलायेंगे। (वे) अधर आसन जमाकर बैठेंगे (और) मूवे मुर्दे को हसा देगे।

जिस जिसने हवा के सहारे आसन जमाया, पानी पर आसन जमाया, चन्द्राकार व सूर्य आसन लगाकर बैठा परन्तु हमारा समरास्थल पर गुरु का आसन है। गुरु कहते हैं (हे मानवो! पाखण्डियों के भुलावे में सतगुरु को) भूल मत जाना (अन्यथा) दोनों ओर से नरक में जाओगे।

(६१)

छन्दे मंदे बालक बुद्धे
कूड़े कपटे ऋध[१] न सिद्धे
मेरे गुरु जो[२] दीनी[३] शिक्षा[४]
सर्व अलिंगण[५] फेरी दीक्षा[६]
जाण[७] अजाण बहीया[८] जब जब
सर्व अलिंगण[९] मेटे[१०] तब तब
ममता हस्ती बंध्या[११] काल
काल पर काले परसत[१२] डाल[१३]
ध्यान न डोल[१४] मन न टलै[१५]
अहनिश[१६] ब्रह्म ज्ञान[१७] उच्चरैं[१८]

---

१. रिद्धे २. ज ३. दीन्ही ४. सिष्या (सिख्या) ५ अलींगण ६. दीष्या (दीख्या) ७ जांण ८. बहिया ९. अलिगण १०. मेटी ११. बांध्या १२. पसरत १३. डाले १४. डोलै १५. टरै १६. अहनिस १७. ग्यान १८. उचरै।

काया पत[1] नगरी मन पत[2] राजा
पंचात्मा[3] परिवारूं[4]
है कोई आछै, मही मंडल शूरा[5]
मन राय सूं झूझ रचायले[6]
अथगा थगायले
अबसा बसाय ले
अनवे माघ पालले
सत सत भाखत गुरु रायों
जरा मरण भो भागूं[7]

(वह मनुष्य) बालक सा (भोले) चरित्र वाला (और) मंद बुद्धि ही है (यदि वह कपटी मनुष्य को ऋद्धिसिद्धि संपन्न समझता है पर) मिथ्यावादी (तथा कपटी) के पास न ऋद्धि है (और) न सिद्धि (ही)।

मेरे गुरु ने (मुझे यह) शिक्षा जो दी है (वह यह कि तुम) सब (मनुष्यों को अपनी शिक्षाओ से) पवित्र बनाकर (धर्म मे) दीक्षित करना। जब जब (यह मनुष्य समाज) ज्ञान (मार्ग को छोडकर) अज्ञान के (रास्ते) चला है तब तब (भगवान ने अवतार लेकर उनके) पाप (मय सस्कारो का) नाश किया है।

(मनुष्य का) ममता (रूपी) हस्ती, मृत्यु से बंधा हुआ है, (और वह) काल बराबर (मनुष्य के शरीर रूपी) डाल को स्पर्श करता है। (उस काल से वही बच पाता है जिसका ईश्वर से) ध्यान न डोलकर (उसमे) अटल मन लगा हुआ है (तथा जो) रात दिन ब्रह्म ज्ञान का उच्चारण करता है।

शरीर ही नगरी है (जिसमे) मन ही राजा है (और) पचात्मा–पचकोश (ही जिसका) परिवार है। (इस) पृथ्वी मडल मे (क्या?) कोई ऐसा शूरवीर है (जो) मन (जैसे) राजा से युद्ध मांड सके?

(जिस ब्रह्म की) थाह नहीं है (उसकी) थाह ले ले (जो) अबसा है (उसको अपने अतस्तल मे) बसाले (और जिसके) मार्ग का पता नहीं है (उस पर) चल पड।

गुरुदेव सर्वथा सत्य कहते हैं (कि ऐसा जो करले उसका) जन्म–मरण (रूपी) भय (सदा के लिये) नष्ट हो जाता है।

विशेष – इन्द्रियपति मन, राजा। पचात्मा – प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान परिवार है। ऐसा भी अर्थ है।

---

१. पति २ पति ३ पंचआत्मा ४ परवारो ५ सूरा ६ रचायलो ७ भागो।

(६२)

काया कोट पवन कुटवाली, कुकर्म[1] कुलफ बनायो[2]
माया जाल भरम का संकल, यहु जग[3] रहीया[4] छायो[5]
पढ[6] वेद कुरांण कुमाया जालों, दंत कथा जग छायो[7]
सिद्ध[8] साधक[9] को एक मतो, जिन[10] जीवत मुक्त[11] दृढायो[12]
जुगा जुगा[13] को जोगी आयो, सत गुरु सिद्ध बतायो
सहज स्नानी[14] केवल ज्ञानी[15], ब्रह्मज्ञानी[16], सुकृत[17] अहल्यो[18] न जाई
क्यों क्यों[19] भणता क्यों क्यों[20] सुणता, समझ बिन[21] कुछ[22] सिद्धि[23] न पाई

(इस) शरीर (रूपी) गढ में प्राण (रूपी) कोतवाल है (और जिसके) अशुभ कर्मों की बनी अर्गला (लगी हुई) है। (इसके सांसारिक) माया प्रपच की साकल (बंधी) है, जगत के अधिकांश प्राणी (मायादि प्रपचों से) आच्छादित हैं।

वेद (और) कुरान को पढकर (जगत के अधिकाश लोगों ने) प्रपच को ही उत्पन्न किया है, (मिथ्या) दत कथाओ ने (इस ससार को) घेर रखा है।

(आत्मज्ञानी) सिद्ध पुरुष (और जिज्ञासु) साधक का (परस्पर) मतैक्य रहता है, (उन्होंने ही अपने) जीवनकाल में मुक्ति को दृढ किया है। युगानुयुग में (सदैव रहने वाला मेरा) योगी (गुरु) आया (और उसी मेरे) "सतगुरु" (ने मुझे) सिद्ध बताया।

(मैं वही) सहज--स्नानी अर्थात् स्वभाव से ही परम पवित्र केवल्य ज्ञानी (और) ब्रह्म को जानने वाला (सिद्ध) हूं (मेरा आदेश मानो तुम्हारा) सुकृत कर्म (कभी) व्यर्थ नहीं जायेगा।

(मैं) कुछ (और) ही कहता हू (और लोग यदि) कुछ और ही सुनते हैं (तो वे) मेरे उपदेश को समझे बिना कुछ भी (आत्म) सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

(६३)

आद[24] शब्द[25] अनाहद वाणी[26]
चवदै भवन[27] रहा[28] छल[29] पाणी
जिहिं पाणी से[30] अंड[31] ऊपना[32]
उपना ब्रह्मा इन्द्र[33] मुरारी

(सृष्टि के) आदि में शब्द (ब्रह्म और) अनाहत वाणी ही थी। (उसके पश्चात) चौदह भवनों में (सर्वत्र) पानी (ही पानी) भरा हुआ था। उसी पानी में से (एक) अंडा उत्पन्न हुआ (और उसी अंडे से) ब्रह्मा, इन्द्र (और) मुरारी उत्पन्न हुवे।

---

१. कुकरम २. वणाये ३. जुग ४. रहिया ५. छाये ६. पढि ७. थायो ८. सिध ९. साधिक १०. जिण ११. मुकत १२. दिढायों १३. जुगां जुगां १४. सिनानी (सिनाने) १५. ग्यानी (ग्याने) १६. ब्रह्मगियानी १७ सुकरत १८. अहल्यौं १९ क्यूं क्यूं २०. क्यूं क्यूं २१ बिना २२. कछु २३. सिद्ध (सुधि) २४. आदि २५ सबद २६ वांणी २७. भवण २८. रह्या २९. छलि ३० मां (भीतर) ३१. इंड ३२. उपनों ३३ इस प्रति में "अरु तिपुरारी" पाठ है।

सहस्र[1] नाम[2] सांई भल शंभु[3], म्हे[4] उपना आदि मुरारी
जद[5] मै रह्यो निरारंभ[6] होकर[7], उतपति धंधुकारी[8]
ना मेरै मायन[9] ना मेरे बापन, मैं अपनी काया आप सवांरी[10]
जुग छतीसों[11] शुन्य[12] ही वर्ता[13], सतजुग माही[14] सिरजी सारी
ब्रह्मा इन्द्र[15] सकल[16] जग थरप्या, दीन्ही करामात[17] केतीवारी
चंद सूर दोय[18] साक्षी[19] थरप्या, पवन पवनेश्वर[20] पवन अधारी
तद[21] म्हे रूप कियो[22] मैनावतीयो[23], सत्य व्रत[24] को ज्ञान उचारी
तद[25] म्हे[26] रूप रच्यो कामठीयो, तेतीसों[27] की[28] कोड[29] हंकारी
जद[30] मैं रूप धर्‌यो[31] वाराही, पृथवी[32] डाढ[33] चढाई[34] सारी
नरसिंह[35] रूप धर[36] हिरण्यकश्यप[37] मार्‌यो[38] प्रहलादो[39] रहियो[40] शरण[41] हमारी
बावन[42] होय[43] बलिराज[44] चितायो, तीन पैंड कीवी धर सारी
परशुराम[45] हो[46] क्षत्रीपन[47] साध्यो[48], गर्भ[49] न छूटो[50] नारी
श्रीराम शिर[51] मुकुट[52] बांधायो[53], सीता[54] के अहंकारी
कन्हड[55] होय[56] कर बंसी[57] बजाई, गऊ[58] चराई धरती छेदी काली[59]
नाथ्यो[60] असुर मार किये क्षयकारी
बुद्ध रूप गयासुर मार्‌यो, काफर मार[61] कियो बेगारी[62]
पंथ चलायो राह दिखायो, नौबर[63] विजय[64] हुई[65] हमारी
शेष[66] जम्भराज[67] आप अपरंपर, अवल[68] दीन से[69] कहियो[70]
जांभा गोरख गुरु अपारा, काजी मुल्ला पढ़िया पंडित[71] निन्दा करै गवारा
दोजख[72] छाड[73] भिस्त जे चाहो, तो कहिया करो हमारा
इन्द्रपुरी बैकुंठे वासो, तो[74] पावो मोक्ष[75] ही[76] द्वारा[77]

---

१ सहस २ नाव ३. सिंभू ४ इस प्रति में "म्हे" नहीं है। ५ जदि ६ निरालंभ ७ ह्वैकर ८. धंधुकारो ९. दाउ १०. सवारी ११ छतीसूं १२. सुंनि १३. वरत्या १४ मांड १५ इद १६. महेसर १७ करामत कईवारी १८. दोइ १९. साखी २०. पनेसर २१ जदि मैं २२. रच्यौ २३. मैणावतीयो २४ सतवरतकूं २५ जदि २६. मैं २७ तेतीसू २८. इस प्रति मे "की" नहीं है। २९. कोडि ३०. जदि ३१ रच्यो ३२. धरती ३३ दाढ ३४. चाडाई ३५ नरसिंघ ३६ ह्वै ३७ हिरणाकस ३८. बृध्यौ ३९ पहराजो (पै'लादो) ४० रहीयो ४१. सरण ४२. बामन ४३. ह्वै ४४. बलिराव ४५ पर्सराम ४६. होय ४७. छतरांइण ४८ साधे ४९ गरभ ५० छूटी ५१ सिर ५२. मोड ५३. बध्यायो ५४ सीतां ५५ कन्हड ५६. होइ ५७ गऊ चराई ५८. बंस बजायो ५९ बासग ६०. नाथ्यो ६१. मारि ६२. बेकारी ६३ नोबिरिया ६४. बिजै ६५ इस प्रति में "हुई" नहीं है ६६ सेख ६७. जभराय ६८. अवलि ६९. सैं ७० कहिये ७१. पडत ७२. दोजक ७३. छाडि ७४. इसमे "तो" नहीं है। ७५. मोख ७६. इसमे "ही" नहीं है। ७७. दवारा।

(परमात्मा के) सांई, शंभु आदि सहस्त्रो (शुभ) नाम हैं। हम आदि मुरारी से उत्पन्न हुवे हैं। उस समय (सृष्टिपूर्व) मैं बिना किसी आधार के सत्तारूप से विद्यमान था। (सृष्टि की) उत्पत्ति मायोपहित ईश्वर से हुई।

न मेरे माता ही है (और न मेरे पिता ही।) मैंने अपने शरीर को स्वत. संवारा-सजाया है। छत्तीसों युगों तक शून्य ही बना रहा, सत्ययुग में सारी सृष्टि का सृजन हुआ। ब्रह्मा इन्द्र (आदि सहित) समस्त संसार की स्थापना की (और) कितनी ही बार इन्द्रादि को शक्ति प्रदान की।

चन्द्रमा (और) सूर्य, (इन) दोनों को साक्षीरूप से सस्थापित किया। प्राणवायु पवनेश्वर अर्थात् मायोपहित ईश्वर के आधारित है। उस समय हमने मत्स्यावतार धारण कर (राजा) सत्यव्रत को ज्ञानोपदेश किया। उस समय हमने देवताओ के निमित्त कमठ का रूप धारण किया (जिस पर) समुद्र मथन हुआ।

तब मैंने वाराह (वाराहावतार) का रूप धारण किया था (उस समय मैंने) समस्त पृथ्वी को अपनी दाढ पर रखी। नृसिंह का रूप धर कर (मैंने) हिरणाकश्यप राक्षस का वध किया (उसका पुत्र) भक्त प्रह्लाद हमारी शरण में रहा।

वामनावतार लेकर राजा बलि को (दान देने को) प्रेरित किया (और उसके दान देने पर) समस्त भूमि को तीन ही पेड मे नापली। परशुराम बनकर क्षत्रियत्व को साधा (और) स्त्रियों के गर्भ मे निवास करने वाले क्षत्रियो को भी न छोडा।

(सीता स्वयंवर में अनेकश) अभिमानी राजाओं के बीच श्रीराम रूप से सीता का वरण कर (वर रूप से) सिर पर मोड बांधा। कृष्ण होकर वंशी बजाई, गायें चराई (और) पृथ्वी का छेदन कर कालीदह नाग को नाथा (तथा) असुरों को मार कर (उन्हें) क्षत-विक्षत किया।

बुद्धावतार के रूप में गयासुर को मारकर उसे बेकार बना दिया। (मैंने) पंथ चलाकर (लोगों को) धर्म का रास्ता दिखाया है, हमारी तो (अब तक) विजय हुई है।

(मैं) यतिवर्य जंभराज स्वयं अपरंपर (परमात्मा) हूं।

जांभो (जी और) गुरु गोरख का कोई भेद नहीं जान सकता। काजी, मुल्ला (तथा) पढे लिखे होकर भी जो पडित (उनकी) निंदा करते हैं (वे) गिवार हैं।

(हे मानवो!) नरक से बचकर यदि स्वर्ग चाहते हो तो हमारी आज्ञाओं का पालन करो। (हमारी धर्मोपदेशनी आज्ञाओं का तुमने पालन किया तो) इन्द्रपुरी (अथवा) वैकुंठ मे निवास होगा (और तत्पश्चात्) मोक्षद्वार को प्राप्त करोगे।

वाद विवाद[1] फिटाकर[2] प्राणी, छाडो मन हठ मन का भाणो
काही[3] कै[4] मन भयो अंधेरो, काही[5] सूर उगाणो[6]
नुगरा[7] के मन भयो अंधेरो, सुगरां[8] सूर उगाणो
चरण भी रहीया[9] लोयन[10] झुरिया, पिंजर पड्यो पुरांणो
बेटा वेटी बहण र[11] भाई, सबसै[12] भयो अमाणो
तेल लियो[13] खल चौपै[14] जोगी, रीता[15] रहीयो घाणो
हंस उडाणो पंथ विलंव्यो[16], कीयो दूर[17] पयाणो
आगै सुरपति[18] लेखो मांगै, कही जियड़ा क्या[19] करम कमाणो
जिवड़ानै[20] पाछै[21] सूझन[22] लागो[23], सुकृत[24] नै पछताणो

हे प्राणी! वादविवाद को धिक्कारने योग्य समझो। मन के दुराग्रह को (तथा) मन को अच्छे लगने वाले (विषय) को छोडो। किसके मन मे अंधेरा छाया? (और) किसके मन में ज्ञान (रूपी) सूर्य का उदय हुआ?

(जो) गुरुविहीन हैं (उनके) हृदय में अंधेरा छाया हुआ है (और जो) गुरुमुखी हैं (उनके दिलों में) ज्ञान (रुपी) सूर्य का उदय हुआ। (वृद्धावस्था में) पैर लडखडाने लगे, नेत्रज्योति निस्तेज हो गई (तथा यह) शरीर जर्जरित हो गया। पुत्र–पुत्री, बहिन (और) भाई (इन) सबसे (तू) अपमानित हुआ।

तेल निकाल लेने के बाद खली पशुओं के योग्य ही रहती है। घानी रिक्त हो जाती है। शरीर से प्राण (रूपी) हस उडकर (अपने) रास्ते लगा (तथा उसने) दूर (देश के लिये) प्रयाण किया (तब इस शरीर की कोई सार्थकता नहीं रहती।)

परलोक मे ईश्वर (जीवात्मा से) हिसाब मांगेगा (कि) हे जीव! कहो, तुमने कैसे कर्मो का उपार्जन किया है? जीव को अपने जीवन का पूर्वावलोकन करने पर कुछ भी नहीं दीखा। (वह अपने अच्छे कर्मों के लिए) वहां पश्चाताप करने लगा।

(६६)

सुण[25] गुणवंता! सुण[26] बुधवंता[27]! मेरी उत्पति आद[28] लुहारूं
भाठी अंदर[29] लोह तपीलो[30], तंतक सोना[31] घड़ै[32] कसारूं[33]
मेरी मनसा अहरण[34] नाद हथौड़ा[35], शरीयर[36] सूर तपीलो[37] पवन अधारी खालूं
जे[38] थे गुरु[39] का शब्द[40] मानीलो लंघिवा[41] भवजल[42] पारूं

---

१. विरांव (विराम) २. फिटाकरि ३. कांहि ४. के ५. कांहीं ६. उगाणौं ७ निगुणां ८. सुगरां ९. रहिया १०. लोयण ११. बहणरु १२ सबथै १३. लीयो १४. चोपै १५ रीतो १६. विलग्यो १७. दूरि १८. सुरनर १९ के २०. जिवडे २१. पाछो २२. सूझण २३. लागा २४ सुकरत २५. सुणि २६. सुणि २७. बुधिवंता २८. आदि २९ अंदरि ३०. तपीलों ३१. सोनौं ३२. घडे ३३. कसारौं ३४. अहिरण ३५ हर्थोडो ३६ सरिर ३७. तपीलों ३८. जो ३९. गुरका ४०. सबद ४१. लंघिबा ४२. भैजल।

आसन[1] छाड़[2] सुखासन बैठो, जुग जुग[3] जीव[4] जम्भ[5] लोहारूं

(हे) गुणवान्! (हे) बुद्धिमान सुनो ! मेरी उत्पत्ति आदि लोहार (परमात्मा) से हुई है। (जिस प्रकार) लोहार भट्टी के अन्दर लोह को तपा कर उसे उपयोगी बनाता है (और) कसेरे (स्वर्ण को अग्नि में तपा कर) बारीक तार निकाल कर (उसके) आभूषण घडता है (वैसे ही मैं जिज्ञासु पुरुषों के मल विक्षेप, और आवरणयुक्त अंत.करण को सद्शिक्षा रूप भट्टी मे तपाकर उपयोगी लोह और कचन रूप बना देता हूं।)

मेरी मनसा को अहरण की तरह जानो (और मेरी सद्शिक्षा को) हथौडा समझो। शशि (इडा और) सूर्य (पिंगला नाडी को) अग्नि के समान जानो। (यह) शरीर प्राणवायु के आधारभूत है. यदि तुम गुरु के (ऐसे आत्मिक उपदेश को) स्वीकारोगे (तो निश्चित ही इस) संसार सागर से पार हो जाओगे। (संसाररूप) आसन को छोड़ कर (ब्रह्मानंदरूप) सुखासन पर स्थिर होओ। युग–युगान्तरों से जीवों के कल्याणार्थ (मैं) जम्भराज लोहार के समान हूं।

(६७)

विष्णु विष्णु[6] तू भण[7] रे प्राणी[8] जो मन मानै[9] रे भाई
दिन का[10] भूला[11] रात[12] न चेता[13], काय[14] पडा[15] सूता[16] आस किसी मन[17] थाई
तेरी[18] कुड[19] काची लगवाड़ घणो छै, कुशल[20] किसी मन भाई
हिरदै नाम[21] विष्णु[22] को जंपो, हाथे करो टवाई[23]
हरिपरहर[24] की आण न मानी[25] भूला[26] भूल जपी महमाई[27]
पाहण[28] प्रीत[29] फिटाकर[30] प्राणी[31] गुरु[32] विन मुक्त[33] न जाई
पंच क्रोडी[34] ले प्रहलाद[35] उतरियो[36] जिन खरतर करी कमाई
सात क्रोड़ी[37] ले राजा हरिचंद उतरियो[38], तारादे रोहितास[39]
हरिचंद[40] हाटो हाट विकाई
नव क्रोड़ी[41] राव युधिष्ठिर[42] ले उतरिया[43] धन[44] धन कुन्तीमाई[45]
बारा[46] क्रोड़[47] समाहन[48] आयो, प्रहलादा सूं कवल जु थाई[49]
किस की नारी बस्त[50] प्यारी[51] किस का बहनरु[52] भाई

---

१. आसण २. छोडि ३. जुग जुग ४ जीवै ५ इस प्रति मे यह नहीं है। ६. विसन विसन ७. भणिरे ८. प्राणी ९. मनि १०. के ११. भूलो १२ राति १३. चेत्यो १४. कांय १५. पडि १६. सूतो १७. मनि १८ इस प्रति में नहीं है। १९. कुडि २०. कुसल २१ नाव २२. विस्न २३. टवाई २४. हरपरहरि २५ मानीं २६. भूलै २७. म्हमाई २८. पांहण २९. प्रीति ३०. फिटाकरि ३१. प्रांणी ३२. गुर ३३ मुकति ३४. किरोडी ३५ पहराजो ३६. तरियो ३७. किरोड़ी ३८. तरियो ३९ रोहतास ४०. हरीचंद ४१ करोडी ४२. दहुठल ४३. तरियो ४४. धन्य ४५ कुंतादेमाई ४६. बारै ४७. कोडि ४८ समादण (सवाहण) ४९ इस प्रति मे इस प्रकार है, "यह राजा सौं कोल विथाई"। ५० बसत ५१. पियारी ५२ बहण ।

भूली दुनिया[1] मर मर[2] जावै[3], न[4] चीन्हों[5] सुर राई
पाहण नाऊं लोहा[6] साक्ता[7], नुगरा[8] चीन्हत काई

हे प्राणी! तू विष्णु–विष्णु उच्चारण कर, जिससे हे भाई! तेरा मन मान जाय अर्थात् स्थिर हो जाय। दिन में ईश्वर को भूला हुआ रहा (पर तू तो) रात्रि में भी (ईश्वराराधन की ओर से) सावधान नहीं हुआ। (ऐसी) कौनसी आशा है (तेरे) मन में (कि) सोये पडे हो?

तेरा शरीर मिथ्या है (पर तेरा संसार से) लगाव बहुत है। हे भाई! (तेरे) मन में (ऐसा करके) कुशल की कौनसी आशा है? (अत.) हाथों से काम करते हुवे, हृदय में परमात्मा विष्णु का नाम स्मरण करो।

परमात्मा को भुला कर (तुमने उनकी) आज्ञाओं का पालन नहीं किया (अपितु) संसार की भूलभुलैया में महामाया (मावड्या) का जप किया। उस प्राणी को धिक्कार है जिसकी पाषाण में प्रीति है, गुरु के बिना मुक्ति नहीं होगी। भक्त प्रह्लाद ने परमेश्वर की तीव्रतर भक्ति (कमाई) की (जिससे वह) पांच करोड प्राणियों को भवसागर से पार ले उतरा।

प्रणवीर सत्यवादी हरिश्चन्द्र अपनी धर्मपत्नी तारादे (?) और अपने पुत्र रोहिताश्व को बाजार में खड़े होकर बेचा। वह राजा हरिश्चन्द्र अपनी दानशीलता के बल पर सात कोटि जीवों का उद्धार कर अपने साथ स्वर्ग ले गया। मातेश्वरी कुन्ती को धन्यवाद है जिसका सत्यवक्ता धर्मज्ञ पुत्र युधिष्ठिर नौ करोड प्राणियों को भव जल सागर से पार ले उतरा।

भक्त प्रह्लाद से (जो मेरा) वादा हुआ था (उस वचन पालन हेतु ही मैं) बारह करोड प्राणियों को मोक्ष के लिये आह्वान करने आया हूं। (इस ससार में) कौन किसकी स्त्री है? कौन वस्तु किसकी प्रिय? (तथा) कौन किसका भाई (और) बहिन हैं?

भ्रम में पडे हुवे संसारी जीव मर–मर कर जा रहे हैं (लेकिन उन्होंने) सुरराज विष्णु को नहीं पहचाना।

पाषाण (मूर्तियो से) तो लोह (अधिक) कठोर है (पर क्या उसे भी पूजना चाहिये? पर) नुगरे कुछ का कुछ ही चिह्नित करते हैं।

(९८)

जिहिं गुरु[9] कै खिण हीं ताऊं खिण ही सीऊं खिण हीं पवणा खिण हीं पाणी खिण हीं मेघ मंडाणो[10]
कृष्ण[11] करंता[12] वार[13] न होई, थलसिर[14] नीर निवाणो[15]

१. दुनियां २. मरि मरि ३ जावे ४. ना ५ चीन्हो ६ लोहो ७ सकता ८. निगुरा ९. गुर १० मडाणौं ११ विस्न १२. करंतां १३ वार १४. थलि १५ निवाणौं।

भूला प्राणी[1] विष्णु[2] जपो रे, ज्यूं मोत टलै[3] जिरवाणो[4]
भीगा[5] है पण[6] भेद्या नाहीं, पाणी माह[7] पखाणो[8]
जीवत मरो रे जीवत मरो, जिन[9] जीवन की विध[10] जाणी[11]
जे कोई आवै हो हो करता[+], आपजै[12] हुइये[13] पाणी[14]
जा कै बहुती नवणी बहुती खवणी, बहुती क्रिया समाणी[15]
जाकी तो निज निरमल काया, जोय जोय देखो ले चढियो[16] अस्मानी[17]
यह[18] मढ देवल मूल[19] न जोयबा[20] निजकर जपो पिराणी
अनन्त रूप जोवो अभ्यागत[21], जिहिं का[22] खोज लहो सुरवाणी[23]
सेत[24] सेतूं[25] जेरज जेरूं[26] इंडरा[27] इंडूं[28] अइयालो[29] उरधजे[30] खैणी[31]

जिस गुरु (परमात्मा) के क्षण में ही तप्त, क्षण में ही शांत, क्षण मे ही पवन, क्षण में ही पानी (और) क्षण में ही (आकाश) मेघाच्छादित हो जाता है। मरुस्थल को भी पानी भरे तालाबरूप में परिणित करने मे श्रीकृष्ण को क्षणो का भी विलम्ब नहीं होता।

(हे) आत्मविस्मृत प्राणी! विष्णु का स्मरण करो जिससे (तुम्हारी) यमराज की आघात (रूप) मृत्यु टल जाय। (ऊपर से) भीगा है परन्तु पत्थर के अन्तर मे पानी नहीं पैठ सका अर्थात् जब तक (भगवान के प्रति) आभ्यान्तरिक भक्ति प्रकट नहीं होगी तब तक कुछ बनने वाला नहीं।

अरे! जीवितावस्था में ही मर जाओ अर्थात् अहम् को समूल नष्ट करदो, (जो ऐसा करता है) उसने ही जीवन की वास्तविक विधि को जाना है। यदि कोई (अपने सामने) क्रोध आसन्न होकर आता है तो अपने को पानी (जैसा शीतल) हो जाना चाहिये। जिसके (अंतर मे) बहुत ही नम्रता है, बहुत ही क्षमाशीलता है, बहुत सी शुभ क्रियाये (जिसमें) समाहित हैं बहुत ही सहनशीलता है (तथा) जिसकी अपनी काया पवित्र है, अच्छी प्रकार से निगाह करके देखलो, वह अपनी पवित्र आत्मा को आसमान (ब्रह्मलोक) मे लेकर चढ गया।

(हे प्राणी) यह मढ (मंदिर) और प्रतिमा को वास्तविक न समझो, सच्चे परमात्मा को जपो।

ईश्वर को सम्मुख जानकर अनन्त रूप से देखो, उसकी पहचान को अपने अनुकूल करके प्राप्त करो। मुक्ति की इच्छा वालों को स्वेदज, जरायुज, अणुज (और) उद्‌भिज, जितनी ये जीव खानि हैं इन सबको ईश्वर रूप देखो।

---

१. प्राणीं २. विसन ३ टले ४. जिरवाणौं ५ छै ६. पणि (पिण?) ७. माहि ८. पखाणौं ९ जिण १०. विधि ११ जांणी +इस प्रति मे "जे को हो हो होय करि आवै" पाठ है। १२. आपण १३ होइये १४. पाणी १५ समाणीं १६. चढिया १७ असमाणीं १८. अे १९. मूलि २० जोयबा २१ सुभियागत २२. की २३. बांणीं २४. सेतज २५ सेतों २६ जेरों २७. इंडज २८. इंडो २९ ले ३०. उरधज ३१ खैंणी।

सांच[1] सही में[2] कूड़ न कहया[3], नेडा[4] था[5] पण[6] दूर[7] न रहीवा[8]
सदा सन्तोपी सत उपकरणा, म्हे तजिया मानभीमानु[9]
वस कर[10] पवणा[11] वस कर[12] पाणी, वस कर[13] हाट पटण दरवाजों
दशे[14] दवारे ताला जड़िया जो[15] ऐसा उसताजों
दशे दवारे ताला कूंची भीतर पोल वणाई
जो आरोध्यो राव युधिष्ठिर[16], सो आरोधो रे भाई
जिहिं गुर के[17] झुरै[18] न झुरया[19], खिरै न खिरणा वंक तृवंके[20] नाल पै नालै[21]
नैणे नीर न झुरवा[22] विन[23] पुल वंध्या[24] वाणो[25]
तज्यो[26] आलिंगण[27] तोड़ी माया, तन लोचन गुण वाणों
हाली लो भल पाली लो, खेडत सूना राणो[28]

(यह) सही (और) सत्य है। मैं झूठ नहीं कह रहा हूं। (मैं) तुम्हारे से (अति) समीप हू। (कभी भी मैं तुम्हारे से) दूर नहीं रह सकता। (मैं) सदैव संतोषी (और) सत्य को धारण करने वाला हूं, हमने मानापमान को छोड दिया है।

(प्राण) वायु को (अपने) वश मे करो, वीर्य को (अपने) वश मे करो अर्थात् उसका क्षरण न होने दो, (अपनी) हाट (रूप इन्द्रियों को कायारूपी) नगरी को (और विषय रूप) दरवाजो को वश मे करो अर्थात् चित्तवृत्ति को बहिर्मुखी न होने दो।

दसवे द्वार ब्रह्मरंध्र मे (ब्रह्मज्योति के आगे अज्ञानरूपी) ताला लगा हुआ है, जो उस्ताद होगा (वही) ऐसा (ताला खोलेगा)।

दसवे द्वार के ताले को (ज्ञान अथवा योगरूपी) कूंची से (खोलेगा वही उसके) भीतर (अपना प्रवेश) द्वार बनायेगा।

हे भाई! जिस (परमात्मा की) आराधना राजा युधिष्ठिर ने की (तुम भी) उसी की आराधना करो।

जिस गुरु के (वीर्य का) निपात नहीं होता है, (ईश्वर से ध्यान) नहीं टूटता है (और जिसकी) त्रिकुटी मे (ज्ञान अथवा) बंकनाल के द्वारा प्राण [illegible] में टिक जाते हैं।

(जिसने) शरीर से (सांसारिक [illegible] (उ [illegible]
से [illegible] को तोड दिया है (वही) हाली, [illegible] युद्ध
का संचालन करता है।

(१००)

अर्थू[1] गर्थू[1] साहण[2] थाटूं[3], कुड़ा[4] दीठो[5] ना ठाटों[6]
फूड़ी माया जाल न भूली रे राजेंदर[7] अलगी रहिओ[8] जूंगी[9] वाटों
नव लख दंताला[10] वार करीलो[11] वार करेकर[12] बंद करीलो
बंद करेकर[13] दान[14] करीलो[15], दान करेकर मन फूलीलो[16]
तंत मंत बीर वैताल करीलो, खायवा खाज अखाजूं[17]
निरह निरंजण नर निरहारी[18], तऊ न मिलवा[19] झुंझा[20] भाग अभागूं[21]

धन–असवाब, माल–मत्ता, हाथी–घोडा (तथा) वैल–ऊंट आदि उपकरण समूह को मिथ्या जानो, केवल यह देखने मात्र के ठाठ हैं। हे राजेन्द्र ! इस मिथ्या मायाजाल में न भूलो, ऐसे मायावी मार्ग से अलग ही रहना चाहिये।

नौ लाख रुपये के मूल्यवान हाथियों को एकत्रित करना, उन्हे बंद करके रोकना (तत्पश्चात उन) बंद किये गये हाथियों का दान करना, (तथा) उनका दान करके मन में दम्भ से प्रफुल्लित होना– यह सब मायावी मिथ्यात्व है।

तंत्र मंत्र की साधना से वीर वैताल आदि को सिद्ध करना (तथा) न खाने लायक भोजन करना यह भी (तो) दोषपूर्ण और मिथ्या है।

हे नर! जो दूसरे की कृपा का अपेक्षी नहीं है, मायारहित (और) निराधार है (यह) ईश्वर उक्त कर्मों से प्राप्त नहीं होता। ऐसा करके ईश्वरप्राप्ति चाहने वाले हैं वे अभागे हैं।

(१०१)

नित ही मावस नित संकरांति[22], नित ही नवग्रह[23] वैसें[24] पांति[25]
नित ही गंग हिलोरे[26] जाय, सतगुरु[27] चीन्है[28] सहजै[29] न्हाय
निरमल पाणी[30] निरमल घाट, निरमल धोबी मांड्यो पाट
जे यो[31] धोबी जाणै[32] धोय, तो घर में मैला[33] वस्त्र रहे न कोय
एक[34] मन एक[35] चित सावण लावै, पहरंतो गाहक अति सुख पावै
ऊंचै नीचै करै पसारा[36], नाही[37] दूजै का[38] संचारा[39]
तिल मैं तेल पहुप मैं वास, पांच तत्व मैं लियो प्रकाश
+विजली कै[40] चमकै आवै जाय, सहज सुन्य[41] मैं रहै समाय

---

१ अरथों गरथों २. सांहण ३. थाटों ४. कूडा ५ दीठों ६ थाटों ७ राजिदर ८. रहीओ ९. जूकी १०. दंतालो ११. करीलों १२ करेकरि १३ करेकरि १४. दान १५ करीलों १६. फूलीलों १७ अखाजों १८. नीरहारी १९. मिलिबा २०. जां जा २१. अभागों २२. सकरायंत २३ नोग्रह २४. वैसें २५ पांत २६. हलोले २७. गुर २८ चीन्हों २९ सहजे ३० पाणी ३१. वो ३२. जाणे ३३. मेलो ३४. इक ३५. इक ३६. पसारो ३७ नांही ३८. को ३९ संचारो + इस प्रति में नीचे वाली पंक्ति ऊपर है ४०. के ४१. सुनि।

नैयो[1] गावै न यो[2] गवावै, स्वर्गो[3] जाते[4] वार न लावै
सतगुर ऐसा तत्त्व बतावै[5], जुग जुग जीवै बहुर[6] न आवै

(जो) सद्‌गुरु को पहचान लेता है (उसके यहां) नित्य ही अमावस्या (और) नित्य ही सक्रांति रहती है। नवग्रह (भी वहां) नित्य ही पंक्ति बांधकर बैठते हैं अर्थात् ग्रहस्थिति हमेशा ही उसके अनुकूल रहती है। (वहां) पतितपावनी गंगा हमेशा ही हिलोरे मारती हैं (और वह) सहज ही उसमें अवगाहन करता है।

(सदगुरु की पहचान करने वाले साधक रूपी योगी ने ज्ञान रूपी गंगा के) निर्मल पानी (और) पवित्र घाट (ज्ञान स्थिति) पर (अपने अंत करण के मल, विक्षेप एव आवरण को मिटाने के लिये साधना रूपी) तख्त को स्थापित किया है। यदि यह (साधक रूपी) धोबी (अपने अंतकरण को) धोना जान जाय तो (उसके हृदय रूपी) घर मे (मल विक्षपोदि) अपवित्र (भावनारूपी) किसी प्रकार के वस्त्र नहीं रहेंगे। एकाग्रह मन (और) संयत-चित्त से (यदि वह ज्ञानरूपी अथवा उपदेशरूपी) साबुन लगाता है तो (श्रोतारूपी) ग्राहक (उस वस्त्र को) पहनता हुआ अत्यन्त सुख प्राप्त करता है।

(वह) ऊपर (और) नीचे (सर्वत्र ज्ञान का) प्रसार करता है। (वहां) द्वितीय भाव का सचार नहीं होता। (इस प्रकार की ज्ञानोपलब्धि होने के पश्चात् साधक को ऐसा अनुभव होता है कि जिस प्रकार) तिल में तेल (और) पुष्प मे गंध है (उसी प्रकार परमात्मा ने) पांचो तत्वो (के रूप में अपने को) प्रकाशित किया है।

ज्ञान-विद्युत के प्रकाश में (उसकी सर्वत्र) गति हो जाती है (वह) सहज शून्य (ब्रह्मानंद भाव) मे समाहित रहता है। न वह (सिवाय ब्रह्मानंद के किसी अन्य का) गीत गाता है (और) न ही (वह उसके अतिरिक्त किसी अन्य का) यशोगान करवाता है, (वह) स्वर्ग जाने मे किंचित् विलंब नहीं करता। "सतगुरु" ऐसे ही ब्रह्मतत्व का बोध करवाता है (जिससे वह) अजर-अमर हो जाता है फिर (वह) पुन ससार में जन्म धारण नहीं करता।

(१०२)

विष्णु[7] विष्णु भण[8] अजर जरीजै, धर्म[9] हुवै पापां छूटीजै
हरिपर[10] हरि को नाम जपीजै हरियालो हरि आण[11] हरूं[12]
हरि नारायण देव नरूं[13]
आसा सास निरास भई लो, पाईलो मोक्ष[14] द्वार[15] खिणूं[16]

"विष्णु-विष्णु" (ऐसा सुमरण कर, अजर काम-क्रोधादि को) जीर्ण कर दीजिये (जिससे) धर्म लाभ होगा (और) पापों से छुटकारा पा जाओगे। (अन्य चर्चाओं का) परिहार्य कर (ईश्वर) नाम का जप करना चाहिये, दूसरी भावनाओं को मिटा देने

---

१. वो २. नैर ३. सुरगे ४. जातो ५. बतावे ६. बहुदिन ७. विसन विसन ८. भणि ९. धरम १०. हर ११. आण १२. हरो १३ नरों १४. मोख १५ दवार १६. खिणों।

से हरि (ईश्वर) आनन्दप्रद प्रतीत होगा (तथा) देवताओं और मनुष्यों मे हरि नारायण (स्वरूप दृष्टिगोचर होगा)। *(सांसारिक) आशाओ से (बंधे) श्वास (जब) निराश हो* जायेगे (तब) क्षणो मे ही मोक्षद्वार को पा जाओगे।

(१०३)

देख[1] अदेख्या सुणा[2] असुणा[3], क्षमा[4] रूप तप कीजै
थोड़े माहिं थोड़ेरो, दीजै, होते नाहि न कीजै
कृष्ण[5] मया तिहं[6] लोका[7] साक्षी[8], अमृत फूल फलीजै
जोय जोय नाम विष्णु[9] के बीजै[10]; अनन्त गुणा लिख लीजै

(दूसरे के अवगुणो को) देख कर भी अनदेखा कर देना चाहिये, (किसी के अपशब्द) को सुनकर अनसुना कर देना चाहिये (और इस प्रकार) सहनशीलता रूप तप करना चाहिये। (अपनी श्रद्धानुसार) यथाशक्ति दानपुण्य करना चाहिये। (परन्तु) किसी वस्तु के पास में होते हुवे इन्कार नहीं करना चाहिये।

(भगवान) श्री कृष्ण की कृपा के लिये, ये तीनो लोक साक्षी हैं। (उसकी कृपा) अमृतफल दायिनी है। विष्णु के नाम का तात्विक अर्थ जान कर जो (विष्णु का नाम–बीज) बोता है, उसे अनन्त गुणा अधिक मिलता है।

(१०४)

+कंचन[11] दानु[12] कुछ[13] न मानूं[14], कापड़ दानु[15] कुछ[16] न मानूं[17]
चोपड दानु[18] कुछ[19] न मानूं[20], पाट पाटम्बर दानु कुछ न मानूं
पंच लाख तुरंगम दानुं[21], कुछ[22] न मानुं[23], हस्ती दानु[24] कुछ न मानूं
तिरिया[25] दानु कुछ न मानू, मानु अेक सुचील सनानूं[26]

(मैं) स्वर्णदान को कुछ भी नहीं मानता, वस्त्र दान को भी कुछ नहीं मानता, घृत के दान को भी नहीं मानता, रेशमी वस्त्र (और) पीताम्बर आदि के दान को भी कुछ नहीं मानता।

पांच लाख घोडों के दान को भी कुछ नहीं मानता, हाथी के दान को भी कुछ नहीं मानता। स्त्री (कन्या) दान को भी कुछ नहीं मानता। (मैं तो) एक पवित्रता (और) स्नान को ही (उपर्युक्त दानों से अधिक) मानता हूं।

---

१. देखि २. सुणां ३. असुण्या ४. खिमा ५. विष्ण ६. तिहुं ७. लोका ८. साखी ९. विष्ण १०. दीजै + इस स्थान पर "कण" पाठ है। ११. कचण १२. दांनौं १३. कछू १४. मानौं १५. दांनो १६. कछू १७. मानों १८. दानों १९. कछू २०. मानो २१. दानौं २२. कछू २३. मानों २४. दानो २५. त्रिया २६. सिनानों।

आप अलेख उपन्ना शंभू निरह निरंजन[1] धंधूकारूं[2]
आपै आप हुवा[3] अपरंपर, नै तद[4] चन्दा नै तद सूरूं[5]
पवण न पाणी धरती[6] आकाश न थीयो[7], ना[8] तद[9] मास न वर्ष[10] न घडी न पहरूं
धूप न छाया ताव न सीयों, न त्रिलोक[11] न तारा मण्डल[12] मेघ न माला वर्षा[13] थीयों
न[14] तद[15] जोग नक्षत्र[16] तिथि[17] न+ वारसीयों[18], न[19] तद[20] चवदश[21] पूनो[22] मानसियों
न[23] तद समद न सागर नै गिरि न पर्वत[24], ना धौला[25] गिर[26] मेर थीयों
ना तद[27] हाट न वाट न कोट न करया[28], विणज न वाखर लाभ थीयों
यह[29] छत धार बडे सुलतानों, रावण[30] राणा[31] ये[32] दिवाणा[33] हिंदूं मुसलमानु[34] दोय पंथ
नांहीं जूवा जूवा
ना[35] तद[36] काम[37] न कर्षण[38], जोग न दर्शन[39]
तीर्थ[40] वासी[41] ये[42] मस वासी ना तद[43] होता जपिया तपिया ना खचर[44]
हीवर[45] वाज[46] थीयों
ना तद[47] शूर[48] न वीर खड़ग न क्षत्री[49] रण[50] संग्राम न जूझ[51] न[52] थीयों
ना तद सिंह[53] न[54] स्यावज मिरग[55] पखेरूं, हंस न मोरा लेले[56] सूणों
रंग न रसना कापड चोपड गोहूं[57] चावल, भेग न थीयों
माय[58] न वापन वहण न भाई, ना तद[59] होता पूत धीयों
+सास न शब्दूं[60] जीव न पिंडूं[61], ना तद[62] होता पुरुष त्रियों[63]
पाप न पुण्य[64] न सती कुसती[65], ना तद[66] होती मया न दया
आपै आप उपन्ना[67] शंभू[68], निरह निरंजन धंधूकारूं
आपो[69] आप हुवा अपरंपर, है[70] राजेन्द्र! लेह विचारूं

अव्यक्त निरंजन से स्वयं ईश्वर स्वत स्फूर्त होकर माया सहित उत्पन्न हुआ। (परब्रह्म ही) अपने आप से (मायोपहित) अपरब्रह्म (ईश्वर नाम से) हुआ, उस समय

+ इस प्रति मे इस प्रकार पाठ है—आपै आप उपनो स्वयंभू। १. निरजण २. धंधूकारों ३. हुवो ४. तदि ५. सूरो ६. धर ७. थीयो ८ नै ९. तदि १० बरस ११ त्रीलोक १२. मंडल १३ बरसै। १४. ना १५ तदि १६ नखतर १७. तिथि + इस प्रति में "वारन" पाठ अधिक है १८. वारसियो १९. नै २०. इस प्रति मे नहीं है २१. चवदसि २२. पून्यो २३. ना तदि २४. परबत २५ धोल २६. गिरि २७. तदि २८. कसबा २९. ए ३०. रावन ३१. राणां ३२. अे ३३. दीवाणां ३४. मुसलमाणौं ३५ नै ३६ तदि ३७. कांम ३८. करसण ३९. दरसण ४०. तीरथ ४१. वासी ४२. अे ४३ तदि ४४. खच्चर ४५. हिवर ४६. वाजि ४७. तदि ४८. सूर ४९. खतरी ५०. रिण ५१. जूज ५२ "न" नहीं है। ५३ सीह ५४ व ५५ मृग ५६. लेल ५७ गेहू ५८ माय ५९ तदि, + इस प्रति में "ना तदि" पाठ अधिक है ६० सबदो ६१. पिंडों ६२ तदि ६३. तीयो ६४. पुन्य ६५ कुसती ६६ तदि ६७ उपना ६८ स्वयंभू ६९. आपै ७० हो।

न चन्द्रमा (और) न (ही) सूर्य था। पवन, पानी, धरती (और) न (ही उस समय) आकाश था। उस समय न मास, न वर्ष, न घडी (और) न (ही) प्रहर थी। न धूप--छाया थी, न गर्मी--सर्दी थी, न त्रिलोक, तारामंडल, मेघमाला (और) न वर्षा ही थी। उस समय न योग, नक्षत्र, तिथि (और) न (ही) वार था, न उस समय चतुर्दशी, पूर्णिमा (और) अमावस्या थी।

उस समय न समुद्र--सागर था, न गिरि--पर्वत था, न (ही) धवलगिरि (और) न (ही उस समय) सुमेरु गिरि था। न उस समय दुकाने थी, न मार्ग था, न किले (और) न (ही उस समय) शहर थे, न (उस समय) वाणिज्य था, न (किसी प्रकार की कोई) वस्तु थी (और) न लाभ था।

छत्रधारी ये बडे--बडे सुलतान, रावण, राणे, दीवान (धर्म के दीवाने) हिन्दू--मुसलमानो के ये न अलग अलग पथ (ही उस समय थे) न उस समय कार्य, खेती, न योग (और) दर्शन (ही) थे।

न उस समय ये तीर्थों में (तथा) मस्जिद में निवास करने वाले थे, जपिया, तपिया (और) न (ही उस समय) खच्चर घोडे (आदि) थे।

न उस समय शूरवीर थे, न तलवार थी, न क्षत्रिय थे (न उस समय) रण--संग्राम (और) युद्ध ही था। न उस समय सिह था, न सिह--शावक था (और न) पक्षी था, हंस, मोर, लेली (और) न सूआ था।

(किसी प्रकार का) रंग, स्वाद, कपडा, स्निग्ध पदार्थ, गेहूँ, चावल, (आदि) भोग्य (पदार्थ) नहीं थे।

न मां, न बाप, न बहिन--भाई, न उस समय पुत्र (और) पुत्री थे। न श्वास था, न शब्द था न (ही) चैतन्य जीवात्मा (और) शरीर था, न उस समय स्त्री--पुरुष ही थे।

न पाप--पुण्य, न सती--कुसती (असती) न उस समय दया (तथा) मया ही थी। (सृष्टि रूप से) अपने आप ही (वह) शंभू निरह निरंजन से मायासहित उत्पन्न हुआ। स्वत स्फूर्त भाव से (पर ब्रह्म ही) अपर--ब्रह्म हुआ। हे राजेन्द्र ! (सृष्टि उत्पत्ति के सबध में) यह विचार (अथवा कथन) सुनो।

(१०६)

सुण रे काजी सुण रे मुल्ला, सुणियो लोग लुगाई
नर निरहारी एकलवाई, जिन यो रा फरमाई
जोर जवर करद जै छाडो, तो कलमा नाम खुदाई
जिनकै सांच सिदक इमान, सलामत, जिन यो भिस्त उपाई+

हे काजी, हे मुल्ला सुनो (और हे) स्त्री पुरुषो (तुम भी) सुनिये ! (मैं ही) एकमात्र निरहारी पुरुष हूं जिसने (इस धर्म) मार्ग पर चलने का (तुम्हें) उपदेश दिया है।

+ इस प्रति मे यह सबद नहीं है।

यदि (तुम निरीह पशुओं पर) जोर जुल्म से करद चलाना छोडो तो (तुम्हारा) कलमा (पढना और) खुदा का नाम (लेना सार्थक है)। जिसके (हृदय में) सत्य का (निवास है, भगवान पर) न्यौछावर होने की भावना है (और) धर्म में सच्ची आस्था है उसीने इस प्रकार स्वर्ग–प्राप्ति का उपार्जन किया है।

(१०७)

सहजे शीले[1] सेज बिछायो[2], उनमन रहा[3] उदासूं[4]
जुगे[5] जुगन्तर भवे भवन्तर कहूं[6] कहांणी कासूं[7]
रवी[8] ऊगा[9] जब उल्लू अन्धा दुनिया[10] भया[11] उजासूं[12]
सत गुरु[13] मिलियो सत पंथ बतायो, भ्रांत[14] चुकाई सुगरां[15] भयो विसवासूं
+जां जां जाण्यों तहां[16] प्रमाणों[17] सहज समाणों[18] जिहिंके मन की पूगी आसूं[19]
जहां[20] गुरु ना चीन्हों[21] पंथ न पायो, तहां[22] गल[23] पड़ी परासूं[24]

(मैंने) सहज शील की शय्या बिछाई है (और मैं सांसारिक पदार्थों से) उपराम (तथा सर्वथा) उदास रहा। युग युगान्तर (और) भव भवान्तर की (यह) कहानी (मैं) किससे कहूं?

जब सूर्योदय होता है (तब) समस्त संसार में प्रकाश फैल जाता है (पर) उल्लू (सूर्योदय होने से) अंधा हो जाता है। "सुगुरा" (जनों को ऐसा) विश्वास हुआ (कि) "सतगुरु" मिला (और उसने) समस्त भ्रांतियो की निवृत्ति कर 'सतपंथक' धर्म का मार्ग बताया।

जिस–जिसने (सतगुरु को) जाना उसी को (सतगुरु का) प्रमाण मिला, (वह) सहज मे समा गया (और) उसके मन की आशाओं की पूर्ति हो गई।

जिसने गुरु को नहीं पहचाना (उसको सत्य का) मार्ग नहीं मिला, उसके गले में (नानाविध भ्रांतियो की अथवा जन्म मरणरूपी) पाश ही पडी।

(१०८)

हालीलो भल पालीलो[25] सिध[26] पालीलो खेड़त सूना राणो[27]
चन्द्र[28] सूर दोय बैल रचीलो, गंग जमन दोय रासी
सत संतोष दोय[29] बीज बीजीलो[30], खेती खड़ी अकाशी[31]
चेतन रावल पहर[32] बैठे, मृगा खेती चर[33] नहीं जाई
गुरु प्रसादे केवल ज्ञाने, ब्रह्म ज्ञाने[34] सहज स्नाने[35]
यह[36] घर[37] ऋद्ध[38] सिध पाई

---

१. सीले २. बिछायो ३. रह्या ४. उदासो ५. जुगे ६. कहों ७. कासों ८ रवि ९. ऊगा १० दुनियां ११. भयो १२. उजासों १३ गुर १४. भ्रांति १५ सुगुरां +.इस प्रति में "जां जां" दो बार नहीं है १६ ताहां १७. परवाण्यो १८. समाणौ १९. आसौं २० जां २१. चीन्हौं २२. जां २३. गलि २४. परासो २५ पालि २६. सिद्ध २७. राणों २८. चंद २९. द्वै ३०. बीजीलों ३१ अकासी ३२ पहरै ३३. चरि ३४ गियाने ३५ सिनाने ३६ इहि ३७. घरि ३८. रिध।

हाली (और) पाली (के) सुंदर (योगमार्ग का) पालन करो, सिद्ध पाली ने शून्य अरण्य से (ब्रह्मबोधनी गायरूप वृत्ति) को घेरा–हांका है। चंद्र (ईड़ा) (और) सूर (पिंगला) इन दोनों को बैल बनाओ (तथा इन्हीं) दोनों गगा–जमुना (नाडियो की) रस्सी (बनाकर ज्ञानजल से साधनारूप योग खेत को सींचो।)

(उस खेत में) सत्य (और) संतोष (ये) दो बीज बोवो (फिर तो) खेती आकाश (ब्रह्मरंध्र) में खड़ी हो जायेगी।

(उस खेती की निगरानी के लिये जब) चैतन्य (रूप कूटस्थ) राजा पहरे पर बैठा है (तब काल रूपी) मृग उस खेती (फसल) को खा नहीं सकेगा। गुरु के प्रसाद से, केवल्य ज्ञान से, ब्रह्मानुभूति से (एवं) सहज स्नान से इस (समाधि) घर में ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होगी।

(१०६)

देखत भूली को मनमाने[1], सेवै[2] विलोवै बाज[3] स्नाने[4]
देखत भूली को मन चेबै[5], भीतर कोरा बाहर[6] भेवै[7]
देखत भूली को मनमानै[8], हरि परहर[9] मिलियो शैतानै[10]
देखत भूली को मन चेवै, आकभखाणैं[11] थंदै[12] मेवै
भूला लो भल भूलालो, भूला भूल[13] न भूलो[14]
जिहिं[15] ठूंठड़िये[16] पान न होता[17], ते क्यों चाहत फूलूं[18]

देखता है! मन (अधिकांशत.) भूल को ही मानता है, सेवा (भाव) को विलुप्त कर केवल स्नान को अपनाता है (जबकि सेवा भाव भी मन को स्वीकार होनी चाहिये।)

देखता है! मन (अधिकतर) भ्रमों से ही सिक्त है (वह ऐसा कर) अन्तरात्मा से कोरा (सूखा) रहता है (केवल) बाहर से भीगा हुआ सा दीखता है।

देखता है! मन (केवल) भूल–भ्रम को ही मानता है–उन्हीं से प्रसन्न रहता है (वह) अपने हृदय से परमात्मा का प्रहरण कर शैतान से जा मिला।

देखता है! भ्रम में पड़ा मन (ऐसा) कथन करता है (कि वह) आक को ही मेवा कहता है।

बार–बार भूल को ही ग्रहण करते हो? (हे आत्म) विस्मृत (प्राणी) भ्रम में भूलो। जिस शुष्क काठ में पत्ते भी नहीं होते हैं, उनसे फूलों की इच्छा क्यों करना?

---

१. मनमानै २. सेवैं ३ बाझ ४. सिनानै ५. चेवे ६ बाहरि ७. भेवे ८. मनमाने ६. हरि १०. सैताने ११ बखाणे १२. थंदे १३. भूलि १४. भूलौं १५. जे १६ ठंठडिये १७. होयसैं १८. फूलों।

(११०)

मथुरा नगर की राणी होती, होती पाटमदे राणी
तीरथवासी[1] जाती लूटे अति लूटे खुरसाणी[2]
माणक[3] मोती हीरा लूटा[4], जाय विलूधा दाणी[5]
कवले[6] चूकी बचने हारी, जिहिं[7] गुण ढांची[8] ढोवे[9] पांणी
विष्णु[10] को दोष किस्यो[11] रे प्राणी, आपे खता कमाणी

(वह) मथुरा नगर की रानी थी, (तथा वह) पटरानी थी। (उसने) तीर्थ निवासी (और तीर्थ) यात्रियो को लूट लिया, (उसने) घोडे लूटे।

(उसके) कर उगाहने वाले उन के पीछे पड़कर (उनसे) माणक मोती (और) हीरे लूट लिये।

(वह) (अपनी) शर्त और उन वचनों से चूक जाने के कारण (पशु योनि मे) ढांची पर पानी ढोती है।

हे प्राणी! (इसमें) विष्णु का क्या दोष है (उसने) आपसे ही दण्ड भोगने का योग बनाया है।

(१११)

खरड़ ओढीजै तूंबा जीमीजै, सुरहै[12] दुहीजै कृत खेत की
सीवम[13] लीजै पीजै ऊंडा नीरूं[14]
सुर नर देवां वन्दी खाने[15] तित उतरिया[16] तीरूं[17]
भोलब[18] भालक टोलम[19] टालम[20] ज्यूं[21] जाणो त्यूं आणो
मैं बाचा[22] दई पहलादै[23] सूं सो चेलो[24] गुरु[25] लाजै
कोड[26] तेतीसूं[27] वाडै दीन्हीं तिन की जात[28] पिछाणो[29]

(जहां) "खरड" (ऊट के सख्त बालों से बना वस्त्र) ओढा जाता है इन्द्रायण फल खाया जाता है, गायों का दोहन होता है, (अपने) अधिकृत खेतों की जहां सीमा नही है, (और) जहां गहरे कुओं से निकाल कर पानी पिया जाता है। (जहा) सुर–नर (और) देवता (मनुष्य रूप मे) बंदीखाने में पड़े हैं (मैं) उस देश मे (उन मनुष्यों के कल्याणार्थ) अवतरित हुआ हूं।

(उन) भोले (मनुष्यों को) देखभाल कर (उनको) चुन कर (तथा) यथायोग्य जानकर (मैं उनको मोक्ष के लिये) प्रेरित करूंगा।

मैंने प्रह्लाद को (यह) वचन दिये थे (कि यथासमय जनकल्याण के लिये अवतार लूंगा, यदि अब उन जनों का उद्धार न करूं तो) चेला (प्रह्लाद और) गुरु (मैं जांभोजी) लज्जित हो।

---

१ जातीं २ सां ३. माणिक ४ लूटे ५ दांणीं ६ कवलों ७. तिह ८. ढांचे ९. ढोव १०. विसन नै ११ किसो १२. सुरह १३ सीवमांही १४ नीरो १५ खानैं १६. उतरियां १७. तीरों १८. भोलवि १९. टोलवि २०. टालवि २१. ज्यों जाणै त्यू आणै २२. वाच २३ पहराजारौं २४. चेलौ २५. गुर २६. कोडि २७ तेतीसौं २८. जाति २९. पिछांणौं।

(जिन–जिन मनुष्यों की मैंने मोक्ष के योग्य) जाति पहचानी (उनको मैंने) तेतीस कोटि देवों के साथ मिला दिया।

(११२)

जके पंथ का भांजणा गुरु का नींदणा स्वामी का दुस्मणा[1]
कुफर ते काफरा कुमली कूपातूं[2]+ हड़ हडा भड़ भडा
दानवे[3] दूतबा[4] दानवे भूतबा राकसा बोकसा जाका[5] जन्म[6] नहीं परकर्म[7] चंडालू[8]
ओरकूं[9] जीभैंकर[10] आप कूं[11] पोपणा जिहिं की रु[12] वाले[13] दीजैसी[14] दोरै घूंप अंधारौं
तानवे[15] तानबा छानवे[16] छानवा, तोड़बे तोड़वा[17] कूकबे पुकारबा जाकी[18]
कोई न फरवा[19] सारुं[20]

जो (व्यक्ति) पंथ नियमों को भंग करने वाले हैं, गुरु की निंदा करने वाले हैं (और) स्वामी के साथ दुश्मनी करने वाले हैं। वे (मनुष्य) कुमार्गी, काफिर, कुमूल (और) कुपात्र हैं, (वे) हिंसक (तथा) जीव को वध करने वाले हैं।

(वे मनुष्य) दानवता के दूत हैं (तथा) दानव (और) भूत के समान हैं (वे) राक्षस (और) अभक्षी हैं, उनका जन्म (यद्यपि राक्षसादि योनि में नहीं है) परतु (उनके) कर्म चंडाल के समान हैं।

अन्य (निरपराध जीव) को मारकर (जो) अपना पोषण करता है उसकी आत्मा को पकडकर अंधेरघुप नरक में डाल दी जायेगी।

(यमलोक में पापात्मा पर) चाबुक ताने जायेंगे (उसके कर्मों की) छानबीन होगी (और वह) प्रताडित किया जायेगा, उसकी कूक पुकार को (सुनकर वहां उसकी) कोई सहायता नहीं करेगा।

(११३)+

ईमा मोमन चीमा गोयम महंमद फुरमानी
उरका फुरका नुमाज फरीजां, खासा खबर विनाणी
इलारास्ती ईमा मोमन मारफत मुल्लाणी

(जो व्यक्ति ईश्वर पर) ईमान लाता है (वास्तव में वही) मोमिन है, मुहम्मद साहब ने यही कहा है, यह छिपी हुई बात नहीं है।

(अपने) हृदय में नमाज पढो, यही तुम्हारा फर्ज है (और तभी तुम्हे) विज्ञानी परमेश्वर की पर्याप्त जानकारी होगी।

---

१. दुसमणा २ कुपातों + इस प्रति में पाठान्तर २ अक के बाद ऐसा पाठ है "कुचीला कुघातों" ३. दाणवे ४. दूतवा ५ जिहिका ६ जनम ७. परि ८. चंडालों ६. ओरको १० जिबहकरि ११. को १२. रुवा १३ हिले १४. दीजसी १५ ताणवे ताणवा १६. छाणिवे छाणिबा १७. तोडिबे तोडिबा १८. जिहिंकी १६. करवा २०. सारौं। + इस प्रति में यह "शब्द" नहीं है।

झूठ (अथवा हिंसा) को छोड़ने वाले मुस्लिम का ही ईमान सही समझा जायेगा (और वही) मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होगा, मुल्लाओं के मार्फत यह जानकारी तुम्हें करनी चाहिये।+

(११४)

सुर नर तणो[1] सन्देसो आयो, साभलियोरे[2] जाटो
चांदनै[3] थकै अंधेरै क्यों[4] घालो, भूल गयो[5] गुरु[6] वाटो
नीर थकै[7] घट थूल क्यों[8] राखो, सबल विगोवो खाटो
मागर मणियां[9] क्यों हाथ बसाहो[10] कांय हीरा हाथ[11] उसाटो
सुरनर तणो सन्देसो आयो, साभलियोरे[12] जाटो

अरे जाटो सुनो। (मेरे रूप में तुम्हारे) लिये सुर नरों का (ज्ञान) संदेश आया है। (तुम मुझ) प्रकाश (रूप गुरु के) होते हुए (अज्ञानरूप) अंधेरे में क्यो चलते हो? (क्या तुम) गुरु का मार्ग भूल गये हो?

(उपदेश रूप) नीर के होते हुए (तुम अपने) अंतस्तल को अपवित्र क्यों रखते हो। (ऐसा कर तुम अपनी) सबल कमाई (नरतन) को बिगाड़ रहे हो।

(तुम अपने) हस्तगत हीरों को फेंक कर कांच की खोटी मणियों को हाथ मे क्यो पकडते हो? (तुम्हारे लिये) सुर नर (रूप मुझ–जांभोजी का सद्‌शिक्षारूप) संदेश आया है, अरे जाटो! (मेरे सदुपदेश को) सुनो।

(११५)

म्हे आप गरीबी तन गूदडियो, मेरा कारण किरिया देखो
बिन्दो व्योहरो[13] ब्योर[14] विचारो[15], भूलस[16] नाहीं लेखो
नदिये नीरूं[17] सागर हीरूं[18], पवणा रूप[19] फिरै परमेश्वर
बिम्बै बेला[20] निश्चल[21] थाघ अथाघूं[22]
उमग्या समाघूं[23] ते सरवर कित नीरूं[24] गहर गंभीरूं[25]
खिण एक[26] सिन्धुपुरी[27] विश्राम[28] लियों, अबजु[29] मंडल भई अवाजूं[30]
म्हे सुन्य[31] मंडल का राजू[32]

हमने स्वयं गरीबी–नम्रता को (तथा) शरीर पर गुदडी को धारण कर रखा है, (पर इससे क्या) मेरी करने योग्य (श्रेष्ठ) क्रियाओं को देखो। (मेरे उत्तम) व्यवहार का पता लगा कर (ही मुझे) बंदना करो, भूल को स्थान देने का हिसाब ही क्या है?

+ यह अर्थ स्वामी सच्चिदानंद, जंभगीता, के आधार पर किया गया है। १ तणौं २. सांभलियो ३. चांदण ४. क्यूं ५. गया ६. गुर ७. थके ८. क्यू ९. मणियो क्यूं १०. बिसाहो ११. हाथि १२. सांभलियोरे १३ व्यौरो १४. व्यौर १५. विचारो १६. भूलिस १७. नीरो १८. हीरो १९. रूपो २०. बेलां २१. निहचल २२. अथाघो २३ समाघों २४ नीरो २५ गंभीरों २६. इक २७. सिद्धपुरी २८. विसराम २९. ओजू ३० अवाजो ३१. सुनि ३२. राजों।

नदियों से (केवल) पानी ही (प्राप्त किया) जाता है (किंतु) समुद्र से हीरे भी उपलब्ध किये जा सकते हैं. परमेश्वर (प्रत्येक प्राणी में) पवन (रूप प्राणों से) स्फुरित हो रहा है। शाम के समय निश्चल (भाव से प्रत्येक प्राणी को) अथाह परमेश्वर की (भक्तिबल से) थाह करनी चाहिये, वह गुरुगभीर सरोवर कहां है (और) वैसा पानी कहां है जो परमेश्वर की भक्ति में उमंगित है (तथा उसी में) समाहित हो जाता है।

(हम ऐसे योगी हैं जो) शून्य मंडल मे राज्य करते है (पर) अब (इस पृथ्वी) मंडल पर आवाज करते हैं अर्थात् सुप्त प्राणियों को जगाते हैं।

(११६)

आयसां! मृग छाला पावोड़ी कांय फिरावो, मतूंत आयसां! उगतो[1]
भाण थंभाऊं[2]
दोनो परवत मेर उजागर, मंतूत अधविच[3] आन[4] भिडाऊं
तीन भवन[5] की राही रुक्मण[6] मतूंत थल शिर[7] आण[8] बसाऊं
नवसै नदी नवासी नाला मतूंत थलशिर[9] आण[10] वहाऊं
सीत वहोड़ी लंका तोड़ी ऐसो कियो संग्रामो
जां[11] बाणै[12] म्हे रावण मार्यो[13] मतूंत आयसां गढ ह्यनापुर[14] सैं[15]
आंण[16] दिखाऊं
जो तूं सौने की मृगी[17] कर चलावै, मतूंत घण पाहण वरसाऊं
(मृग छाला पावोड़ी कांय फिरावो, + मतूंत उगतो[18] भाण थमाऊं[19]

हे योगी! मृगछाला (और) खडाऊ को क्यों घुमाते हो? हे योगी! (यदि मैं) इच्छा करू तो उदय होते हुवे सूर्य को भी रोक सकता हूं। (यदि) निश्चय करलू तो सुमेरु (और) उदयगिरी दोनों पर्वतों को लाकर बीच में ही टकरा सकता हूं।

तीनों भवनों को (और) महारानी रुक्मणी को मन में विचारूं तो (इस) स्थल पर लाकर आबाद करदू। नवसौ नदिया (और) नवासी नालों को (यदि) मन से सोचलूं तो (यहां) मरुस्थल पर लाकर प्रवाहित कर सकता हूं। (रावण के साथ मैंने) ऐसा संग्राम किया कि (उसकी) लका को तोडकर सीता को वापिस लौटा लिया। हे योगी! जिन बाणो से हमने रावण को मारा था (यदि) मन से इच्छा करूं तो (उन्हीं बाणों से) हस्तिनापुर को (यहां) लाकर दिखा सकता हूं।

(यदि) तूं स्वर्ण का हरिण बनाकर चलावे (तो) मैं विचार करने पर पत्थरवर्षा कर सकता हूं। (तब फिर) हे योगी! यह मृगछाला चरणपादुकादि घुमा कर क्या दिखाते हो?

---

१. उगतो २. थभाऊ ३. अधिविच ४. आणि ५. भवण ६. रुखमण ७. सिर ८. आणि ६. सिर १०. आणि ११. जिहीं १२. बाणे १३. मार्यौ १४. हथणापुर १५. इस प्रति में "सैं" नहीं है १६. आंणि १७. मृघी, आगे है—करि चलावें + इस प्रति में "आयसां" अधिक है। १८. उगंतो १६. थभाऊं।

(११७)

दूका पाया मगर मचाया, जो हंडिया का कुत्ता
जोग जुगत[1] की सार[2] न जाणी, मूंड मुंडाया विगूता
घेता गुरु अपरंचै खीणा, मरते[3] मोक्ष न पायो

जिस प्रकार रोटी के टुकडे को पाकर कुत्ता हंडिया में अपना माथा फंसा लेता है (उसी प्रकार तुम) योग–युक्ति के तत्व को जाने बिना माथा मुंडा कर विद्रूप हो गये हो।

(ब्रह्म पद के) परिचय के बिना शिष्य (और) गुरु (दोनों ही) मरणोपरान्त मोक्ष को प्राप्त नहीं होते।

(११८)

स्वर्गा हूंते[4] शंभू[5] आयो कहो कौन[6] के काजै
नर निरहारी[7] अेकलवाई[8] प्रगट जोत[9] विराजै
प्रहलादा[10] सूं वाचा कीवी[11], आयो बारां काजै
बारा में सूं[12] अेक घटे[13] तो ! सू चेलो गुरु लाजै

स्वर्ग से परमात्मा (तुम्हारे लिये) अवतरित होकर पृथ्वी पर आया है, कहो (वह) किसके लिये आया? (केवल तुम्हारे लिये।)

(वह) नर निराहारी है (और) एक ही है, (वही) प्रकट में ज्योति स्वरूप (इस धरा पर) विराजमान है।

(उसने सत्ययुग में भक्त) प्रह्लाद से वादा किया था (कि वह कालान्तर में अवतरित होकर जीवों का कल्याण करेगा, उसी वायदे के अनुसार वह) बारह कोटि जीवों के हित आया है। (यदि) बारह कोटि जीवों में से एक ही जीव मोक्ष से वंचित रह जाय (तो) गुरु (और) चेले को लज्जित होना पडे।

(११९)

विष्णु विष्णु तू भणरे प्राणी, पैंके[14] लाख उपाजूं[15]
रतनकाया वैकुंठे वासो, तेरा जरा मरण भय भाजूं[16]

हे प्राणी! तू विष्णु विष्णु उच्चारण कर (उसके ऐसे उच्चारण से तुझे उसी प्रकार अपरिमित लाभ होगा जिस प्रकार) एक–एक पाई जोडकर लाखो रुपये उत्पन्न करने का लाभ होता है।

(विष्णु का जप करने से तेरा) शरीर दिव्य होगा। वैकुण्ठ में वास होगा (और) तेरा जन्म मरण (रूपी) भय (सदा के लिये) नष्ट हो जायेगा।

---

१ जुगति २ खबर ३ मरैत ४. सुरगा हूंता ५ स्वयंभू ६ कुणाकाजे ७. निरहनिहारी ८. प्रगटे ९. ज्योति १० पहराजासो ११ कींवी १२. सो १३ घटै। १४. पैके १५ उपाजों १६. भाजो।

(११७)

दूका पाया मगर मचाया, जो हंडिया का कुत्ता
जोग जुगत[1] *की सार*[2] *न जाणी, मूंड मुंडाया बिगूता*
चेता गुरु अपरंचै खीणा, मरते[3] मोक्ष न पायो

जिस प्रकार रोटी के टुकडे को पाकर कुत्ता हंडिया में अपना माथा फंसा लेता है (उसी प्रकार तुम) योग–युक्ति के तत्व को जाने बिना माथा मुंडा कर विद्रूप हो गये हो।

(ब्रह्म पद के) परिचय के विना शिष्य (और) गुरु (दोनों ही) मरणोपरान्त मोक्ष को प्राप्त नहीं होते।

(११८)

स्वर्गां हूंते[4] शंभू[5] आयो कहो कौन[6] के काजै
नर निरहारी[7] ऐकलवाई[8] प्रगट जोत[9] बिराजै
प्रहलादा[10] सूं याचा कीवी[11], आयो बारां काजै
बारा में सू[12] ऐक घटे[13] तो ! सू चेलो गुरु लाजै

स्वर्ग से परमात्मा (तुम्हारे लिये) अवतरित होकर पृथ्वी पर आया है, कहो (वह) किसके लिये आया? (केवल तुम्हारे लिये।)

(वह) नर निराहारी है (और) एक ही है, (वही) प्रकट में ज्योति स्वरुप (इस धरा पर) विराजमान है।

(उसने सत्ययुग में भक्त) प्रह्लाद से वादा किया था (कि वह कालान्तर में अवतरित होकर जीवो का कल्याण करेगा, उसी वायदे के अनुसार वह) बारह कोटि जीवो के हित आया है। (यदि) बारह कोटि जीवो में से एक ही जीव मोक्ष से वंचित रह जाय (तो) गुरु (और) चेले को लज्जित होना पड़े।

(११६)

विष्णु विष्णु तू भणरे प्राणी, पैंके[14] लाख उपाजूं[15]
रतनकाया वैकुंठे वासो, तेरा जरा मरण भय भाजूं[16]

हे प्राणी! तू विष्णु विष्णु उच्चारण कर (उसके ऐसे उच्चारण से तुझे उसी प्रकार अपरिमित लाभ होगा जिस प्रकार) एक–एक पाई जोडकर लाखों रुपये उत्पन्न करने का लाभ होता है।

(विष्णु का जप करने से तेरा) शरीर दिव्य होगा। वैकुण्ठ में वास होगा (और) तेरा जन्म मरण (रुपी) भय (सदा के लिये) नष्ट हो जायेगा।

---

१. जुगति २. खबर ३ मरैत ४. सुरगा हूंतां ५ स्वयंभू ६. कुणाकाजे ७. निरहनिहारी ८. प्रगटे ६. ज्योति १०. पहराजासो ११. कींवी १२. सों १३. घटै। १४ पैके १५ उपाजों १६ भाजो।

विष्णु विष्णु[1] तू भण[2] रे प्राणी[3], इस जीवन[4] के होवै[5]
क्षण क्षण आव घटंती जावै, मरण दिनेंदिन आवै
पालटीयो घट कांय न चेत्यो+, घाती रोल[6] मनावै
गुरु[7] मुख[8] मुरखा[9] चढै न पोहण, मन मुख[10] भार उठावै
ज्यों ज्यों लाज दुनी की लाजै, त्यूं त्यूं[11] दाब्यो दावै
भलिया हो सो भली[12] बुध[13] आवै, बुरिया[14] बुरी कमावै

हे प्राणी! तू इस जीव के कल्याण के हित बार–बार विष्णु–विष्णु नाम का जप कर। (तेरे जीवन की) आयु क्षण–क्षण घटती जा रही है (और) दिनानुदिन मृत्यु समीप आ रही है। (तेरा यह शरीर जवानी से) परिवर्तित होकर वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया है फिर भी तू क्यों नहीं चेत रहा है। मृत्यु तेरा विनाश करके ही रहेगी।

हे मूर्ख! तू गुरु उपदिष्ट अथवा गुरुमुखी होकर क्यों न (भवसागर से पार होने वाली) जहाज पर चढ रहा है? मनमुखी होकर क्यों व्यर्थ में भार उठा रहा है?

तू जैसे–जैसे संसार से लज्जित होता रहेगा वैसे–वैसे ही (सासारिक वेगों से अधिकाधिक) दबता चला जायेगा।

---

१. विसन विसन २ भणि ३. पीराणीं ४. जीवण ५. कहावै + यहां यह पंक्ति इस प्रकार है– "गढ पालटिये कांय न चेतो"। ६. रोलि ७. गुर ८. मुखि ९. मुरखो १०. मुखि ११. त्यौं त्यौं १२. होयते १३ बुधि १४. बुरियो।

परिशिष्ट १

प्रसंग

(जाभोजी के प्राय. सभी शब्दों के प्रकाशित ग्रंथों में यह "प्रसंग" नाम का राजस्थानी गद्य २६ वें शब्द इलोलसागर के पश्चात उल्लिखित है। यद्यपि इसे मूल १२० शब्दों की संख्या में नहीं गिना गया है तदपि जांभोजी के अनुयायियों में इसका भारी महत्व है। यह जांभोजी द्वारा अपने अधिकारी शिष्य रणधीरजी के प्रति कहा गया है अत. यह और भी महत्व की बात है। इसी समीचीनता को ध्यान में रखकर यहां प्रसंग को प्रकाशित किया जा रहा है।)

"शब्द सांभल रणधीर प्रणाम कीवी। देवजी! थे समुद्रों पार कद गया था? जमाती कहै--थे देवजी! थलिये प्रगट दीठा। जांभोजी कहै – शब्दे परच्या।

रणधीरजी कहै – देवजी! गुरुभाई दिखालो। जांभैजी रणधीर नै साथ लियो। जोति सूं जोति मिली। अनत देश दिखाल्या। अनंत विश्नोई दिखाल्या। पूठा आया।

रणधीर नै जमाती पूछै--थे देश दीठा जाको बिरतांत कहो। नवण भाषा कहो।

रणधीरजी कहै– एक देश मा मिलै सो कहै "सुनमुन"। आगलो मिलै से कहै– "घट घट"। एक देश में मिलै से कहै – "तैं तैं कतैं। आगलो मिलै सो कहै "अचल का बेस लाधैं सलाधैं"। एक देश मा मिलै से कहै "डबाक डरूं"। आगलो मिलै से कहै "डबक डरा"। एक देश में मिलै से कहै "जिंदा"। आगलो मिलै से कहै "कायम दायम पैदा करंदा। राच्या रन बण रणधीर नै कही।

जमाती सुणी अनंत देश दीठा अनंत बाणी अनंत जात का मनुष्य दीठा। सूर्य किरणा रसोई होती दीठी। रूख विरिख बातां करता दीठा। यो ही राह यो ही धर्म सारै दीठा। जमात कै प्रतीत आई।"

परिशिष्ट २

शब्दों की अनुक्रमिक प्रथम पंक्ति सूची

⌘⌘

परिशिष्ट ३

जांभोजी के प्राय. प्रत्येक शब्द निर्माण के साथ किसी न किसी व्यक्ति अथवा घटना का सबध जोडा जाता है, इस संबंध में यह हेतुता सदा से प्रचलित रही है। किसी व्यक्ति को प्रबोधित करने अथवा भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रश्नोपस्थित करने पर उस व्यक्ति को संबोधित कर या प्रस्तुत प्रश्न के समाधान हेतु शब्दो की रचना हुई है। यह धारणा कुछ अंशों में सत्य है एवं अधिकाशत. परम्परागत है। प्राचीन काल से ही किसी समुपस्थित व्यक्ति अथवा अपने शिष्यों को सबोधित कर रचना करने की शैली रही है। यहां भी यह शैली अपनाई गई है। कुछ शब्दो में अवधू, जोगी, काजी, राजेन्द्र, लक्ष्मणनाथ आदि नामों के उल्लेख यह स्पष्ट ही प्रमाणित करते हैं कि ये शब्द इनको संबोधित कर रचे गये हैं। जांभोजी के प्राय. सभी प्रकाशित शब्दों के ग्रंथो मे शब्दारंभ से पूर्व संबंधित प्रसंग दिया गया है। यहा भी उन व्यक्तियों तथा शब्दो की सूची दे रहे हैं जिससे निर्वाहित परम्परा की रक्षा हो सके।

व्यक्ति	शब्द संख्या
पुरोहित के प्रति (प्रथम भाषण के रूप मे)	१
उद्धरण कान्हावत के प्रति	२, ४, ५, ६
बीदोजी के प्रति	३, ६७
राव लूणकरण के भेजे हुवे पुरोहित के प्रति	७
मुहम्मद खान के भेजे काजी के प्रति	८, ९, १०, ११, १२
जाटों के प्रति	१३, १४, १५, १६, १९, २०
विश्नोइयो तथा जाटो के प्रति	१७, १८

✱✱

अपनी वाणी में कहा 'निष्काम भाव से' सत्कार्य करते हुए कार्यक्षेत्र में मरना मुक्तिदायक है, इसके लिए यदि काया का नाश भी हो तो होने दो।

गुरु जाम्भोजी ने जीवन को सर्वथा सार्थक बनाने हेतु जीवन की विधि जानने की बात कही है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने करणीय और अकरणीय कृत्य बताये हैं। उन्होंने किसी न किसी रूप मे लोकमंगल के कार्य करना मनुष्य का एक प्रमुख कर्तव्य बताया है। इसके साथ ही उन्होंने अपने हाथ से कार्य करने पर भी बल दिया है। मनुष्य अपने कार्यों से ऊँच और नीच माना जाता है कुल और आयु से नहीं। इसके साथ ही उन्होंने मूर्ति पूजा का भी वर्जन किया है।

गुरु जाम्भोजी ने जीवण की विधि को व्यावहारिक रूप देने के लिये सन् 1485 में बिश्नोई पंथ की स्थापना की। जिसकी आचार-संहिता के 29 धार्मिक नियम है। सामाजिक मान्यताओं का मूलाधार गुरु जाम्भोजी की वाणी है। समाज में प्रतिदिन प्रातःकाल घी से हवन करना एक नित्य कर्म है जो वैदिक परम्परा का पालन है। हवन करते समय एक विशेष लययुक्त उच्च स्वर में जाम्भोजी की वाणी के 120 शब्दो का पाठ किया जाता है, जो गुरुजी के समय में ही प्रारम्भ हो गया था। हवन की ज्योति में ही जाम्भोजी के दर्शन माने जाते है।

जाम्भोजी की वाणी का मूल संदेश आज उतना ही उपयोगी, प्रभावोत्पादक, मंगलकारी और मानवता को ऊँचा उठाने मे समर्थ है जितना यह 16वीं शताब्दी मे था। हालांकि आज परिस्थितियां बदल गई है लेकिन गुरुजी की उस समय की कही गई बातें आज भी सत्य है और वर्तमान संदर्भ मे वैसी ही लागू होती है। जाम्भोजी की वाणी का पाठ आज भी लोक कल्याणकारी और मानसिक शान्ति प्रदान करने वाला है।

-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई